साहित्य अमृत

मासिक

माघ-फाल्गुन, संवत्-२०७७ ❖ फरवरी २०२१

वर्ष-२६ ❖ अंक-७ ❖ पृष्ठ ८४

यू.जी.सी.-केयर लिस्ट में उल्लिखित

ISSN 2455-1171

संस्थापक संपादक

पं. विद्यानिवास मिश्र

निवर्तमान संपादक

डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

श्री त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

संस्थापक संपादक (प्रबंध)

श्री श्यामसुंदर

प्रबंध संपादक

पीयूष कुमार

संपादक

लक्ष्मी शंकर वाजपेयी

संयुक्त संपादक

डॉ. हेमंत कुकरेती

उप संपादक

उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी'

कार्यालय

४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-०२

फोन : ०११-२३२८९७७७

०८४४८६१२२६९

इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

शुल्क

एक अंक—₹ ३०

वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००

वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००

विदेश में

एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)

वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी पीयूष कुमार द्वारा ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२ से प्रकाशित एवं न्यू प्रिंट इंडिया प्रा.लि., ८/४-बी, साहिबाबाद इंडस्ट्रियल एरिया, साइट-IV, गाजियाबाद-२०१०१० द्वारा मुद्रित।

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

✍ संपादकीय

वसंत को बुलाओ ४

✍ प्रतिस्मृति

दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी/ *आचार्य चतुरसेन* ६

✍ कहानी

सच्ची जीत/ *मंजु मधुकर* १०

साँकल/ भावना शेखर १८

मुखौटा/ *सुधांशु गुप्ता* २६

गुम होते क्रेडिट कार्ड्स/ *प्रगति गुप्ता* ३५

जाकी रही भावना जैसी/ *संध्या मेनन* ६४

✍ आलेख

हरित मानसिकता की जरूरत/ *गिरीश्वर मिश्र* १४

हिंदी और उर्दू ग़ज़ल/ *जहीर कुरेशी* २२

एक शहीद की दास्तान/ *ऊषा निगम* ३०

गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित कबीर-वाणी/ *मनमीत कौर* ४०

हिंदी ललित निबंध के समर्थ हस्ताक्षर पं. विद्यानिवास मिश्र/ *पूजा शर्मा* ६६

✍ लघुकथा

डायबिटीज / *माला वर्मा* १७

अँधेरा और रोशनी/ *मुकेश शर्मा* ५१

हैसियत का अहसास/ रामगोपाल राही ७७

✍ कविता

वासंती स्वर/ *भारतेंदु हरीश्चंद्र, सुभद्राकुमारी चौहान* ९

चुक जाती हैं जब इच्छाएँ/ *पुष्पा राही* १६

आभार तुम्हारा/ *संगीता शर्मा अधिकारी* २५

स्वर्ण बालियाँ झूम रहीं/ *होड़िल सिंह 'मधुर'* २९

सरस्वती वंदना/ *अंकुर सिंह* ३४

सरस्वती वंदना/ *बालकृष्ण गर्ग* ४५

बसंत/ *कर्नल प्रवीण त्रिपाठी* ४७

कोई आश्चर्य नहीं/ जितेंद्र श्रीवास्तव ५२

खाली हो जाना/ संदीप राशिनकर ५३

प्रेम के रंग/ ममता चंद्रशेखर ६१

नए आक्रांत/ *सुरेश ऋतुपर्ण* ६२

लग रहा है ज्यों/ *तेजेंद्र शर्मा* ६५

✍ लोक-साहित्य

हिरनी-बिरनी लोकनाट्य/ *शंभू शरण सत्यार्थी* ७३

✍ राम झरोखे बैठ के

शिकारपुर और उसके वासी/ *गोपाल चतुर्वेदी* ३२

✍ संस्मरण

खिड़की से झाँकती वे सूनी आँखें/ *हरींद्र कुमार* २४

✍ ललित-निबंध

सखा धर्ममय अस रथ जाके/ *श्यामसुंदर दुबे* ४४

✍ साहित्य का भारतीय परिपार्श्व

मुलाकात/ *गिरीश भट्ट* ४८

✍ व्यंग्य

ठेले पर वैक्सीन/ अशोक गौतम ५४

✍ पत्र-प्रसंग

महादेवी का मन/ राजशेखर व्यास ५६

✍ साहित्य का विश्व परिपार्श्व

गिटजे/ *कोनार्ड बसकेन ह्यूट* ५९

✍ यात्रा-वृत्तांत

जनश्रुतियों का नगर चंबा/ देवी प्रसाद तिवारी ७०

✍ बाल-संसार

बिंदु का सवाल/ *पवन चौहान* ७६

✍ वर्ग-पहेली ७८

✍ पाठकों की प्रतिक्रियाएँ ७९

✍ साहित्यिक गतिविधियाँ ८०

वसंत को बुलाओ···

भारत में वसंत ऋतु का क्या महत्त्व है, इसे समझाने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण का एक वाक्य ही पर्याप्त है, जिसमें वे कहते हैं, 'मैं ऋतुओं में वसंत हूँ।' संस्कृत साहित्य हो या भारतीय भाषाओं का साहित्य, वसंत ऋतु के वर्णन में कवियों ने लेखनी का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। कालिदास का वसंत हो, टैगोर का वसंत, निराला या सुभद्राकुमारी चौहान का वसंत या अज्ञेय या नागार्जुन का वसंत! हर वसंत की अपनी अनूठी छटा है, अनूठी भंगिमाएँ हैं।

वही वसंत, जो प्रकृति के नवजीवन का प्रतीक है और मानव जीवन के लिए नवनिर्माण का! वही वसंत, जिसमें रंग-बिरंगे फूल खिलते हैं, जिन पर रंग-बिरंगी तितलियाँ मँडराती हैं, आमों पर बौर आता है, सरसों के पीले फूल अद्‌भुत दृश्य उत्पन्न करते हैं। प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि महानगरों में, नगरों में या नगर बनने को आतुर कस्बों में कैसे फूल, कैसी तितलियाँ, कैसे सरसों के फूल या सीधे-सीधे कहें कैसा वसंत!

हम सबको विचार करने की गंभीर आवश्यकता है कि कुछ दशकों पहले ही जो वसंत इतने उल्लास, इतनी उमंग, इतने हर्ष के साथ देवालयों, विद्यालयों, गाँव-गाँव, घर-घर मनाया जाता था, उसके प्रति इतनी उदासीनता कैसे आ गई?

वसंत की मस्ती, वसंत की मादकता कहाँ खो गई! बंगाल, ओड़िशा, बिहार आदि कुछ प्रदेशों में सरस्वती पूजन के सांस्कृतिक समारोहों को छोड़ दें तो वसंत के वैभव को देख पाना, महसूस कर पाना कठिन हो गया है। यह भी कहा जा सकता है कि वसंत प्रकृति से जुड़ा पर्व है और जब हमारा प्रकृति से साहचर्य, सामीप्य निरंतर क्षीण होता गया है, सबकुछ मशीनी, यांत्रिक होता गया है, तब वसंत का उल्लास कैसे नजर आए!

विचारणीय यह भी है कि क्या वसंत का हर्षोल्लास से या बड़े पैमाने पर न मनाया जाना ही चिंता का विषय है। बिल्कुल नहीं।

हमारे समय और समाज से जुड़े अनेकानेक गंभीर प्रश्न हैं, जो हम सबसे जवाब माँगते हैं! इन प्रश्नों को हम सब गंभीरता से सोचें।

वसंत का संबंध सरस्वती पूजा से है, अर्थात् ज्ञान की प्रतिष्ठा, ज्ञान की महत्ता, ज्ञान की शक्ति! हमारे मनीषियों ने कहा, 'स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' अर्थात् विद्वान् का महत्त्व राजा से बढ़कर बताया गया। उसी देश में आज कुछ निहित स्वार्थों द्वारा जानबूझकर 'अज्ञान' फैलाया जा रहा है। तरह-तरह के झूठ फैलाए जा रहे हैं। सोशल मीडिया के वरदान को अभिशाप में बदला जा रहा है। हमारे पढ़े-लिखे ज्ञानी भी अकसर सनसनी भरे झूठ को बिना सोचे-समझे आगे बढ़ा देते हैं और अज्ञान के प्रसार में सहायक बन जाते हैं। शास्त्रार्थ वाले देश में जहाँ किसी गंभीर विषय पर लंबी सार्वजनिक बहसें हुआ करती थीं, वहीं यदि कोई विपरीत विचार रखता है तो गाली-गलौज, आक्षेप, आरोप का सिलसिला प्रारंभ हो जाता है। 'ट्रोल' नामक शब्द ने अपनी गहरी उपस्थिति दर्ज कर ली है। हमारे चैनल आजादी के ७५ वर्ष पूरे करने जा रहे देश के विकासशील देश से विकसित देश बनने की यात्रा में भागीदार बनने की बजाय निरर्थक विषयों में दर्शकों को उलझाए रखते हैं। गरीबी, भुखमरी, बेकारी, बीमारी, विषमता, भेदभाव, शोषण, दमन, अन्याय, अत्याचार जैसे अनेक गंभीर विषय हाशिए पर चले जाते हैं। सरकारों द्वारा चलाई जा रही अनेकानेक योजनाओं तथा उनसे बदल रहे जीवन या तरह-तरह की वैज्ञानिक उपलब्धियाँ आदि भी दर्शकों तक नहीं पहुँच पातीं।

वसंत होली के त्योहार की आहट लेकर आता है। ऐसा त्योहार, जो सबको प्रेम के रंग में रँग देता है। अमीर, गरीब, ऊँच-नीच के भेद मिट जाते हैं। बस्ती के लोग घर-घर जाकर एक-दूसरे को होली की बधाई देते थे, अब व्हाट्सएप संदेश से काम निकाल लिया जाता है।

दरअसल वसंत एक विराट् प्रतीक है, जो भारत को, भारतीय संस्कृति को, भारतीय जीवन को, प्रेरणा का अथाह स्रोत बनकर बहुत कुछ दे सकता है, विशेषकर ऐसे वातावरण में, जब समाचार हमें भयभीत कर देते हैं, मनुष्यता पर हमारा भरोसा डिगाने लगते हैं।

वसंत हमें कितने ही संदेश देता है। शीत ऋतु के आतंक से मुक्ति पाकर, डरी-ठिठकी 'जिंदगी' फिर से नई सक्रियता का, स्वतंत्रता का आनंद महसूस करती है। वसंत संदेश देता है प्रकृति के स्वर-से-स्वर मिलाने का! वसंत संदेश देता है नई उमंग, नए उल्लास का! वसंत संदेश देता है त्याग का, उत्सर्ग का, जीवन की सार्थकता का!

वसंत संदेश देता है सरस्वती पूजा की सार्थकता को जीवन में उतारने का, अर्थात् ज्ञान की साधना का, बिना बहके हुए, बिना उन्माद का शिकार हुए, बुद्धि एवं विवेक से अच्छाई-बुराई का विश्लेषण करने का! संकुचित

सोच से छुटकारा पाकर उदार सोच को अपनाने का!

तो आइए, हम सब मिलकर उसी 'वसंत' को पुकारें, जो हमारे जीवन में आनंद का अनुपम भंडार लेकर आया करता था! वसंत के हर संदेश को अपने जीवन में उतारें। अपने जीवन को अनेक निराशाओं, नकारात्मकताओं से निकालकर अपनी प्रतिभाओं, क्षमताओं को पहचानने का प्रयास करें तथा उसे स्वयं के लिए, परिवार के लिए, समाज के लिए सार्थक बनाने में जुटें।

विश्व पटल पर हिंदी-लेखन

बात है १९८९ की। प्रख्यात कथाकार हिमांशु जोशीजी से साहित्यिक चर्चाओं के दौरान, जब वे विदेशों में बसे उन भारतीयों की बात करते थे, जो हिंदी में रचनाकर्म कर रहे हैं तो बड़ी सुखद अनुभूति होती थी। ऐसे देश में रहकर न हिंदी में बोलना संभव हो, न हिंदी में पढ़ पाना। संचार-साधन इतने विकसित नहीं थे। भारत से पत्र-पत्रिकाओं या पुस्तकों का पहुँचना भी बहुत आसान नहीं था। जो रचनाकार हिंदी में लेखन करते भी थे, उनका भारत में छपना भी कठिन होता था। एक समय था, जब साहित्य का केंद्र इलाहाबाद हुआ करता था, जो कालांतर में दिल्ली हो गया। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के वरदान-स्वरूप इंटरनेट आया और एक क्रांति हो गई। अपनी रचनाओं के प्रकाशन के लिए संपादक के रहमोकरम पर निर्भरता या महीनों की प्रतीक्षा समाप्त हो गई। इस इंटरनेट क्रांति का सबसे बड़ा लाभ मिला भारत से बाहर रह रहे रचनाकारों को। अब वे, भारत में जो कुछ लिखा जा रहा है, पढ़ सकते हैं, भारत की समस्त पत्र-पत्रिकाओं की सामग्री देख सकते हैं, साथ ही अपना लिखा भारतीयों अथवा पूरे विश्व से साझा कर सकते हैं। तरह-तरह की इ-पत्रिकाएँ विश्व भर के रचनाकारों को अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करने लगीं। कितने ही लेखकों ने अपने निजी 'ब्लॉग' बना लिये। इ-मेल से रचनाएँ भेजना सुगम हो गया। फेसबुक तथा व्हाट्सएप आने के बाद तो परिदृश्य और भी सुखद हो गया। अनेक देशों में हिंदी सेवी अनेकानेक कठिनाइयों, बाधाओं से जूझते हुए हिंदी को उस देश के युवाओं तक पहुँचाने के प्रयास में लगे रहे अथवा वहाँ के रचनाकारों के लिए जो कार्य करते रहे, उसमें नए पंख लग गए। पिछले दिनों 'विश्व हिंदी दिवस' जिस व्यापकता और उल्लास के साथ मनाया गया, उसने आशा का नया उजाला फैला है। विश्व भर के दूतावासों में जो कार्यक्रम हुए, उनका अपना महत्त्व है, किंतु दुनिया भर के कई दर्जन देशों में हिंदी-सेवियों तथा हिंदी के रचनाकारों ने जो सैकड़ों आयोजन किए, उनसे बड़ी आश्वस्ति मिलती है। कहाँ तो ३०-३५ वर्ष पहले किसी देश में हिंदी में लिख रहे कुछ लेखकों के नाम सुनकर मन प्रसन्न होता था और अब 'कुछ' नहीं, सैकड़ों रचनाकार! और ये रचनाकार शौकिया तुकबंदी नहीं कर रहे, वरन् स्तरीय एवं सार्थक लेखन कर रहे हैं। कनाडा से कुछ दिनों पहले दो संग्रह आए, जिसमें कनाडा के २१ रचनाकार हैं तथा एक कविता-संग्रह, जिसमें कनाडा के ४१ रचनाकार हैं। यह भी सुखद है कि ये दोनों संग्रह नि:शुल्क उपलब्ध हैं। ऑस्ट्रेलिया के हिंदी कवियों के कई साझा संग्रह तथा निजी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि इन रचनाकारों में अधिकांश डॉक्टर, इंजीनियर आदि हैं।

पिछले दिनों 'विश्वरंग' नाम से एक विराट् आयोजन हुआ, जिसमें ४० से अधिक देशों के सैकड़ों प्रवासी भारतीयों ने भागीदारी की। इस आयोजन में साहित्य, संगीत, कला, संस्कृति आदि सभी का समावेश किया गया। अनेक विचार-विमर्श के कार्यक्रम हुए तो दुनिया भर के देशों के प्रवासी भारतीयों की रचनात्मक प्रतिभा को अभिव्यक्ति के अवसर मिले। आज अमेरिका में कितनी ही संस्थाएँ हिंदी के प्रचार-प्रसार में पूरे समर्पण के साथ लगी हैं। इसी प्रकार नीदरलैंड हो या सिंगापुर, कनाडा हो या ऑस्ट्रेलिया, नॉर्वे हो या स्वीडन, हिंदी अपने पंख फैलाती जा रही है। यह भी सुखद है कि त्रिनिदाद, सूरीनाम, फीजी, मॉरीशस जैसे देश, जहाँ भारतवंशी बड़ी संख्या में भी हैं तथा उच्च पदों पर प्रतिष्ठित हैं, हिंदी अपने बदले हुए स्वरूप में राष्ट्रभाषा के आसन पर भी विराजमान है, जो भारत के लिए दूरगामी स्वप्न बना हुआ है। साहित्य-सृजन के अलावा प्रवासी भारतीय अनेकानेक रूप में हिंदी को समृद्ध एवं संपन्न भाषा बनाने में लगे हुए हैं।

न्यूजीलैंड से एक हिंदीसेवी भारत एवं भारतीय संस्कृति के विविध पहलुओं की जानकारी देने के लिए 'भारतदर्शन' नाम का एक उत्कृष्ट 'पोर्टल' चला रहे हैं। यहाँ आपको भारत के स्वाधीनता सेनानियों से लेकर महापुरुषों, महान् संतों, विचारकों, साहित्यकारों आदि के साथ भारत के पर्यटन स्थलों आदि की जानकारियाँ मिल जाएँगी।

कुछ व्हाट्सएप समूह हैं, जहाँ दुनिया के ५० देशों के सैकड़ों रचनाकार हिंदी सेवी जुड़े हुए हैं। विचारों का आदान-प्रदान, रचनाओं का आदान-प्रदान, वह भी इतनी त्वरित गति से, कितना सुखद है और हिंदी की प्रगति के लिए महत्त्वपूर्ण। यहीं यह भी विचारणीय है कि ऑस्ट्रेलिया के एक विश्वविद्यालय में हिंदी के अध्यापन का विभाग बंद होने की खबर आई तथा उसे बचाने के लिए आवाजें उठीं; इसी प्रकार कोरिया में भी एक विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग बंद करने की खबर आई।

विश्वभर में हिंदी-सेवियों की सक्रियता हमें नई ऊर्जा देती है, हिंदी के सुखद भविष्य का संकेत देती है, वहीं हमें अपना घर भी देखना होगा। दिल्ली के द्वारका में एशिया के सबसे बड़े मॉल में से एक दावा करनेवाले मॉल में सारी मंजिलें घूम आइए, आपको हिंदी का आधा अक्षर भी ढूँढ़ने से नहीं मिलेगा। द्वारका या गुरुग्राम के बड़े-बड़े मॉल हों या कहीं और के। अब इस मानसिकता को क्या कहेंगे? तो विश्वभर में हिंदी के फैलाव पर खुश होने के साथ-साथ हमें अपने घर, यानी अपने देश, अपने प्रदेश, अपने नगर में हिंदी की स्थिति पर विचार करना होगा तथा मूकदर्शक बनने की बजाय कुछ सार्थक कदम भी उठाने होंगे। हाँ, विश्वभर के देशों में सक्रिय हिंदी-सेवियों की निष्ठा, समर्पण, परिश्रम एवं लगन को हृदय से नमन!

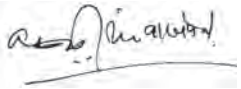

(लक्ष्मी शंकर वाजपेयी)

दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी

● आचार्य चतुरसेन

गरमी के दिन थे। बादशाह ने उसी फागुन में सलीमा से नई शादी की थी। सलनत के झंझटों से दूर रहकर नई दुलहिन के साथ प्रेम और आनंद की कलोल करने वे सलीमा को लेकर कश्मीर के दौलतखाने में चले आए थे। रात दूध में नहा रही थी। दूर के पहाड़ों की चोटियाँ बर्फ से सफेद होकर चाँदनी में बहार दिखा रही थीं। आरामबाग के महलों के नीचे पहाड़ी नदी बल खाकर बह रही थी।

मोतीमहल के एक कमरे में शमादान जल रहा था और उसकी खुली। खिड़की के पास बैठी सलीमा रात का सौंदर्य निहार रही थी। खुले हुए बाल उसकी फिरोजी रंग की ओढ़नी पर खेल रहे थे। चिकन के काम से सजी और मोतियों से गुँथी हुई उस फिरोजी रंग की ओढ़नी पर कसी हुई कमखाब की कुरती और पन्नों की कमरपेटी पर अंगूर के बराबर बड़े मोतियों की माला झूम रही थी। सलीमा का रंग भी मोती के समान था। उसकी देह की गठन निराली थी। संगमरमर के समान पैरों में जरी के काम के जूते पड़े थे, जिन पर दो हीरे धक्-धक् चमक रहे थे।

कमरे में एक कीमती ईरानी कालीन का फर्श बिछा हुआ था, जो पैर रखते ही हाथभर नीचे धँस जाता था। सुगंधित मसालों से बने शमादान जल रहे थे। कमरे में चार पूरे कद के आईने लगे थे। संगमरमर के आधारों पर, सोने-चाँदी के फूलदानों में ताजे फूलों के गुलदस्ते रखे थे। दीवारों और दरवाजों पर चतुराई से गुँथी हुई नागकेसर और चंपा की मालाएँ झूम रही थीं, जिनकी सुगंध से कमरा महक रहा था। कमरे में अनगिनत बहुमूल्य कारीगरी की देश-विदेश की वस्तुएँ करीने से सजी हुई थीं। बादशाह दो दिन से शिकार को गए थे। इतनी रात होने पर भी नहीं आए थे। सलीमा खिड़की में बैठी प्रतीक्षा कर रही थी। सलीमा ने उकताकर दस्तक दी। एक बाँदी दस्तबस्ता हाजिर हुई।

बाँदी सुंदर और कमसिन थी। उसे पास बैठने का हुक्म देकर सलीमा ने कहा, 'साकी, तुझे बीन अच्छी लगती है या बाँसुरी?'

बादी ने नम्रता से कहा, 'हुजूर जिसमें खुश हों।'

सलीमा ने कहा, 'पर तू किसमें खुश है?'

बाँदी ने काँपते स्वर में कहा, 'सरकार! बांदियों की खुशी ही क्या!'

सलीमा हँसते-हँसते लोट-पोट गई। बाँदी ने वंशी लेकर कहा, 'क्या सुनाऊँ?'

बेगम ने कहा, 'ठहर, कमरा बहुत गरम मालूम देता है। इसके तमाम दरवाजे और खिड़कियाँ खोल दे, चिरागों को बुझा दे, चटखती चाँदनी का लुत्फ उठाने दे और वे फूलमालाएँ मेरे पास रख दे।'

बाँदी उठी। सलीमा बोली, 'सुन, पहले एक गिलास शरबत दे, बहुत प्यासी हूँ।'

बाँदी ने सोने के गिलास में खुशबूदार शरबत बेगम के सामने ला धरा। बेगम ने कहा, 'उफ! यह तो बहुत गरम है। क्या इसमें गुलाब नहीं दिया?'

बाँदी ने नम्रता से कहा, 'दिया तो है सरकार!'

'अच्छा, इसमें थोड़ा-सा इस्तंबोल और मिला।'

साकी गिलास लेकर दूसरे कमरे में चली गई। इस्तंबोल मिलाया और भी एक चीज मिलाई। फिर वह सुवासित मदिरा का पात्र बेगम के सामने धरा। एक ही साँस में उसे पीकर बेगम ने कहा, 'अच्छा, अब सुना। तूने कहा था कि तू मुझे प्यार करती है; सुना, कोई प्यार का ही गाना सुना।'

इतना कह और गिलास को गुलीजे पर लुढकाकर मदमाती सलीम उस कोमल मखमली मसनद पर खुद भी लुढ़क गई और रसभरे नेत्रों से साकी की ओर देखने लगी। साकी ने वंशी का सुर मिलाकर गाना शुरू किया। बहुत देर तक साकी की वंशी की ध्वनि कमरे में घूम-घूमकर रोती रही। धीरे-धीरे साकी खुद भी रोने लगी। सलीमा मदिरा और यौवन के नशे में चूर होकर झूमने लगी।

गीत खत्म करके साकी ने देखा, सलीमा बेसुध पड़ी है। शराब की तेजी से उसके गाल एकदम सुर्ख हो गए हैं और तांबूल-राग-रंजित होंठ रह-रहकर फड़क रहे हैं। साँस की सुगंध से कमरा महक रहा है। जैसे मंद पवन से कोमल पत्ती काँपने लगती है, उसी प्रकार सलीमा का वक्षस्थल धीरे-धीरे काँप रहा है। प्रस्वेद की बूँदें ललाट पर चाँदनी के उज्ज्वल प्रकाश में मोतियों की तरह चमक रही हैं।

वंशी रखकर साकी क्षण भर बेगम के पास आकर खड़ी हुई। उसका शरीर काँपा, आँखें जलने लगीं, कंठ सूख गया। वह घुटने के

बल बैठकर बहुत धीरे-धीरे अपने आँचल से बेगम के मुख का पसीना पोंछने लगी। इसके बाद उसने झुककर बेगम का मुँह चूम लिया। फिर ज्योंही उसने अचानक आँख उठाकर देखा, तो पाया, खुद दीन-दुनिया के मालिक शाहजहाँ खड़े उसकी यह करतूत अचरज और क्रोध से देख रहे हैं।

साकी को साँप डस गया। वह हतबुद्धि की तरह बादशाह का मुँह ताकने लगी। बादशाह ने कहा, 'तू कौन है और यह क्या कर रही थी?'

साकी चुप खड़ी रही। बादशाह ने कहा, 'जवाब दे!'

साकी ने धीमे स्वर में कहा, 'जहाँपनाह! कनीज अगर कुछ जवाब न दे तो?

बादशाह सन्नाटे में आ गए, 'बाँदी की इतनी हिम्मत!'

उन्होंने फिर कहा, 'मेरी बात का जवाब नहीं? अच्छा, तुझे नंगी करके कोड़े लगाए जाएँगे!'

साकी ने अकंपित स्वर में कहा, 'मैं मर्द हूँ!'

बादशाह की आँखों में सरसों फूल उठी। उन्होंने अग्निमय नेत्रों से सलीमा की ओर देखा। वह बेसुध पड़ी सो रही थी। उसी तरह उसका भरा यौवन खिला पड़ा था। उनके मुँह से निकला- उँह! फाहशा! और तत्काल उनका हाथ तलवार की मूठ पर गया। फिर उन्होंने कहा, 'दोजख के कुत्ते! तेरी यह मजाल!'

फिर कठोर स्वर से पुकारा, 'मादूम!'

एक भयंकर रूपवाली तातारी औरत बादशाह के सामने अदब से आ खड़ी हुई। बादशाह ने हुक्म दिया, इस मर्दूद को तहखाने में डाल दे, ताकि बिना खाए-पिए मर जाए।' मादूम ने अपने कर्कश हाथों से युवक का हाथ पकड़ा और ले चली। थोडी देर बाद दोनों एक लोहे के मजबूत दरवाजे के पास आ खड़े हुए तातारी बाँदी ने चाभी निकाल दरवाजा खोला और कैदी को भीतर ढकेल दिया। कोठरी की गच कैदी का बोझ ऊपर पड़ते ही काँपती हुई नीचे धसकने लगी।

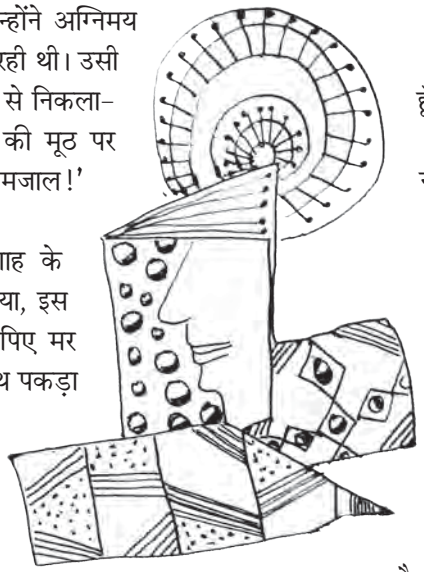

प्रभात हुआ, सलीमा की बेहोशी दूर हुई। चौंककर उठ बैठी। बाल सँवारे, ओढ़नी ठीक की और चोली के बटन कसने को आईने के सामने जा खड़ी हुई। खिड़कियाँ बंद थीं। सलीमा ने पुकारा, 'साकी! प्यारी साकी! बड़ी गरमी है, जरा खिड़की तो खोल दे। निगोड़ी नींद ने तो आज गजब ढा दिया। शराब कुछ तेज थी।'

किसी ने सलीमा की बात न सुनी। सलीमा ने जरा जोर से पुकारा, 'साकी!'

जवाब न पाकर सलीमा हैरान हुई। वह खुद खिड़की खोलने लगी। मगर खिड़कियाँ बाहर से बंद थीं। सलीमा ने विस्मय से मन-ही-मन कहा, क्या बात है? लौंडियाँ सब क्या हुईं?

वह द्वार की तरफ चली। देखा, एक तातारी बाँदी नंगी तलवार लिये पहरे पर मुस्तैद खड़ी है। बेगम को देखते ही उसने सिर झुका लिया। सलीमा ने क्रोध से कहा—'तुम लोग यहाँ क्यों हो?'

'बादशाह के हुक्म से।'

'क्या बादशाह आ गए?'

'जी हाँ।'

'मुझे इत्तिला क्यों नहीं की?'

'हुक्म नहीं था।'

'बादशाह कहाँ हैं?'

'जीनतमहल के दौलतखाने में।'

सलीमा के मन में अभिमान हुआ। उसने कहा, 'ठीक है, खूबसूरती की हाट में जिनका कारबार है, वे मुहब्बत को क्यों समझेंगे! तो अब जीनतमहल की किस्मत खुली!' तातारी स्त्री चुपचाप खड़ी रही। सलीमा फिर बोली, 'मेरी साकी कहाँ है?'

'कैद में।'

'क्यों?'

'जहाँपनाह का हुक्म।'

'उसका कुसूर क्या था?'

'मैं अर्ज नहीं कर सकती।'

'कैदखाने की चाभी मुझे दे, मैं अभी उसे छुड़ाती हूँ।'

'आपको अपने कमरे से बाहर जाने का हुक्म नहीं है।'

'तब क्या मैं भी कैद हूँ?'

'जी हाँ।'

सलीमा की आँखों में आँसू भर आए। वह लौटकर मसनद पर पड़ गई गैर फूट-फूटकर रोने लगी। कुछ देर ठहरकर उसने एक खत लिखा, 'हुजूर! कुसूर माफ फरमावें। दिनभर की थकी होने से ऐसी बेसुध सो गई कि हुजूर के इस्तकबाल में हाजिर न रह सकी; और मेरी उस लौंडी की भी जानबख्शी की जाए। उसने हुजूर के दौलतखाने में लौट आने की इत्तिला मुझे वाजिबी तौर पर न देकर बेशक भारी कुसूर किया; मगर वह नई, कमसिन, गरीब और दुखिया है।

कनीज—'सलीमा'

चिट्ठी बादशाह के पास भेज दी गई। बादशाह ने आग-बबूला होकर कहा, 'लाई क्या है?'

बाँदी ने दस्तदबस्ता अर्ज की, 'खुदावंद! सलीमा बीबी की अरजी है।' बादशाह ने गुस्से से होंठ चबाकर कहा, 'उससे कह दे कि मर जाए!' इसके बाद खत में एक ठोकर मारकर उन्होंने मुँह फेर लिया।

बाँदी सलीमा के पास लौट आई। बादशाह का जवाब सुनकर सलीमा धरती पर बैठ गई। उसने बाँदी को बाहर जाने का हुक्म दिया और दरवाजा बंद करके फूट-फूटकर रोई। घंटों बीत गए; दिन छिपने लगा। सलीमा ने कहा, 'हाय! बादशाहों की बेगम होना भी क्या बदनसीबी है! इंतजार करते-करते आँखें फूट जाएँ, मिन्नतें करते-करते जबान घिस जाए, अदब करते-करते जिस्म टुकड़े-टुकड़े हो जाए, फिर भी इतनी सी बात पर कि मैं जरा सो गई, उनके आने पर जग न सकी, इतनी सजा!

इतनी बेइज्जती! तब मैं बेगम क्या हुई? जीनत और बादिया सुनेंगी तो क्या कहेंगी? इस बेइज्जती के बाद मुँह दिखाने लायक कहाँ रही? अब तो मरना ही ठीक है। अफसोस! मैं किसी गरीब किसान की औरत क्यों न हुई!'

धीरे-धीरे स्त्रीत्व का तेज उसकी आत्मा में उदय हुआ। गर्व और दृढ़प्रतिज्ञ के चिह्न उसके नेत्रों में छा गए। वह साँपिन की तरह चपेट खाकर उठ खड़ी हुई। उसने एक और खत लिखा, 'दुनिया के मालिक! आपकी बीवी और कनीज होने की वजह से मैं आपके हुक्म को मानकर मरती हूँ। इतनी बेइज्जती पाकर एक मलिका का मरना ही मुनासिब भी है। मगर इतने बड़े बादशाह को औरतों को इस कदर नाचीज तो न समझना चाहिए कि एक अदना सी बेवकूफी की इतनी कड़ी सजा दी जाए। मेरा कुसूर सिर्फ इतना ही था कि मैं बेखबर सो गई थी। खैर, सिर्फ एक बार हुजूर को देखने की ख्वाहिश लेकर मरती हूँ। मैं उस पाक परवरदिगार के पास जाकर अर्ज करूँगी कि वह मेरे शौहर को सलामत रखे।

—सलीमा

खत को इत्र से सुवासित करके ताजे फूलों के एक गुलदस्ते में इस तरह रख दिया कि जिससे किसी की उस पर फौरन ही नजर पड़ जाए। इसके बाद उसने जवाहरात की पेटी से एक बहुमूल्य अँगूठी निकाली और कुछ देर तक आँखें गड़ा-गड़ाकर उसे देखती रही। फिर उसे चाट गई।

बादशाह शाम की हवाखोरी को नजरबाग में टहल रहे थे। दो-तीन खोजे घबराए हुए आए और चिट्ठी पेश करके अर्ज की, 'हुजूर, गजब हो गया! सलीमा बीवी ने जहर खा लिया और वे मर रही हैं।'

क्षण भर में बादशाह ने खत पढ़ लिया। झपटे हुए सलीमा के महल पहुँचे। प्यारी दुलहिन सलीमा जमीन पर पड़ी है। आँखें ललाट पर चढ़ गई हैं। रंग कोयले के समान हो गया है। बादशाह से न रहा गया। उन्होंने घबराकर कहा, 'हकीम···हकीम को बुलाओ।' कई आदमी दौड़े।

बादशाह का शब्द सुनकर सलीमा ने उनकी तरफ देखा और धीमे स्वर में कहा, 'जहे-किस्मत!'

बादशाह ने नजदीक बैठकर कहा, 'सलीमा! बादशाह की बेगम होकर क्या तुम्हें यही लाजिम था?'

सलीमा ने कष्ट से कहा, 'हुजूर, मेरा कुसूर बहुत मामूली था।' बादशाह ने कड़े स्वर में कहा, 'बदनसीब! शाही जनानखाने में मर्द को भेस बदलकर रखना मामूली कुसूर समझती है? कानों पर यकीन कभी न करता, मगर आँखों-देखी को भी झूठ मान लूँ?'

तड़पकर सलीमा ने कहा, 'क्या?'

बादशाह डरकर पीछे हट गए। उन्होंने कहा, 'सच कहो, इस वक्त। खुदा की राह पर हो, यह जवान कौन था?'

सलीमा ने अचकचाकर पूछा, 'कौन जवान?'

बादशाह ने गुस्से से कहा, 'जिसे तुमने साकी बनाकर पास रखा।'

सलीमा ने घबराकर कहा, 'हैं! क्या वह मर्द है?'

बादशाह—'तो क्या तुम सचमुच यह बात नहीं जानती।'

सलीमा के मुँह से निकला, 'या खुदा!'

उसके नेत्रों से आँसू बहने लगे। वह मामला समझ गई। कुछ देर बाद बोली, 'खाविंद! तब तो कुछ शिकायत ही नहीं; इस कुसूर की तो यही सजा मुनासिब थी। मेरी बदगुमानी माफ फरमाई जाए। मैं अल्लाह के नाम पर कहती हूँ, मुझे इस बात का कुछ भी पता नहीं है।' बादशाह का गला भर आया। उन्होंने कहा, 'तो प्यारी सलीमा,' तुम बेकसर ही चलीं। बादशाह रोने लगे।

सलीमा ने उनका हाथ पकड़कर अपनी छाती पर रखकर कहा, 'मालिक मेरे! जिसकी उम्मीद न थी, मरते वक्त वह मजा मिल गया। कहा-सुना माफ हो और एक अर्ज लौंडी की मंजूर हो।'

बादशाह ने कहा, 'जल्दी कहो सलीमा!'

सलीमा ने साहस से कहा, 'उस जवान को माफ कर देना।' इसके बाद सलीमा की आँखों से आँसू बह चले और थोड़ी देर में वह ठंडी हो गई। बादशाह ने घुटने के बल बैठकर उसका ललाट चूमा और फिर बालक की तरह रोने लगे।

गजब के अँधेरे और सर्दी में युवक भूखा-प्यासा पड़ा था। एकाएक घोर चीत्कार करके किवाड़ खुले। प्रकाश के साथ ही एक गंभीर शब्द तहखाने में भर गया, 'बदनसीब नौजवान! क्या होश-हवास में है?'

युवक ने तीव्र स्वर में पूछा, 'कौन?'

जवाब मिला, 'बादशाह।'

युवक ने कुछ भी अदब किए बिना कहा, 'यह जगह बादशाहों के लायक नहीं है। क्यों तशरीफ लाए हैं?'

'तुम्हारी कैफियत नहीं सुनी थी, उसे सुनने आया हूँ।'

कुछ देर चुप रहकर युवक ने कहा, 'सिर्फ सलीमा को झूठी बदनामी से बचाने के लिए कैफियत देता हूँ, सुनिए—सलीमा जब बच्ची थी, मैं उसके बाप का नौकर था, तभी से मैं उसे प्यार करता था, सलीमा भी प्यार करती थी। पर वह बचपन का प्यार था। उम्र होने पर सलीमा परदे में रहने लगी और वह शहंशाह की बेगम हुई। मगर मैं उसे भूल न सका। पाँच साल तक पागल की तरह भटकता रहा। अंत में भेस बदलकर बाँदी की नौकरी कर ली। सिर्फ उसे देखते रहने और खिदमत करके दिन गुजारने का इरादा था। उस दिन उज्ज्वल चाँदनी, सुगंधित पुष्प-राशि, शराब की उत्तेजना और एकांत ने मुझे बेबस कर दिया। उसके बाद मैंने आँचल से उसके मुख का पसीना पोंछा और मुँह चूम लिया। इतना ही खतावार हूँ। सलीमा इसकी बाबत कुछ नहीं जानती।' बादशाह कुछ देर चुपचाप खड़े रहे। इसके बाद वे बिना ही दरवाजा बंद किए धीरे-धीरे चले गए।

सलीमा की मृत्यु को दस दिन बीत गए। बादशाह सलीमा के कमरे में ही दिन-रात रहते हैं—सामने, नदी के उस पार, पेड़ों के झुरमुट में सलीमा की सफेद कब्र बनी है। जिस खिड़की के पास सलीमा बैठी, उस दिन रात को बादशाह की प्रतीक्षा कर रही थी, उसी खिड़की में, उसी चौकी पर बैठे हुए बादशाह उसी तरह सलीमा की कब्र दिन-रात देखा करते हैं; किसी को पास आने का हुक्म नहीं। जब आधी रात्रि हो जाती है तो गंभीर रात के सन्नाटे में एक मर्मभेदिनी गीत-ध्वनि उठ खड़ी होती है। बादशाह साफ-साफ सुनते हैं, कोई करुण-कोमल स्वर में गा रहा है—

'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी···'

वासंती स्वर

• भारतेंदु हरिश्चंद्र

जोर भयो तन काम को आयो प्रकट बसंत।
बाढ़यो तन में अति बिरह भो सब सुख को अंत॥ १॥

चैन मिटायो नारि को मैन सैन निज साज।
याद परी सुख देन की रैन कठिन भई आज॥ २॥

परम सुहावन से भए सबै बिरिछ बन बाग।
तृबिध पवन लहरत चलत दहकावत उर आग॥ ३॥

कोहल अरु पपिहा गगन रटि-रटि खायो प्रान।
सोवन निसि नहिं देत है तलपत होत बिहान॥ ४॥

है न सरन तृभुवन कहूँ कहु बिरहिन कित जाय।
साथी दुख को जगत में कोऊ नहीं लखाय॥ ५॥

रखे पथिक तुम कित विलम बेग आइ सुख देहु।
हम तुम-बिन ब्याकुल भई धाइ भुवन भरि लेहु॥ ६॥

मारत मैन मरोरि कै दाहत हैं रितुराज।
रहि न सकत बिन मिलौ कित गहरत बिन काज॥ ७॥

गमन कियो मोहि छोड़ि कै प्रान-पियारे हाय।
दरकत छतिया नाह बिन कीजै कौन उपाय॥ ८॥

हा पिय प्यारे प्रानपति प्राननाथ पिय हाय।
मूरति मोहन मैन के दूर बसे कित जाय॥ ९॥

रहत सदा रोवत परी फिर-फिर लेत उसास।
खरी जरी बिनु नाथ के मरी दरस के प्यास ॥ १०॥

चूमि-चूमि धीरज धरत तुव भूषन अरु चित्र।
तिनहीं को गर लाइकै सोइ रहत निज मित्र॥ ११॥

यार तुम्हारे बिनु कुसुम भए बिष-बुझे बान।
चौदिसि टेसू फूलि कै दाहत हैं मम प्रान॥ १२॥

परी सेज सफरी सरिस करवट लै पछतात।
टप-टप टपकत नैन जल मुरि-मुरि पछरा खात॥ १३॥

निसि कारी साँपिन भई डसत उलटि फिरि जात।
पटकि-पटकि पाटी करन रोइ-रोइ अकुलात॥ १४॥

टरै न छाती सौं दुसह दुख नहिं आयौ कंत।
गमन कियो केहि देस कों बीती हाय बसंत॥ १५॥

वारों तन मन आपुनों दुहुँ कर लेहुँ बलाय।
रति-रंजन 'हरिचंद' पिय जो मोहि देहु मिलाय॥ १६॥

• सुभद्राकुमारी चौहान

आ रही हिमालय से पुकार,
है उदधि गरजता बार-बार
प्राची पश्चिम भू नभ अपार;
सब पूछ रहे हैं दिग्-दिगंत
वीरों का कैसा हो वसंत!

फूली सरसों ने दिया रंग
मधु लेकर आ पहुँचा अनंग
वधु वसुधा पुलकित अंग-अंग;
हैं वीर देश में किंतु कंत
वीरों का कैसा हो वसंत!

भर रही कोकिला इधर तान
मारू बाजे पर उधर गान
है रंग और रण का विधान;
मिलने को आए आदि अंत
वीरों का कैसा हो वसंत!

गलबाहें हों या कृपाण
चल-चितवन हो या धनुष-बाण
हो रसविलास या दलित-त्राण;
अब यही समस्या है दुरंत
वीरों का कैसा हो वसंत!

कह दे अतीत अब मौन त्याग
लंके तुझमें क्यों लगी आग
ऐ कुरुक्षेत्र अब जाग-जाग;
बतला अपने अनुभव अनंत
वीरों का कैसा हो वसंत!

हल्दीघाटी के शिला खंड
ऐ दुर्ग सिंहगढ़ के प्रचंड
राणा ताना का कर घमंड;
दो जगा आज स्मृतियाँ ज्वलंत
वीरों का कैसा हो वसंत!

भूषण अथवा कवि चंद नहीं
बिजली भर दे वह छंद नहीं
है कलम बँधी स्वच्छंद नहीं;
फिर हमें बताए कौन हंत
वीरों का कैसा हो वसंत!

कहानी

सच्ची जीत

● मंजु मधुकर

"अरे कर दिया न, सत्यानाश कलफ, चर्क चढ़ी ताँत की बंगाली साड़ी का।"

शिखा ने अपनी आठ वर्षीय रिपा को अपनी साड़ी लपेटे देखा तो गुस्से से चीख उठी।

गरमी की छुट्टियाँ थीं, रिया बालकनी में अपनी गुड़ियों का संसार सजाए बैठी थी। साथ में दो सखियाँ और थीं। घर-घर का खेल हो रहा था। स्पष्ट था कि रिया घर की मालकिन बनी हुई थी तथा गृहस्थन का रोल निभा रही थी।

माँ की डाँट से खेल में खलल तो पहुँची ही, रिया ने सखियों के समक्ष अपने को अपमानित महसूस किया।

"वह जो परसों नायलॉन की साड़ी दी थी, वह क्या हुई?"

"वह क्या हमारे पहनने लायक थी, वह तो हमने अपनी महरी को दे दी।"

"महरी को?"

शिखा ने देखा कि एक कोने में दुबली-पतली सी लड़की बाल बिखेरे सिंबेटिक साड़ी पहने गुड़िया के किचन सेट के बरतन धोने में लगी थी। बाकी दो सखियाँ शायद बच्चों का रोल निभा रही थीं, क्योंकि वे मग में काल्पनिक दूध पी रही थी और बिस्कुट खा रही थीं।

शिखा को अपनी लाडली की गृहस्थी देखकर प्यार आ गया। थोड़ा सा चना-चबेना में ही गृहस्थी चल रही थी। उसने अंदर से लाकर ऑरेंज और मैंगो जूस तथा नमकीन, बिस्कुट, ब्रेड और दे दिया। रिपा ने कृतज्ञता से माँ को सधन्यवाद देखा। गरमी बहुत थी परंतु बालकनी में पंखा चल रहा था। शिखा ने बालकनी की चिक डाल दी तो थोड़ा वातावरण ठंडा हो गया।

और अंदर जाकर ए.सी. चलाकर लेट गई। रोहरा चार दिन के लिए कैंप में गया था। बच्चों के पापा टूर पर दिल्ली गए थे। उसने सोचा था, शाम को मिसेज आप्टे के घर हल्दी-कुंकुम में जाएगी तो यही साड़ी पहन जाएगी। अब कोई और निकालनी पड़ेगी।

वह लेटे-लेटे सोच रही थी कि यह कहावत सच ही है। "पहन ले, पहन ले, जब तक धी नहीं, खा ले, खा ले, जब तक बहू नहीं।"

दूसरी कहावत चरितार्थ होने में अभी अरसा पड़ा है, परंतु पहली कहावत तो चरितार्थ हो ही रही है। रिया को साड़ी लपेटने का बहुत शौक है, उसकी जो भी साड़ी देखेगी, लपेट लेगी। बच्चे भी जो माँ को देखते हैं, वही करते हैं। वह भी लिये-दिए की सिंथेटिक साड़ियों को महरी-मिसरानी को बाँट देती यह कहकर कि यह क्या हमारे पहनने की है। सो रिया ने भी यही किया।

जानी-मानी लेखिका। अब तक तीन कहानी-संग्रह तथा अनेक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित। बहरीन में हिंदी अध्यापन। मॉरीशस ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन में 'घर-गृहस्थी', 'आपकी चिट्ठी मिली' तथा अन्य सामाजिक कार्यक्रम प्रस्तुत। बहरीन में 'फाइन आर्ट सोसाइटी' द्वारा सम्मानित व पुरस्कृत।

चलो, पहनने दो, जब मौका आएगा पहनने का तो जींस-टॉप पहनेंगी। आजकल कौन साड़ी पहनता है। कल मिसेज धवन के कीर्तन में सारी औरतें सलवार कुरते में थीं, बस वही अकेली साड़ी में थी। परंतु साड़ी उसकी प्रिय पोशाक है। सलवार-कुरता तो वह मार्निंग वॉक और बाजार हाट में ही पहनती है। ढेर साड़ियाँ हैं, आखिर कब पहनी जाएँगी। वह तो जब किरी में साड़ी पहनकर जाती है तो उसकी हम प्रिय सखियाँ भी उसे आंटी-आंटी कहती हैं। उसे बड़ा ताव आता है उन औरतों को देखकर, जो न शरीर देखती है और न उम्र। सोचती हैं कि जींस, कैपरी और स्कर्ट पहनकर बहुत कम उम्र दिख रही हैं।

लेकिन साड़ियों में भी क्या आग लग रही है, कोई भी ट्रेडीशनल साड़ी दस-पंद्रह हजार से कम नहीं आती। इतनी देर में नीचे हॉर्न की आवाज सुनाई दी। कार शिखा के पति को एयरपोर्ट से लेकर आ गई होगी। वह दरवाजा खोलकर सीढ़ियों पर आ गई, उधर पापा की आवाज सुन रिया भी खेल-वेल छोड़ साड़ी उतार पापा की ओर भागी। सभी सहेलियाँ भी चल दीं। शिखा की साड़ी बालकनी से लेकर कमरे तक फैल गई। महरी बनी लड़की भी साड़ी उतार यह जा और वह जा।

इशिता और तान्या को तो वह पहचानती थी, पर यह तीसरी लड़की नहीं पहचान में आई। दोनों साड़ियाँ बालकनी से कमरे तक लिपटती चली गई। साड़ियों की दुर्दशा देखकर उसे रोना आ गया। बालकनी में अलग फैलावा फैला हुआ था। सोचा था, पतिदेव के साथ वहीं बैठकर चाय पिएगी, वहाँ से पार्क का दृश्य बहुत अच्छा लगता है। पर डाँटती किसे, रिया रानी तो अपने पापा की गोद में चढ़ी लड़ रही थीं। ऐसे नाजुक मौके पर बिटिया रानी को कुछ भी कहना खतरे से खाली नहीं था।

डाइनिंग टेबल पर चाय-नाश्ता लगाती शिखा ने रिया से पूछा, "क्यों री, वह तीसरी लड़की कौन थी, जो महरी बनी थी।"

"वो लक्ष्मी!"

"हाँ आ, आ!"

"वह तो रामदेई की लड़की है रामदेई, जो इशिता की महरी की लड़की है। अब महरी किसे बनाते, वही मेहरी बन जाती है घर का झाड़ू-पोंछा और बरतन साफ करती है। बाजार से सामान लाती है। वह हमारी हेल्पर है।" रिया ने इतराते हुए कहा।

"अच्छा, वह नौकरानी है तो पहले सारा घर साफ कराकर तब उसे भेजा करो।" शिखा ने सख्ती से कहा।

"वह हमारी सहेली है उससे कैसे कहें।" रिया ने मुँह फुलाते हुए कहा।

"अच्छा भई, अब यों बेटी की चखचख बंद होगी या नहीं।" शिखा के पति ने कहा।

"सही तो कह रही है सहेलियों से कैसे सफाई करवाए।"

"हाँ, उसके लिए तो यों है।" शिखा ने सामान समेटते हुए कहा।

"अच्छा अब दोनों इधर आओ, देखो में दिल्ली से क्या लाया हूँ।"

"यह देखो प्रगति मैदान में ट्रेड फेयर चल रहा था, वहाँ से आंध्रा की स्टॉल से तुम्हारे लिए पोचमपल्ली की खूबसूरत साड़ी लाया हूँ। और अपनी रानी गुड़िया के लिए यह रशियन डॉल।"

"हाय कितनी खूबसूरत है, कितने की है?" शिखा ने हुलसते हुए कहा।

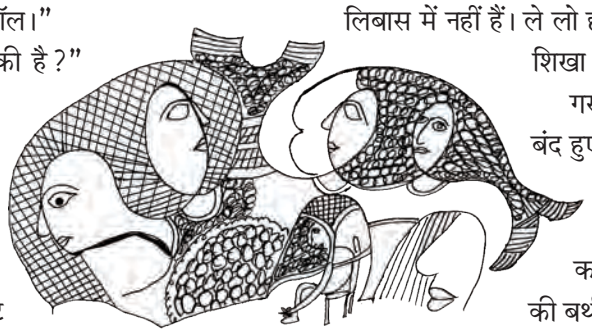

और बिटिया रानी की निगाह तो डॉल-वाल छोड़ उसकी फिरोजी पोचमपल्ली पर थी।

"और उस पैकेट में क्या है?"

शिखा ने सफेद सी मारकीन में लिपटे एक बंडल को देखकर कहा, "इसमें तो बहुत ही कीमती चीज है, यह तुम्हारे लाडले बेटे रोहन के लिए है।"

"अच्छा, अब की उसके भी भाग्य खुल गए, वरन् तो हमेशा बिटिया रानी के खिलौने ही याद रहते हैं।"

"भाग्य, यह भाग्य सब खिलौनों पर भारी है। रोहन कल आएगा, वही खोलेगा।"

"फिर भी क्या है आखिर।"

"अरे भई, वहाँ सचिन तेंदुलकर आया हुआ था, मैंने एक बल्ला खरीदा और उस पर सचिन तेंदुलकर के हस्ताक्षर करवाए और बेटे के लिए ले आया।"

"अरे वाह! रोहन तो बहुत खुश हो जाएगा।"

शिखा ने गुड़िया शो केस में सजा दी, परंतु तब तक पोचमपल्ली खुल चुकी थी और लंबे शीशे के सामने पहनी जा रही थी।

शिखा ने अपना माथा ठोक लिया।

जहाँ पापा यह देखकर सौ जान से फिदा हो रहे, वहाँ शिखा की मुनमुनाहट चालू थी, पारा सातवें आसमान पर था।

"अब इसकी तह कैसे बनेगी। बड़ी मुश्किल से इन साड़ियों की तह बनती है।"

"अपनी गुड़िया की ओर तो नजर उठाकर नहीं देखा। चली हैं साड़ी पहनने। ऊँह।"

"अरे भाई, मेरी बेटी को मत डाँटा करो, मैं तह करवा दूँगा। अब चलो, तैयार हो जाओ, आज माथुर ने बुलाया है खाने पर, उसकी मैरेज एनीवर्सरी है।"

"अच्छा!"

दूसरे दिन रोहन भी लौट आया, सच अपना गिफ्ट देखकर बहुत प्रसन्न हुआ अपने कमरे की अलमारी में हिफाजत से रख दिया।

परंतु रिया रानी की गुड़िया एक दिन भी जो शोकेस में सजी हो।

दूसरे दिन पापा से कहकर ठुनक-ठुनक कर वह गुड़िया उतरवा ली।

"अरे भाई, यह गुड़िया खेलने के लिए लाया हूँ, सजाने के लिए नहीं।"

"अरे, चार दिन तो इसकी शोभा बनी रहे, वरन् और गुड़ियों की तरह यह भी बन जाएगी। 'चयर बसक्को' बाल-वाल शैंपू से नहा धोकर साड़ी लपेट दी जाएगी। इनके मामा लंदन से गुड़िया लाए, क्या गत बनी। आप जापान से लाए, वह भी क्या हाल में है। बार्बी तो कोई भी अपने असल लिबास में नहीं हैं। ले लो हमें क्या है।"

शिखा ने मुँह फुलाते हुए कहा।

गरमियों की छुट्टियाँ खत्म हुईं। खेल-खिलौने बंद हुए। पढ़ाई व किताबों का काम शुरू हो गया। बेटा रोहन धीर-गंभीर सीधा-साधा सा था। रिया की ही भिनभिन चलती। कभी कपड़े चाहिए तो कभी जूते। रोज ही सहेलियों की बर्थ डे होती। हर बार नई ड्रेस चाहिए थी। भय्या तो बेचारा पास से नहीं निकल जाता तो चिल्लाना शुरू हो जाता। "मम्मी भय्या हमारा खेल बिगाड़ रहा है।" वैसे भय्या के बगैर काम भी नहीं चलता।

ऐसे ही खेलने-खाते दिन गुजरने लगे। बच्चे बड़े होकर कॉलेज में पहुँच गए। रोहशा आई.आई.टी. रुड़की चला गया। शिखा के पति की ट्रांसफर वाली नौकरी थी। इसलिए रिया को दिल्ली यूनिवर्सटी में बी.ए. ऑनर्स में दाखिला दिला दिया।

रिया के पापा जिस शहर या प्रदेश में जाते, वहाँ की प्रसिद्ध दो साड़ियाँ अवश्य लाते, एक शिखा की दूसरी रिया की। रिया का बक्शा बनारसी, टिशू, पैंठनी, गदवाल, पोचमपल्ली, कांजीवरम, परोला, बालूचरी, घारचोला, रांगाइल, असमी, वल्लकलम, केरला साड़ी, मणिपुर की रानी साड़ी, जयपुरी लहरिया, बोंधनी, कोसा सिल्क, राजकोट गुजरात की सुंदर साड़ियों, महेश्वरी कोटा आदि साड़ियों से भरता जा रहा था। उसका दहेज तो यों ही तैयार हो रहा था। रिया छुट्टियों में घर आती तो एक बार साड़ी का बक्शा खोलकर अवश्य देखती, जो कमी होती वह पापा को बताती, वही साड़ी आ जाती। वैसे वह जींस-टॉप ही रोजमर्रा में पहनती थी, कभी-कभी सलवार-कमीज।

उसके कॉलेज में फ्रेशर की पार्टी थी। कॉलेज क्वीन चुनी जानी थी।

उसने गुलाबी मैसूर क्रेप पहनी, जो उसके गुलाबी तन पर बहुत खिल रही थी। कमर तक लहराते काले घने केश खुले छोड़े थे। सबका कहना था कि वही जीतेगी। परंतु जीती लाल वेस्टर्न गाउन में सज्जित एक लड़की और वह रनर-अप रही। खैर, उसे कुछ भी मलाल नहीं हुआ अपनी पारंपरिक सज्जा पर।

रिया ने बी.ए. ऑनर्स किया और फिर एम.ए. इकोनॉमिक्स और फिर लंदन भी गई इकोनॉमिक्स पढ़ने। वहाँ से लौटकर आई तो उसका विवाह तय हो गया। उसका भावी पति प्रतीक एक विदेशी कंपनी में मुंबई में था। दिल्ली में ही ससुराल थी। इत्तफाक से रिया के पिता भी दिल्ली में पोस्टेड थे। ससुराल वालों के यहाँ आना-जाना रहता, सास-ससुर बहुत अच्छे थे, एक ब्याही हुई ननद थी। वह भी दिल्ली में ही थी।

उन लोगों की कोई भी डिमांड नहीं थी, फिर भी रिया के पापा उसका दहेज भरने में लगे थे। उसकी ननद और सास उसे प्राय: बुलवा लेतीं जेवर पसंद करने, कपड़े पसंद करने।

एक दिन अपनी साड़ियों का निरीक्षण करती रिया बोली, "पापा, मेरे ट्रूसो में चंदेरी साड़ी नहीं है।"

"ठीक है, आ जाएगी। अगले हफ्ते में ग्वालियर जा रहा हूँ, तभी लाऊँगा।"

रिया के पापा ने अपना वादा पूरा किया।

वह आए तो बोले, "तुम्हारी साड़ी सट्टी पर बुनकरों को दे आया हूँ। पंद्रह दिन में आ जाएगी। असल में चंदेरी में भी वह पहले वाली साड़ियों की बात नहीं रही, सब सूती कपड़े में बना रहे हैं। कहते हैं, साहब, वह पहले वाला सिल्क बाई सिल्क कपड़ा कहाँ आता है। बुनकरों की भी हालत बदतर है। खैर, तुम्हारी तो बहुत खूबसूरत साड़ी आएगी।

वास्तव में साड़ी आई तो बहुत खूबसूरत थी, काली मुलायम सतह पर रुपहली बूँटियाँ खूबसूरत कामदार पल्ला। रिया बाग-बाग हो उठी, साड़ी के साथ का नेक स्टाइलिश लंबी बाँहों का ब्लाउज बनवाया गया। कुछ अनारकली सूट भी खरीदे गए और रिया का ट्रूसो सज गया।

रिया की प्रतीक से फोन पर बातचीत होती। उसी ने बताया कि वे लोग हनीमून पर यूरोप जाएँगे। लौटते समय दो दिन के लिए सैशल जाएँगे। एक दिन उसकी ननद आई, बोली, "भाभी, चलिए मॉल चलिए। कुछ कपड़े खरीदते हैं।"

"कपड़े तो बहुत हैं मेरे पास।" वह धीरे से बोली।

"अरे नहीं, हनीमून पर ये कपड़े नहीं चलेंगे। सब वेस्टर्न खरीदते हैं। भय्या को वेस्टर्न ड्रेसेस पसंद हैं।"

वह चुपचाप साथ चली तो गई परंतु वेस्टर्न ड्रेसेस देखकर जरा भी रोमांचित नहीं हुई। एक ट्रॉली भी खरीदी गई।

हनीस की भी अटैची तैयार हो गई। शिखा ने सलाह दी, एक-दो साड़ी व सलवार-कमीज भी अवश्य रख लेना तथा उससे मैचिंग ज्वैलरी भी। क्योंकि तेरी बड़ी भाभी जो वहाँ रहती हैं, अपनी बीमारी के चलते यहाँ शादी में नहीं आएँगी। मिलने जाना तो साड़ी पहनकर। तुम्हारे ससुरालिए भी तो वहाँ बहुत हैं, मिलने जाना तो साड़ी या सलवार-कमीज में।

रिया ने ऐसा ही करना चाहा, परंतु उसके पति ने सारी भारतीय पोशाकें निकलवा दीं। अब उन पोशाकों के साथ सिंदूर बिंदी व चूड़ियाँ भी क्या जँचती। हाथों में हीरे के कंगन और कानों में हीरे के टॉप्स, नाक में हीरे की छोटी सी लौंग, बस यही शृंगार था। यदि मेहँदी नहीं होती तो वह कॉलेज में पढ़ने वाली लड़की लगती। उसके पति को उसका यही गेटअप पसंद था। लंबा छरहरा गोरा शरीर व खूबसूरत बड़ी-बड़ी आँखों व सुतवाँ नाक वाला सलोना चेहरा।

रिया पूरे यूरोप में वेस्टर्न ड्रेस में ही घूमी। रिश्तेदारों से भी उसी गेटअप में मिली। सच पूछो तो उसे छोटी-छोटी स्लीवलेस मिनी में सबसे मिलने में लज्जा ही आई। इससे तो जींस ही ठीक थी, पर उसके टॉप भी छोटे-छोटे थे। इससे पूर्व दिल्ली में रहते हुए भी उसने ऐसे कपड़े नहीं पहने थे। उसका मन तो अपनी उन साड़ियों में अटका हुआ था, जिन्हें वह बक्से में उपेक्षित छोड़ आई थी। देश-प्रदेश की रंगीन रेशमी साड़ियों का कलेक्शन, जो कितने उमंग व चाव से उसके माँ-पापा ने एकत्र किया था। सच में वह साड़ी में लगती भी मॉडल सी थी।

रिया जब ब्याह कर आई तो बक्सा खुलाई की रस्म हुई। उसकी सास ने काली चंदेरी देखते ही कहा कि साल भर तक काली साड़ी मत पहनना, हमारे यहाँ अपशगुन माना जाता है।

यह सुनते ही उसकी ननद ने वह साड़ी खींच ली, "भाभी, मैं तो यही साड़ी लूँगी, तुम तो अभी पहन भी नहीं सकतीं।"

रिया की क्या दशा हो सकती है अपनी प्रिय साड़ी को हाथ से जाते देखकर। वह खिसियाकर मुसकराकर रह गई।

और अब जो प्रतीक रोज काली, नीली ड्रेस ही पहना रहा है, वह कुछ नहीं। उसे तो फोटो खिंचाने में भी दिलचस्पी नहीं आ रही थी।

मुंबई लौटकर आए तो यहाँ भी अभी रातें सुनहरी और दिन चाँदी के हो रहे थे। रोज ही कहीं-न-कहीं डिनर होता और प्रतीक अपने मनपसंद कपड़े पहनाकर ले जाता। कहीं उसे प्रशंसा की दृष्टि से देखा जाता तो कहीं व्यंग्यात्मक दृष्टि से एक-दो परिवारों में जहाँ उसे पता चलता कि वहाँ बुर्जुग माता-पिता भी हैं, वह जिद्द कर साड़ी पहनकर ही गई। और पूरी पारंपरिक सज्जा से गई। लोगों ने बहुत प्रशंसा की।

यदा-कदा रिश्तेदारों के घर या पूजा-पाठ में अपनी प्रिय पोशाक ही पहनती, साथ ही मैचिंग ज्वैलरी चूड़ियों से सज-धजकर वह जाती तो नई नवेली मुग्धा दुलहन लगती।

पर अपनी प्रिय साड़ी के ननद के हाथों जाने का उसे बहुत दु:ख

है। उसने कई बार प्रतीक को बताना चाहा कि हर जगह वेस्टर्न ड्रेस नहीं चलती है। "कहो तो मैं जींस व कुरती ही पहना करूँ, पर शार्ट्स अच्छी नहीं लगती, छोटी भिड़ी भी अच्छी नहीं लगती।"

एक दिन प्रतीक बहुत खुश होकर आया—

"मेरी जान, हमारी कंपनी का फैशन शो है, रैंप पर चलना है, तुम्हारी जैसी सुंदरी का नाम दे आया हूँ।"

"अरे नहीं, नहीं, मैं नहीं जाऊँगी, तुम्हारी कंपनी में तो कितनी सुंदर अवविवाहित लड़कियाँ हैं, मैं कहाँ हूँ।"

"क्यों नहीं हो!" प्रतीक ने उसे आलिंगनबद्ध करते हुए कहा।

"मैंने पेरिस के एक स्टोर से लाल रंग का गाउन भी मँगवाया है। पिछली बार टूर पर गया था, देखकर आया था। वही पहनोगी।"

रिया पति का उत्साह देखकर स्वयं भी उत्साहित हो गई। रोज कैट वॉक की प्रैक्टिस करती। एक दिन वह गाउन भी आएगा। खूबसूरत पीस जिस पर लाल सतह पर मोती जड़े थे। साथ ही मोतियों की ज्वैलरी।

शिखा देखकर अभिभूत हो गई अपने पति की पसंद पर। प्लास्टिक लपेटकर टाँग दिया गया। परंतु रिया ने तो कुछ और सोच रखा था, उसने भी अपने मन में एक निर्णय लिया।

कंपनी के प्रोग्राम की तैयारी जोर-शोर से थी, कोई विदेशी कंपनी के साथ लांच हो रहा था। अनेक प्रोग्राम थे, डिनर था व गहमा-गहमी थी।

प्रोग्राम से एक दिन पूर्व रात्रि में देर ग्यारह बजे घंटी बजी—

"कौन होगा," कहते हुए प्रतीक ने होल से देखा। दरवाजा खोला तो रिया के भाई साहब रोहन थे।

"अरे भय्या आप, सरप्राइज, फोन तो किया होता।"

"अच्छा हुआ भय्या! आप आए, कल कंपनी का एनुअल फंक्शन है, आपकी बहन भी भाग ले रही है। मैं कल्चरल कमेटी का इनचार्ज हूँ। कल देखिएगा। आपकी बहन ही जीतेगी।"

"हाँ, वो तो है।" रोहन ने कहा।

दूसरे दिन प्रतीक दोपहर को ही चला गया, रिया को तरह-तरह के निर्देश देकर। "पीछे के दरवाजे से ग्रीन रूम में चली जाना। देर मत करना। भय्या आप यह कार्ड लेकर हॉल में आ जाइएगा, मैं मिल जाऊँगा।" रिया का दिल धक-धक कर रहा था, वह थोड़ी नर्वस भी थी। रोहन ने सांत्वना दी।

शाम हुई, प्रोग्राम आरंभ हो गए, रोहन और प्रतीक पास-पास बैठे थे। फैशन शो आरंभ हुआ, मद्धिम-मद्धिम संगीत और स्टेज पर प्रकाश एक के बाद एक सुंदरियाँ आती गईं। प्रतीक की निगाहें तो बस रिया पर थीं। रिया का नाम एनाउंस हुआ। प्रतीक के माथे पर पसीने की बूँदें थीं। वह भी नर्वस था, रिया कैट वॉक करती रैंप पर आई, पर यह क्या? रिया ने काली रुपहली साड़ी पहनी थी। कोहनी तक बाँह का बैकलेस ब्लाउज, कानों में बड़े-बड़े हीरे के कर्णफूल तथा लंबे घने बालों का ऊँचा जूड़ा और गले में झिलमिलाता हीरे का हार।

हॉल तालियों से गड़गड़ा गया। 'वन्स मोर' के नारे से हॉल गूँज उठा।

प्रतीक का मुँह खुला का खुला रह गया। रोहन ने कनखियों से प्रतीक को देखा—

"क्या समझते हो मियाँ, तुम पेरिस से मँगवा सकते हो तो क्या वह चंदेरी से साड़ी नहीं मँगवा सकती।

प्रथम पुरस्कार रिया ने ही जीता

जीत भारतीयता की ही हुई।

साअ
ई-११५, सेक्टर-५२
नोएडा (उ.प्र.)
दूरभाष : ९१३६१११९९९

पाठकों से निवेदन

- जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवा लें। साथ ही अपने मित्रों, संबंधियों को भी सदस्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।
- सदस्यता के नवीनीकरण अथवा पत्राचार के समय कृपया अपने सदस्यता क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
- सदस्यता शुल्क यदि मनीऑर्डर द्वारा भेजें तो कृपया इसकी सूचना अलग से पत्र द्वारा अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख करते हुए दें।
- चैक साहित्य अमृत के नाम से भेजे जा सकते हैं।
- ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं. 600120110001052 IFSC–BKID 0006001 में साहित्य अमृत के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें।
- आपको अगर साहित्य अमृत का अंक प्राप्त न हो रहा हो तो कृपया अपने पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन या पोस्टमास्टर से लिखित निवेदन करें। ऐसा करने पर कई पाठकों को पत्रिका समय पर प्राप्त होने लगी है।
- सदस्यता संबंधी किसी भी शिकायत के लिए कृपया फोन नं. 011-23257555, 8448612269 अथवा sahityaamritindia@gmail.com पर इ-मेल करें।

हरित मानसिकता की जरूरत

• गिरीश्वर मिश्र

आज सबके मन में पर्यावरण को लेकर एक खौफ बैठा हुआ है। ओजोन की परत में छेद से होकर आनेवाली सूर्य की रश्मियाँ खतरनाक हो रही हैं। हमारे खाद्य पदार्थ कीटनाशकों और अन्य रसायनों से प्रदूषित हो रहे हैं। पीने के लिए निर्मल शुद्ध जल प्राय: अनुपलब्ध है। जलवायु-परिवर्तन के क्या-क्या परिणाम हो सकते हैं, इसकी झलक आए दिन मौसम में हो रहे बदलावों से मिलती है। इनसे हरित गैसों से तप्त धरती का क्या हाल होगा, इसकी चेतावनी भी मिलती है। घर और बाहर की हवा हानिकारक रसायनों से भरी रहती है और साँस लेना दूभर होता जा रहा है। भोज्य पदार्थ की आनुवंशिक इंजीनियरिंग और बीजों के पेटेंट होने से प्राकृतिक भोज्य पदार्थों तक हमारी पहुँच घटती जा रही है और विश्व की अधिकांश जनसंख्या के लिए भोजन के साधन भी घट रहे हैं। जिस वेग से वैश्विक गरमी बढ़ रही है, वह दुनिया को ऐसे बिंदु पर पहुँचा रही है, जिससे बाढ़, भोजन और जल की कमी, विस्थापन, संसाधनों के लिए हिंसात्मक संघर्ष अवश्यंभावी होता जा रहा है।

सिर्फ अमेरिका में नौ बिलियन पशु प्रतिवर्ष भोजन के काम आते हैं। इसके चलते अनेक जीव-जंतुओं की प्रजातियाँ विलुप्त हो रही हैं। जल-प्रदूषण, मल और अपशिष्ट के निरंतर एकत्र होते रहने, वनों की कटाई आदि से ओजोन की परत को भी सतत हानि हो रही है। वर्षा-वन और समुद्र के भीतर का जीव-जगत् है, जो विविध जीव-प्रजातियों के संरक्षण का स्रोत है और जिससे जीवन के जटिल रूपों का विकास होता है, वह भी मनुष्य द्वारा दोहन के कारण बुरी तरह दुष्प्रभावित हो रहा है। धरती पर उपलब्ध संसाधनों की तुलना में जनसंख्या अधिक है और यह स्थिति सफल जीवन जीने के लिए उपयुक्त नहीं बैठ रही है। संतुष्टि न हो सकने वाली हमारी उपभोग-वृत्ति और लोभ के कारण निकलता कूड़ा और अपशिष्ट का स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव बढ़ता जा रहा है। कैंसर जैसे असाध्य रोग की बहुतायत चिंताजनक हो रही है। पहाड़ों, नदियों, घाटियों और वनोंवाले प्रकृति के रम्य सौंदर्य स्थल, जो आध्यात्मिक ऊर्जा के स्रोत हैं, खत्म होते जा रहे हैं। नाभिकीय ऊर्जा से सबकुछ समाप्त करनेवाले शस्त्रास्त्र बनाने की होड़ थमने का नाम नहीं ले रही है।

विचारक एवं संस्कृति के अध्येता लेखक। लिखित एवं संपादित अनेक पुस्तकें प्रकाशित। गोरखपुर, इलाहाबाद, भोपाल तथा दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापन के बाद महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के कुलपति पद से सेवानिवृत्त। पत्र-पत्रिकाओं में नियमित लेखन। अनेक सम्मान एवं पुरस्कारों से सम्मानित।

आज हम प्रौद्योगिकी की बदौलत लाखों लोगों को बंदी बना सकते हैं और लोगों के व्यवहार को नियंत्रित कर सकते हैं, परंतु हमारी बुद्धि और लोभ के ये तकनीकी उत्पाद इस पृथ्वी को एक सुरक्षित स्थान नहीं बना पा रहे हैं। कुल मिलाकर परिवर्तन इतने बड़े पैमाने पर हो रहे हैं कि आदमी के लिए स्वाभाविक नैसर्गिक दशा में जीने और अपनी क्षमताओं का उपयोग करना असंभव सा हो रहा है। यह सब करते हुए हम अपनी मुख्य भूमिका से चूक गए। हमारी सामाजिक रचनाएँ, जो तथाकथित रूप से सत्य और उचित के निश्चय के लिए हैं, मनुष्य और मनुष्येतर प्राणियों की खुशहाली के बारे में मौन हैं, क्योंकि सोच-विचार की धारा परिस्थितियों के दुरुपयोग की ओर ले जाती है। एक निपट अकेले व्यक्ति का विकास ही उसके केंद्र में है और उसी की आत्मकेंद्रित सर्जनात्मकता पर बल दिया जाता है। मनुष्य और पशु-पक्षी तथा भौतिक पदार्थों के बीच एक कृत्रिम विभाजक रेखा बनाई गई, जो व्यापक दृष्टि से उपयोगी नहीं है। हमारे पास एक टिकाऊ विश्व व्यवस्था की कोई स्वीकार्य दृष्टि नहीं है। विज्ञान, प्रौद्योगिकी और व्यापार घोर वैयक्तिकता वाली विश्व दृष्टि पर टिके हुए हैं। यह नियति का खेल है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संरक्षण

के नियम को कॉर्पोरेट के संरक्षण में सहयोगी बनते हैं, ताकि उन्हें मुक्त व्यापार की छूट मिल सके, जो मूलत: संस्कृति के संरक्षण और पर्यावरण की सुरक्षा के विरुद्ध हैं।

उल्लेखनीय है कि वैश्विक दबाव सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता को समाप्त करते हैं। वे एकरस मानसिक संस्कृति (मोनो कल्चर) रचते हैं। यह सभी अनुभव कर रहे हैं कि विज्ञान और तकनीकी का विकास वस्तु की दुनिया पर स्वामित्व पाने के लिए है। परंतु स्पर्धा की दौड़ में जितना भी हासिल किया जाए, वह प्रतियोगी लोगों के बीच अपनी स्थिति को सुनिश्चित करने के लिए हमेशा ही नाकाफी रहेगा। इस तरह की संस्कृति में प्रचंड उपभोग के लक्ष्य तृप्त न होने के कारण सदैव काम्य बने रहते हैं। इसीलिए सत्ता संचित होती है, जो मनुष्य की संभावना को नष्ट करती है। आज का सभ्य आदमी अपने ही द्वारा पैदा की गई प्रौद्योगिकी की व्यवस्था से जूझने में ज्यादा समय बिताता है। भोजन, यात्रा, संचार सब तरह के काम के लिए विशेषज्ञ की जरूरत पड़ती है। हमें प्रतियोगी इसलिए बनाया जा रहा है कि हम विस्तृत होते उस अर्थतंत्र के हिस्से बन जाएँ, जो धरती की नैसर्गिक संपदा का खतरनाक ढंग से दोहन करता है और सिर्फ उत्पादन एक उपभोग को ही महत्त्व देता है। वह स्थानीय लोगों और आदिवासियों के हित की रक्षा नहीं करता है। इन सबके चलते वन की कटाई, धरती की ऑक्सीजन की आपूर्ति में कमी, औषधीय वृक्षों का उन्मूलन, जल-प्रदूषण, तनाव, हिंसा, गरीबी आदि व्यक्ति और धरती के रिश्ते को त्रस्त कर रहे हैं।

आज का सभ्य आदमी अपने ही द्वारा पैदा की गई प्रौद्योगिकी की व्यवस्था से जूझने में ज्यादा समय बिताता है। भोजन, यात्रा, संचार सब तरह के काम के लिए विशेषज्ञ की जरूरत पड़ती है। हमें प्रतियोगी इसलिए बनाया जा रहा है कि हम विस्तृत होते उस अर्थतंत्र के हिस्से बन जाएँ, जो धरती की नैसर्गिक संपदा का खतरनाक ढंग से दोहन करता है और सिर्फ उत्पादन एक उपभोग को ही महत्त्व देता है। वह स्थानीय लोगों और आदिवासियों के हित की रक्षा नहीं करता है। इन सबके चलते वन की कटाई, धरती की ऑक्सीजन की आपूर्ति में कमी, औषधीय वृक्षों का उन्मूलन, जल-प्रदूषण, तनाव, हिंसा, गरीबी आदि व्यक्ति और धरती के रिश्ते को त्रस्त कर रहे हैं।

आज एक पारिस्थितिक आत्म या स्व (सेल्फ) की अवधारणा पर विचार करना जरूरी होता जा रहा है, जो सभी प्रकार के जीवन का समावेश कर सके और उनके साथ एकता को भी ध्यान में रख सके। आधुनिक जीवन की बढ़ती जटिलताएँ अपने परिवेश को समझने, अधिकार में लेने और नियंत्रण करने की होड़ में हमारे जीवनानुभव के मुख्य हिस्से या जड़ों से दूर होते जा रहे हैं। फलत: आज चिंता, अवसाद, संशय और अकेलेपन से जूझते व्यक्तियों का हुजूम दिख रहा है, जो अकेलेपन और असहायता की भावनाओं से विकल है। तकनीकी विकास, व्यवसाय में कठिन प्रतिस्पर्धा और वैयक्तिकता के चलते लोग तनाव के शिकार हो रहे हैं। प्रकृति के साथ जुड़कर एक संतोषदाई जीवन की संभावना आगे नहीं बढ़ रही है। अपने को अलग और सबसे श्रेष्ठ मानने के भ्रम से प्रकृति के साथ परस्पर निर्भरता वाले रिश्ते की अनदेखी हो रही है। फलत: हम पर्यावरण के लिए समस्याएँ पैदा करते जा रहे हैं। यदि हम मांस, प्लास्टिक, जीवाश्म ईंधन के कम उपयोग के साथ जीना सीख लें, यदि हमें विषैले रेडियो विकिरण या रासायनिक अपशिष्ट को नियंत्रित करें तो सृष्टि की देखभाल हो सकेगी। ऐसे में खुशहाली की मृग-मरीचिका वाली अनंत खोज की जगह दया और करुणा की संवेदना आवश्यक हो गई है।

आधुनिक समाज को व्यसन से उबरना होगा। हमारी मानसिकता को हरित बनाना पड़ेगा। मनुष्य को पूरी प्रकृति के साथ जीवंत संबंध रखना होगा। समुद्र, नदी, पशु-पक्षियों की आवाजें हमें गहरे छू जाती हैं; बादल, फूल, संध्या काल में डूबते सूरज की आभा मनुष्य की आत्मा को पुनर्नवा करनेवाली है। मनुष्य होने का अर्थ अन्य मनुष्यों, प्रकृति और सृष्टि के साथ प्रामाणिक रिश्ता बनाना है। हमें सभी जीवन रूपों को आदर देना होगा। वास्तविकता यह है कि मनुष्य की प्रजाति का जीवन परिस्थितिकी के साथ गहरे संबंध की स्थापना की अपेक्षा करता है। ऐसे में हमें व्यापक पारिस्थितिकीय आत्मबोध का विकास करना होगा, जिसमें प्रदूषित दुनिया की व्यथा हमारी व्यथा होगी और सामान्य रूप से जीवन का संरक्षण हमारे अपने जीवन को अर्थवान बनाएगा। यह याद रखनेवाली बात है कि समकालीन सभ्यता ने इस धरती का नक्शा दो सौ वर्षों में जितना बदला है, वह दो मिलियन वर्षों में प्रकृति की सभी शक्तियों से होनेवाले परिवर्तन से अधिक है।

देसी लोग बहुत कम परिवर्तन के वातावरण में रहे। उनकी जीवन शैली में प्रकृति की शक्ति के साथ समरस और समायोजन था। इतिहास गवाह है कि सुमेर, बेबिलोन, ट्राय, एथेंस, रोम, सभी उठे, बढ़े और नष्ट हो गए, परंतु भारत की सभ्यता और संस्कृति बहुत अंशों में सुरक्षित बची रही। यह उसकी समग्र पर बल देनेवाली जीवन-दृष्टि का ही परिणाम था, जो सर्वत्र प्रवहमान किसी अव्यय तत्त्व की उपस्थिति से अनुप्राणित थी। इस दाय को सँभालते हुए हमें प्रकृति के साथ परस्परावलंबन के आधार को सुदृढ़ करना होगा। इसी में हमारा भविष्य निहित है।

३०७, टावर-१ पार्श्वनाथ मैजेस्टिक फ्लोर्स, वैभव खंड
इंदिरापुरम्, गाजियाबाद-२०१०१४
दूरभाष : ९९२२३९९६६६

चुक जाती हैं जब इच्छाएँ

• पुष्पा राही

जानी-मानी कवयित्री। चर्चित कृतियाँ हैं–'कुछ अलग', 'स्वतः', 'शब्द की लहरें', 'स्वयं' तथा 'एक युग के बाद' (काव्य)। हिंदी अकादेमी के 'साहित्यिक कृति पुरस्कार' समेत अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

मीठे से दो शब्द

जो अच्छा लगता हो वह तो कर ही डालो
बुरा लगे जो भी मन को उसको तो टालो

पता नहीं किस घड़ी किसी का हित हो जाए
किया आपका उसका बिगड़ा काम बनाए,
धन्यवाद उसका बन सकता भाग्य तुम्हारा
काम दूसरे के आने की आदत पालो।

हँसी तुम्हारी हो सकता है हँसी उगाए
होंठों के बागीचों में जा फूल खिलाए,
मुसकानें बनकर खुशबू बिखरें हर दिल में
जितनी भी हो सके प्यार की हवा बहा लो।

मीठे से दो शब्द और सब मीठा-मीठा
जरा देखना औरों के दिल में क्या होता,
बदलो पटरी जैसे छुक-छुक रेल बदलती
मुँह फेरे बैठे जो उनको जरा मना लो।

भाग-दौड़ है बहुत मगर दम ले लो थोड़ा
कहीं पटक ही दे न तुम्हें पथ का ही रोड़ा,
क्षण दो क्षण के लिए दूसरों की भी सोचो
बाँटो अपने को थोड़ा तो समय निकालो।

बाँट रहा अपने को जो वह ही है पूरा
वरना तो जो भी है उसका रूप अधूरा,
प्रकृति पूर्ण है वह अपने को बाँट रही है
उसके रंग में अब तुम भी अपने को ढालो।

ले नसीहतें बैठे गुरुजन

वातावरण कहाँ सुधरेगा कोई उसे सुधारे तो
ले नसीहतें बैठे गुरुजन कोई उन्हें पुकारे तो

इतनी बेकदरी भी अच्छी नहीं यहाँ अच्छाई की
टँगी हुई सूली पर नीचे कोई उसे उतारे तो

दंगा भी फसाद भी मारामारी भी है मची हुई
हिंसा का यह कूड़ा-कचरा कोई जरा बुहारे तो

हम भी अलग-अलग हैं वे भी अलग-थलग सारे बैठे
यह अलगाव बड़ा दुखदायी कोई उसे नकारे तो

किसने किया तमाशा यह सब इस पर भी तो गौर करो
है कोई जो इस मुद्दे पर थोड़ा बहुत विचारे तो

अपने बस में तो बस यह है बात करेंगे खरी-खरी
झूठ कहा है, अगर लगे तो, कोई फिर ललकारे तो

ऐसा ही है देश कि जैसे सदियों से उलझी जुल्फें
प्यार मोहब्बत का कंघा ले कोई उसे सँवारे तो

मन थकता तो थकता तन भी

मन थकता तो थकता तन भी
काम न आता फिर चंदन भी

छायादार घने पेड़ों की
छाया देने वाला वन भी

तप्त विचारों की बौछारों
से नहलाने वाला घन भी

चुक जाती हैं जब इच्छाएँ
बेमतलब है जोड़ा घन भी

सपनों के बूढ़ा होने पर
याद नहीं आता बचपन भी

चलना चाहो चला न जाता
राह रोकती राह कठिन भी

होती कहाँ तसल्ली मन को
झूठा लगता अपना प्रण भी

चरम निराशा के क्षण में तो
साथ छोड़ता अपनापन भी
ऐसे में क्या नियमन संयम
आँख दिखाता जब जीवन भी

अरे क्या बात है!

मिलें खजाने भरे अरे क्या बात है!
डूबी किस्मत तरे अरे क्या बात है!

झोली फैला दी है उसके सामने
वह भी तो कुछ करे अरे क्या बात है!

कब तक दर्शक बने तमाशा देखेंगे
रहें परे ही परे अरे क्या बात है!

यह मजाक की बात नहीं तो फिर क्या है
कोई हमसे डरे अरे क्या बात है!

सीधी उँगली घी न निकलता सब कहते
टेढ़ी निकले खरे अरे क्या बात है!

कोई तो ईश्वर से भी यह पूछेगा
माथ चरण क्यों धरें अरे क्या बात है!

वह देवता कहाँ रहता है पता नहीं
जो सारे दुख हरे अरे क्या बात है!

किससे आशा की जाए उस शब्द की
फूल सरीखा झरे अरे क्या बात है!

उस विपदा की आरती उतारो जी
आकर जो खुद टरे अरे क्या बात है!

बड़ा कठिन है उसे ढूँढ़ना दुनिया में
एक बार जो मरे अरे क्या बात है!

एकमात्र वह ही क्षण है

बड़ा मजा आता है जब सब ठीक-ठीक चलता है
जैसे माँ की गोदी में पहला बच्चा पलता है

दूर-दूर तक कोई आहट देती जब न सुनाई
आशंकाएँ भीड़ लगाकर देतीं जब न दुहाई,
जब सपने आँखों में चुप-चुप अपने अंडे सेते
मन-मंदिर में तब पूजा का एक दीप जलता है।

तपती लू की जगह हवाएँ चलती हैं जब ठंडी
कहीं दुबककर सो जाती है जब खतरों की चंडी,
जब आकाश रोशनी के फव्वारों से भर जाता
तब लगता है विस्मृत कोई पुण्य कहीं फलता है।

जब रातों में बिना डरे भरपूर नींद आ जाए
दिन स्वागत में फूलों की मालाएँ लेकर आए,
समय स्वयं संगीत बना-सा उतरे जब जीवन में
उत्सव-सा तब भीतर-भीतर अपनापन ढलता है।

सुख जब चंचल नटखट बच्चे सा खेले आँगन में
दुख जाकर छिप जाए कहीं जब काँटों वाले वन में,
इधर-उधर सब ओर खुले हों जब सारे चौराहे
लगता है छल-कपट झूठ हैं, सच तो निश्छलता है।

नीचे से ऊपर उठकर या उठकर नीचे गिरना
दोनों स्थितियों में समान बहता जब मन का झरना,
विष या अमृत दोनों से परहेज न जब रहता है
एकमात्र वह ही क्षण है जब अहंकार गलता है।

साअ
डी-१३ ए/१८ द्वितीय तल, मॉडल टाउन,
दिल्ली-११०००९
दूरभाष : ०११-२७२१३७१६

डायबिटीज

लघुकथा

● माला वर्मा

सब्जी की दुकान पर भीड़ लगी थी। बड़का-बड़का झोला थामें लोग घूम रहे थे, मौका मिला नहीं कि झोले का मुँह सुरसा की तरह खोल देते। कोरोना और इस लॉकडाउन के चलते ऐसा न हो कि बाजार से जरूरी सामान गायब हो जाए। सरकार के आश्वासन के बाद भी लोगों के मन से डर-भय नहीं खत्म हो रहा था। सभी इसी चक्कर में थे कि अपना घर अनाज-पानी से भर लिया जाए।

मैं भी झोला लिए अपनी बारी का इंतजार कर रही थी। तभी एक बुजुर्ग बंदे को देखा जो झोला आगे बढ़ा दुकानदार को १५ किलो आलू भर देने को कहा।

दुकानदार ने सिर ऊपर उठाया और कहा, 'साहब इतना आलू आपको ही थमा दिया तो बाकि लोगों का क्या होगा? आलू तो सबको चाहिए।

इस पर बुजुर्ग बिफर पड़े और सख्ती से कहा, 'तुम्हारे पास आलूओं की कमी नहीं। मुझे १५ किलो आलू चाहिए। मेरी मरजी।'

दुकानदार ने तराजू पर आलू रखना शुरू किया और बुदबुदा उठा, 'आप कोरोना से भले बच जाए, लेकिन इतना आलू खाकर डायबिटीज से जरूर मर जाएँगे···'

साअ
हाजीनगर,
२४ परगना उत्तर-७४३१३५ (प. बंगाल)
दूरभाष : ९८७४११५८८३

साँकल

● भावना शेखर

दरवाजे पर घंटी बजी तो सिद्धेश्वरी द्वार की ओर लपकी।

"मेमसाब, मैं दिलीप!"

ड्राइवर का स्वर पहचान दरवाजा खुला। दिलीप के साथ मझोले कद की चालीस-पैंतालीस वर्षीय एक औरत खड़ी थी। साधारण नाक-नक्श, गोरा रंग और माथे पर चमकती बिंदिया। दिलीप के बिना कुछ कहे ही सिद्धेश्वरी समझ गई। इशारे से नवागंतुका को भीतर लिया और दरवाजा बंद कर दिया।

पिछले एक सप्ताह से दिलीप आठ-नौ औरतों को ला चुका है, पर बात ही नहीं बन रही, बेहद परेशान है सिद्धेश्वरी।

एक जमाना था, घर में नौकरों की भरमार थी, खाना बनाने वाला महाराज और महरी अलग। तब परिवार भी बड़ा था—तीन बेटियाँ और एक बेटा, फिर गाँव-घर से गोतिया-बिरादरी के दो-एक भानजे-भतीजे पढ़ाई-लिखाई, बीमारी-सीमारी के बहाने आते-जाते रहते थे। धीरे-धीरे बच्चे स्कूल से निकलकर कॉलेज-यूनिवर्सिटी की पढ़ाई के लिए महानगरों में चले गए और उनके शादी-ब्याह के बाद घर खाली हो गया। वीरान हवेली का आकार बढ़ता गया, परिवार सिकुड़ता गया। वफादार नौकरों की कमी और खँडहर होती हवेली को छोड़कर देवेश बाबू पत्नी सिद्धेश्वरी के साथ शहर के नए बसे इलाके के आलीशान फ्लैट में आ बसे।

"क्या नाम है तुम्हारा?" सिद्धेश्वरी ने पूछा।

"गौरी!" कहते हुए उसकी निगाहें बारीकी से ड्राइंग-रूम का मुआयना कर रही थीं।

"वाह, बड़ा सुंदर नाम है, गौरी की तो मैं रोज पूजा करती हूँ।" सिद्धेश्वरी की आस्था शब्दों में उतर आई।

गौरी सिर्फ मुसकराई। दस मिनट के संक्षिप्त वार्त्तालाप में सिद्धेश्वरी की अनुभवी आँखों को गौरी शालीन, शांत, निर्लोभी लगी। दिलीप की लाई सभी औरतें हाथ नचा-नचाकर ऊँची आवाज में काम करने की शर्तें गिनवाया करतीं; होली और दशहरे पर साड़ी, चूड़ी और बख्शीश की भी गरजकर माँग करतीं। सिद्धेश्वरी जीवन भर नौकर-चाकरों के अदब की आदी थी। अभद्र बोलचाल के कारण कोई भी उसके मन न भायी, पर गौरी उसे पसंद आ गई और आज से ही उसे काम पर रख लिया गया।

अब तक जुगनी, खुली छतरी, साँझ का नीला किवाड़, मौन का महाशंख, एक टीचर की डायरी, जीतो सबका मन आदि कविता, कहानी और बाल-गीत की नौ पुस्तकें तथा प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में विभिन्न रचनाएँ प्रकाशित। मधुबन संबोधन पुरस्कार सहित अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

गौरी दिन भर में तीन बार आती। झाड़ू-बासन से लेकर नाश्ते-खाने की तैयारी करती। साथ ही वाशिंग मशीन में पड़े कपड़े पसारना, बालकनी में सजे ढेर सारे गमलों में पानी डालना, घर भर की डस्टिंग, सूखे कपड़े तह बनाना, झाड़ू-पोंछा और ऐसे ही अनगिनत काम निपटाती। सिद्धेश्वरी दो साल से तरस रही थी एक अच्छी मददगार के लिए। गौरी के आने से उसका मन उल्लसित हो गया। हर इतवार को गौरी उसके बालों में तेल लगाती। पीड़ा होने पर सिर और पैरों में मालिश कर देती।

सिद्धेश्वरी को मनचाही मुराद मिल गई थी। तीन महीने बीतते-बीतते गौरी ने मालकिन का मन जीत लिया। वह भी उसे यथासंभव खाने-पीने और पहनने-ओढ़ने की चीजें दिया करती। कभी अपना पुराना शॉल, कभी दरी तो कभी पुरानी चादर। बेटे राहुल की ढेर सारी छोटी हो गई टी शर्ट, कुछ स्वेटर भी उसने निकाल दिए थे। गौरी का बेटा आठवीं में पढ़ता था। पति के बारे में पूछे जाने पर उसने बताया था कि वह दिल्ली गया था काम करने, पिछले तीन बरस से नहीं लौटा है, सुना है उसने कोई और रख ली है।

सिद्धेश्वरी ने विषय बदल दिया था, वह नहीं चाहती थी कि गौरी इस प्रसंग से दुखी हो।

ऐसी गुणी औरत पर मर्द की करतूत देखो···बेचारी, शायद इसीलिए सिदूंर लगाना छोड़ दिया है, बिंदिया तो खूब चमकती है माथे पर। खैर,

रामजी की इच्छा, कौन जग में परम सुखी है, मुझे देखो, क्या राजरानी जैसा जीवन था, इत्ते बड़े कुनबे की जिम्मेदारी निभाई, बच्चों को पढ़ाया-लिखाया, तीन बेटियाँ और दो भतीजियाँ ब्याहीं; सब अपने-अपने घर में राज कर रही हैं, पति का कारोबार रामजी की कृपा से बढ़ता ही गया। एक ही कुलदीपक है—राहुल, पर हो के भी न के बराबर, सोचकर अकेले में ही सिद्धेश्वरी सुबकने लगी।

"सिद्धि, अरे भई! खाना-वाना मिलेगा या नहीं?"

"बस-बस, अभी लाई।" सिद्धेश्वरी ने रसोईघर का रुख किया।

भारी देह, तिस पर जोड़ों का दर्द, पर खाना वह खुद ही बनाती है। पति के हजार कहने पर भी उसने नौकरों से खाना नहीं बनवाया, जब तक बनारसी महाराज था, तब तक वह चौके में झाँकती तक न थी। पर उसके बाद से जात-पाँत को लेकर किसी पर भरोसा न करती। घर में खाने का पहला भोग ठाकुरजी को लगता था, इस कारण खुद भोजन पकाती। यह सिलसिला आज भी बदस्तूर जारी है।

गौरी के आने के बाद अब काम काफी हलका हो गया है। सारी तैयारी वह करके जाती है। चटपट एक सूखी सब्जी, एक रसेदार तरकारी छौंक देनी है और पाँच-छह रोटियाँ सेंकनी हैं, बस काम खत्म। अब तो सिद्धेश्वरी सुबह का पूजा-पाठ और शाम की आरती भी इत्मीनान से करती है। हर पंद्रह दिन पर ठाकुरजी और तमाम मूर्तियों को बड़े थाल में निकाल देती और मंदिर कर देती गौरी के हवाले। गौरी खूब चमका देती मंदिर को, साथ ही ताँबे के पूजा पात्रों और चाँदी के सिंहासनों को भी रगड़ देती। चमचमाते मंदिर को देख सिद्धेश्वरी बच्चों की तरह झूम उठती।

"अरी गौरी, जुग-जुग जीओ; तुमने तो मंदिर को ऐसे चमका दिया, जैसे जयपुर से खरीदकर लाने पर पहली बार जगमगा रहा था।"

बड़े मनोयोग से वह ठाकुरजी व अन्य मूर्तियों को उसमे सजाने लगती।

गौरी को इस घर में आए साल भर हो चला है। पिछले छह महीने से वह प्रसाद की पंजीरी भी बनाने लगी है। अपने मृदुल व्यवहार, साफ सुथरे आचरण और सच्ची सेवा से उसने मालकिन का ऐसा मन जीता कि जो सिद्धेश्वरी किसी से भोजन न बनवाती, वह प्रति माह होने वाले पूर्णमासी-व्रत का प्रसाद उससे बनवाने लगी। गौरी को यह सब बनाना नहीं आता था, पर मालकिन के सिखाने पर जल्द ही वह सीख गई। हालाँकि मंदिर साफ करने और प्रसाद बनाने जैसे कामों से पहले सिद्धेश्वरी उसके हाथ-पैर धुलवाकर कपड़े बदलवाना न भूलती। एक साफ धोती इस काम के लिए सिद्धेश्वरी ने रख छोड़ी थी, जो गौरी काम के बाद उतारकर धो देती और पसारकर उसे यहीं छोड़ जाती।

मौसम में मीठा बदलाव आ रहा था। दस दिन पहले घर में कलश स्थापना हुई थी और आज विसर्जन। मन खाली-खाली था, पर निश्चिंत भी। सिद्धेश्वरी नवरात्र का विधिवत् अनुष्ठान करती थी—दुर्गापाठ, व्रत और फलाहार। शरीर क्लांत हो जाता, पर मन में भक्ति से उपजी तृप्ति बड़ा सुकून देती। इसी सुकून के साथ आज बालकनी में पड़ी आरामकुरसी पर वह आँख मूँदे पसरी है।

"सिद्धि! सो गईं क्या?"

"नहीं तो, बस यों ही।"

"तुमसे एक बात कहनी थी।" देवेश निकट ही कुरसी खींचकर बैठ गए।

"हुँ, बोलो!"

"दीवाली आ रही है!"

जानी-पहचानी आशंका से सिद्धेश्वरी की भृकुटि तन गई।

"इस बार राहुल को बुला लेते हैं।"

"बिल्कुल नहीं।" सिद्धेश्वरी की देह में बिजली दौड़ गई। वह तनकर खड़ी हुई और झटके से घर के भीतर चली गई।

देवेश पीछे-पीछे गए, पर पहुँचने से पहले दरवाजा उनके मुख पर पटक दिया गया। आज भी देवेश की कोशिश नाकाम रही। पिछले दो साल में कितनी ही बार उन्होंने प्रयास किया है माँ-बेटे के बीच पुल बनने का, परंतु सिद्धेश्वरी पुल का सिरा थामने से पहले ही कोपभवन में चली जाती और टूटे पुल की तरह देवेश का प्रस्ताव अधर में लटक जाता। वे इस मुद्दे पर कड़ा रुख अपनाना नहीं चाहते। सिद्धेश्वरी को हार्ट-अटैक जो आ चुका है, शरीर कमजोर है, मन आहत। ऐसे में देवेश मन मारकर रह जाते हैं। आखिर उन्हें भी तो गहरा धक्का लगा था। राहुल की शादी की खबर सुनकर जैसे काठ मार गया था।

वाराणसी का राजपुरोहित वंश श्रेष्ठ कुलगोत्र के कारण ब्राह्मण समाज का सिरमौर था। हवन और यज्ञ की समिधा से सुगंधित वातावरण, मंत्रोच्चार की ध्वनियाँ और वैदिक विधिविधान—यही जीवनचर्या थी देवेशचंद्र त्रिपाठी के पूर्वजों की। पर वक्त की बदलती बयार और आधुनिक तालीम का ऐसा असर हुआ कि देवेश ने पुश्तैनी कर्मकांड और पुरोहिताई छोड़ व्यापार में हाथ आजमाया। व्यापार भी सरस्वती से जुड़ा, आज वह एक सफल प्रकाशक है और बनारस के साथ दिल्ली में भी पुरोहित प्रकाशन संस्थान की नई शाखा खोल चुका है ।

एकमात्र पुत्र राहुल ने विदेश से प्रबंधन की डिग्री हासिल की और देवेश ने दिल्ली की कंपनी का कार्यभार उसे सौंप दिया। कहते हैं सरस्वती और लक्ष्मी साथ नहीं रहतीं, पर राहुल ने इस कहावत को पलट दिया। सरस्वती तो उसे सिद्ध थी ही, लक्ष्मी भी भरपूर बरसने लगी। पुरोहित वंश की धार्मिक विरासत को कुलवधू सिद्धेश्वरी बड़ी गरिमा के साथ आजीवन सँभाले रही। पिता-पुत्र की सफलता व परिवार की सुख समृद्धि का श्रेय हर कोई सिद्धेश्वरी को देता। सिद्धेश्वरी सुनकर फूली न समाती और सौ-सौ बार ठाकुरजी के आगे शीश नवाती।

"ऐसे ही राखो गोपाल गिरधर मुरलीधर!" पर मुरलीधर की मुरली में कौन से सुर छिपे थे, कौन सी तान थी उसके भविष्य की, न वह सुन पाई, न समझ पाई।

बस एक खबर आई और तुषारपात हो गया, सारे स्वप्न बिखर गए, मनसूबों का महल ढह गया···।

त्रिपाठी परिवार के लिए यह बात किसी अनर्थ से कम नहीं थी कि खानदान के इकलौते वारिस ने एक मुस्लिम लड़की से कोर्ट में शादी कर ली थी।

"हे राम··· हे प्रभु!" कहकर सिद्धेश्वरी जमीन पर लुढ़क गई थी। होश आने पर महीना भर घर में ऐसे मातम छाया रहा, जैसे जवान बेटा मर गया हो। सचमुच माँ-बाप के लिए यह सबसे प्यारे रिश्ते की मौत थी, सबसे बड़ा कुठाराघात, कभी पूरी न होने वाली अपूरणीय क्षति, कभी न भरने वाला घाव।

धीरे-धीरे देवेशचंद्र ने खुद को ढाँढ़स बँधाया और दिल्ली जाकर बेटे से मिले। राहुल को घर आने की इजाजत नहीं थी। वह शादी के फौरन बाद अपनी दुलहन को लेकर अम्मा-बाबा का आशीष लेने आया था, पर माँ-बाप ने दरवाजा तक न खोला। अपने जज्बातों पर वे पहले ही ताला जड़ चुके थे। बेटियों के फोन आए, लाख समझाया, लेकिन इस घर पर वज्रपात हो चुका था। मानो सबकुछ जड़ हो गया हो।

दिल्ली से लौटने के बाद देवेश का मन कुछ पिघला हुआ था। उन्होंने समझाया कि बहू सुशील और संस्कारी है।

"वह मलेच्छन है, सिर्फ मलेच्छन!" सिद्धेश्वरी की दहाड़ सुन देवेश सकपका गए थे।

उसके बाद पिता-पुत्र में फोन पर अकसर व्यापार संबंधी बातें होतीं, यदा-कदा भावनात्मक बातें भी, परंतु सिद्धेश्वरी जीवन भर के लिए पुत्र से रूठ चुकी थी। आज दो बरस हो गए राहुल के विवाह को। पिछली दीवाली को भी देवेश ने पुत्र को बुलाने का आग्रह किया था, जिसे आज ही की तरह सिद्धेश्वरी ने बड़ी निर्ममता से ठुकरा दिया था। देवेश कभी-कभी अचंभित होते थे सोचकर कि सिद्धेश्वरी कितनी कठोर हो गई है। एक बार उन्होंने कड़ा रुख अपनाया था, और कहा था, "यह मेरा घर है, मेरा निर्णय है कि राहुल यहाँ आए, तुम कौन होती हो मुझे रोकने वाली?"

"मैं हूँ त्रिपाठी कुल की वधू। राजपुरोहित परिवार की धरोहर को सँभालने वाली, पुरखों की प्रतिष्ठा की रक्षा करने वाली, अपनी आस्था से इस घर को सींचने वाली, जब तक मेरी साँस है, इस घर की चौखट अपवित्र नहीं हो सकती। मेरे जीते जी वह पतित यहाँ पैर नहीं धर सकती।" एक ही साँस में सिद्धेश्वरी बोले जा रही थी, आँखों में ज्वार था, उग्र स्वर थमने का नाम नहीं ले रहा था ।

"यदि इतना ही शौक है मेरे घर को भ्रष्ट करने का तो जहर की पुड़िया ला दो मेरे लिए और मेरे साथ मेरे ठाकुरजी को भी गंगा में डुबो दो, फिर पुरखों का नाम जैसे उछालना हो उछाल लेना, पर जीते जी यह अनर्थ···" और सिद्धेश्वरी का स्वर दिल का दौरा पड़ने पर ही बंद हुआ था।

तब से देवेशचंद्र ने राहुल का प्रसंग न छेड़ने का प्रण कर लिया था, पर आज अनचाहे खुद से किया वादा टूट गया।

आज भी सिद्धेश्वरी के कोपभवन के कपाट गौरी की पुकार पर ही खुले। आखिर दीवाली आई। देवेशचंद्र त्योहार के दिन भी उदास और गमगीन रहे। अलबत्ता गौरी ने अपनी मुखरता से घर में पसरे मौन को जरूर भंग किया। पड़ोस के घरों की देखा-देखी उसने हल्दी और रोली में चावल रँगकर खूब सुदर रंगोली बनाई। दीयों का थाल सजा दिया, दिन भर पकवान बनाने में मशगूल रही।

अगले दिन बुझे दीपों को देख सिद्धेश्वरी का मन भी कुछ बुझ गया। पति द्वारा राहुल को बुलाए जाने की बात याद आई। मन भावुक हो इसके पूर्व विचार को यों झटक दिया, जैसे पाँव में लिपटा कोई साँप हो। परंतु एक वजह थी कि आज रह-रहकर राहुल का खयाल अनचाहे उसके मन पर कब्जा कर रहा था। दरअसल पिछले हफ्ते उसने देवेश को छोटी बेटी अनुराधा से फोन पर बतियाते सुना था कि राबिया प्रेगनेंट है, वे उसे बहू की खबर लेते रहने की हिदायत दे रहे थे।

यह खबर सिद्धेश्वरी के मन पर पड़ी साँकल को चोरी-चोरी छू रही थी।

गौरी को सिद्धेश्वरी के यहाँ काम करते लगभग डेढ़ बरस बीत गया था। वह परिवार की अपरिहार्य सदस्या बन चुकी थी। नए साल पर सिद्धेश्वरी ने उसे नया शॉल दिया। गौरी सकुचाते हुए बोली, "मेमसाब, अभी तो आपने दीवाली पर साड़ी दी थी, इसकी क्या जरूरत है?"

"अरी, रख ले! जाड़ा बढ़ रहा है, मेरा इतना खयाल रखती है, मैं तेरी फिकर न करूँगी तो कौन करेगा?" सिद्धेश्वरी का स्वर लाड़ में सना था।

गौरी ने शॉल ले लिया और रसोई में घुस गई।

कुछ दिन बाद देवेश काम के सिलसिले में मुंबई गए। इस बीच सिद्धेश्वरी को किसी रिश्तेदार के यहाँ जाना था। ड्राइवर ने गाड़ी निकाली, वह गाड़ी में सवार हुई। लौटते-लौटते चार बज गए। वह चिंतित थी, गौरी के आने का वक्त हो चला है, कहीं घर में ताला देख वह चली न जाए।

"ड्राइवर, जल्दी चलो, पर रुको···घर पर दूध-दही सब चुक गया है, जरा जाओ···दौड़कर मिल्क बूथ से दो-दो पैकेट दूध-दही लेते आना।"

पहले 'जल्दी' फिर 'रुको' सुनकर ड्राइवर ने गाड़ी की गति बढ़ाकर घटा दी और क्रमशः लुढ़काते हुए उसे सड़क के किनारे लगा दिया, सिद्धेश्वरी ने नोट पकड़ाए और वह सड़क के दूसरी ओर बने मिल्क बूथ पर चला गया।

सिद्धेश्वरी कभी घड़ी पर निगाह डालती, कभी सड़क के पार मिल्क बूथ पर। तभी उसकी नजर तेज कदमों से पीछे से आती एक बुर्काधारी महिला पर पड़ी, जो पास के खँडहर के पीछे गई। उधर कोई मकान नहीं था, वह किसी पुराने मंदिर की टूटी सी दीवार थी। सिद्धेश्वरी उत्सुक हुई कि वह महिला पीछे क्या करने गई, शायद लघुशंका···किंतु पीछे तो खुला इलाका है···

अचानक उसे झटका लगा, दो मिनट बाद खँडहर के पीछे से महिला निकलकर सीधी चलने लगी, पर यह क्या···यह तो गौरी है, हाथ के झोले से उसने कुछ निकाला···बिंदी का पत्ता···चलते-चलते माथे पर लाल बिंदी चिपकाई। सिद्धेश्वरी ने पुन: खँडहर की ओर दृष्टि डाली···वह बुर्केवाली महिला ? कुछ और सोचने से पूर्व उसके मस्तिष्क ने जो संदेश दिए, उससे वह बुरी तरह चौंक गई।

ड्राइवर दूध-दही ले आया था और गाड़ी तेजी से घर की ओर दौड़ पड़ी। अगले पाँच मिनट में वह अपने घर पर थी। छह-सात मिनट बाद घंटी बजी, दरवाजा खुला, गौरी आई और रसोई की ओर बढ़ गई।

सिद्धेश्वरी अपने कमरे में गई और बिना कपड़े बदले ही पलंग पर चित लेट गई। अँधेरे में वह छत की ओर ऐसे एकटक देख रही थी, जैसे सुई में धागा डाल रही हो।

"मेमसाब, सब हो गया, मैं जा रही हूँ।" गौरी ने किवाड़ धकेला फिर धीरे से भिड़का दिया। जब भी मेमसाब की आँख लग जाती है, वह बाधित किए बिना चली जाती है। दरवाजे पर मास्टर लॉक लगा है, जो अपने आप बंद हो जाता है। सिद्धेश्वरी को दरवाजा बंद होने की आहट मिली।

यह संयोग था कि आज वह घर पर निपट अकेली थी। अच्छा ही हुआ, पति होते तो क्या कहती।

उसे पिछले डेढ़ साल में चित्र-विचित्र भाव-भंगिमाओं के साथ गौरी के हजार रूप याद आने लगे···शांत, भोली, कर्मठ, हँसती, आटा गूँथती, पौधे सींचती, मंदिर साफ करती, प्रसाद बनाती, दीये जलाती, उसके बालों में तेल लगाती, पैर दबाती, मुसकराती, निष्कपट गौरी···धवलमुख पर दमकती बिंदी वाली गौरी···सूनी माँग वाली गौरी। सहस्त्र रूप थे, इस दासी के पर एक ही आचरण सेवा का, निश्छलता का, मासूमियत का, नेकी का, किंतु आज सत्य का साँचा टूट गया था, सदाचरण का आवरण फट गया था और जो अनावृत था, वह विद्रूप था।

'गौरी, क्यों छला तुमने मुझे, मेरे विश्वास को, मेरे नेह को ?'

पौ कब फटी, सिद्धेश्वरी को भान ही न हुआ। शय्या छोड़ने से पहले उसने संकल्प किया अविचल रहने का और खुद को तैयार किया एक युद्ध के लिए।

नियत समय पर गौरी आई। बिना लाग-लपेट सिद्धेश्वरी ने तोप सा प्रश्न दागा—"गौरी, तुम मुसलमान हो ?"

गौरी सन्न थी, वह कातर निगाहों से ताकने लगी। सिद्धेश्वरी ने दहाड़ते हुए प्रश्न दोहराया। गौरी थरथर काँप रही थी, वह हाथ जोड़कर उसके चरणों में गिर पड़ी और फूट-फूटकर रोने लगी।

"मेमसाब, मुझे माफ कर दीजिए, हाँ, मैं मुसलमान हूँ।"

सिद्धेश्वरी सकते में थी। उसका क्रोध और आवेश एक हारे हुए सेनापति की ढाल व तलवार की तरह खंडित हो चुके थे।

"तुमने झूठ क्यों बोला ? क्यों ठगा मुझे ?" बटोरे गए शब्दों में तड़प थी।

"मेमसाब, मेरा खाबिंद मुझे छोड़कर चला गया। मैं गरीब दाने-दाने को मुहताज हो गई, अपनों-गैरों ने ठोकर मारी तो गाँव छोड़ यहाँ चली आई। सोचा, मेहनत-मजूरी कर पेट पाल लूँगी···कई घरों में काम माँगने गई, पर मेरा धरम मेरे पेट पर लात मारता रहा, मैं तो भूखी रह जाती, पर मेमसाब औलाद की भूख कैसे बरदाश्त करती, आखिर झूठ बोला, फरेब किया, अपना नाम बदला, भेष बदला और हो गया दो जून रोटी का जुगाड़। आपकी तीमारदारी की, आपने अपना लिया, ममता दी··· प्यार दिया।

"मेमसाब, आपने मेरा ईमान देखा, मेरा हुनर देखा, मेरी नीयत देखी, आप खुश हुईं···आज मेरा धरम देखा तो आँखें फेर लेंगी ?"

"मेमसाब, असली धरम तो मेरा ईमान मेरा जमीर है और वह एकदम पाक है और असली रिश्ता जिस्म का नहीं रूह का है। मेरा खुदा जानता है, मैं बुर्का उतारकर भी सच्ची मुसलमान हूँ, ठाकुरजी का मंदिर साफ करने से मेरा खुदा कभी नाराज नहीं हुआ। मेमसाब, आपके भगवान् भी आपसे नाराज नहीं होंगे।"

"मैं आपकी दाई नहीं, कोई नहीं, फिर भी आपकी हो चुकी हूँ। आप ही मेरी माई-बाप हैं, क्या इस रूहानी रिश्ते को आप तोड़ देंगी ?" वह जोर-जोर रो रही थी।

सिद्धेश्वरी ने हाथ बढ़ाकर गौरी को कंधों से थाम लिया और सिर पर हाथ फेरा। उसके पास शब्द नहीं थे। मन की साँकल खुल चुकी थी, सारे बाँध टूट चुके थे और नेह का सागर अपने तट से मीलों आगे तक छलछला उठा था। वह भीतर गई, फोन उठाया और देवेश का नंबर मिलाया।

"हेलो !"

"हेलो !" सिद्धेश्वरी की आवाज में कंपन था।

"बोलो सिद्धि ! सब ठीक है न, मैं परसों सुबह की फ्लाइट से पहुँच रहा हूँ।"

"वो···मैं कह रही थी, इस बार···"

"हाँ बोलो !"

"इस बार···होली पर···राहुल और राबिया को बुला लो।"

"क्या ?" देवेश आश्चर्य से चीख उठे।

सा.अ

सी-४३, जगत् अमरावती अपार्टमेंट,
बेली रोड, पटना-८००००१ (बिहार)
दूरभाष : ८८०९९३१२१७

हिंदी और उर्दू ग़ज़ल का आपसी रिश्ता

● जहीर कुरेशी

हिंदी ग़ज़ल और उर्दू ग़ज़ल की उम्र में काफी अंतर है। वली दकनी से आरंभ उर्दू ग़ज़ल की समृद्ध परंपरा लगभग ढाई सौ सालों में फैली हुई है, जबकि दुष्यंत कुमार से शुरू हिंदी ग़ज़ल ने अभी आधी सदी का ही वक्त तय किया है।

जहाँ तक उर्दू का सवाल है—उर्दू तो हिंदी की सहोदरा है। हिंदुस्तान के तत्कालीन लश्करी परिवेश में ही जनमी और हिंदी के साथ-साथ पली-बढ़ी। प्रारंभिक तौर पर लश्करी जुबान उर्दू तत्कालीन हिंदी सहित अनेक बोली-बानियों को आत्मसात् कर लेने वाली खिचड़ी भाषा के रूप में ही दृष्टिगोचर हुई। लेकिन उर्दू भाषा को माधुर्य और तरतीब दी उसकी शायरी ने। उर्दू शायरी में भी उसका कंठहार बनी उर्दू ग़ज़ल, जो शब्दों की मितव्यता, उद्धरणशीलता और अचूक व्यंजना के कारण न केवल एशिया, बल्कि पूरी दुनिया में सुनी, पढ़ी और सराही जाती है।

समकालीन हिंदी ग़ज़ल सबसे पहले तो 'ग़ज़ल' है, जिसने उर्दू ग़ज़ल के रास्ते पर चलकर अब तक पाँच दशक की यात्रा पूरी की है। हिंदी ग़ज़ल भी वज़्न और बहर को मानती है और अरेबिक अर्कानों का पालन करने वाले इल्मे-अरूज़ को स्वीकार करते हुए हिंदी की प्रकृति, पहचान, शब्द-शक्ति, मिथक व मुहावरे से हिंदी साहित्य के अनुभव-कोष को विस्तार दे रही है। हिंदी ग़ज़ल भी 'तगज़्जुल' को स्वीकार करती है और शेर कहते हुए अभीष्ट सांकेतिकता की अधिकतम रक्षा करना चाहती है।

अपने इस आलेख में मैं इन आधारभूत बातों को मान लेने की चर्चा सिर्फ इसीलिए कर रहा हूँ, ताकि भ्रांतियों की बर्फ पिघले, हिंदी और उर्दू ग़ज़ल के बीच की संवादहीनता कम हो।

मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि अलग-अलग लिपियों में लिखे और पढ़े जाने के कारण हिंदी और उर्दू भाषाओं के बीच वैसा ताल-मेल नहीं बन पाया, जैसा दो सहोदरा भाषाओं के बीच होना चाहिए था। रही-सही कसर देश की वोट-केंद्रित राजनीति ने पूरी कर दी। जिसने उर्दू को मुसलमानों एवं हिंदी को हिंदुओं की भाषा का रंग देने का प्रयत्न किया। फलस्वरूप दोनों भाषाओं के साहित्यकारों द्वारा सामंजस्य के लगातार प्रयत्नों के बाद भी हिंदी और उर्दू के बीच संवादहीनता पसरी रही। एक अरसे तक उर्दू ग़ज़ल के शायर समझते रहे कि हिंदी वालों को त्रुटिहीन शेर कहना नहीं आता। मूलतः वे वज़्न और बहर की ग़लतियाँ करते हैं और उन्हें ग़ज़ल के 'मेनरिज्म' का भी इल्म नहीं।

लेकिन मित्रो, भला हो बाजारवाद का-जिसने हिंदी को एक ऐसी भाषा का दर्जा दिया, जो अस्सी करोड़ से अधिक लोगों द्वारा बोली और समझी जाती है। विगत पचास-साठ सालों में पॉकेट बुक सीरीज ने मीर, ग़ालिब, सौदा, मोमिन, दाग़, हाली, इकबाल, फैज़, फिराक जैसे कालजयी शायरों को पाठकों के सम्मुख हिंदी यानी देवनागरी में परोसा। बेगम अख्तर, मेहँदी हसन, गुलाम अली के अलावा जगजीत सिंह, लता मंगेशकर, आशा भोंसले, चंदन दास आदि ग़ज़ल-गायकों ने उर्दू ग़ज़ल को हिंदुस्तानी श्रोताओं एवं दर्शकों में लोकप्रिय बनाया। देवनागरी लिपि में इल्मे-अरूज (ग़ज़ल छंद-शास्त्र) की विविध पुस्तकें प्रकाशित हुईं। मुशायरे और कवि-सम्मेलनों के सम्यक् आयोजनों ने उर्दू और हिंदी के ग़ज़लकारों को एक साथ मिलने-बैठने के अवसर प्रदान किए। फलस्वरूप हिंदी और उर्दू ग़ज़ल के रचनाकारों के बीच जमी बर्फ पिघली, संवादहीनता टूटी और आपसी सामंजस्य स्थापित हुआ।

देश के नामचीन हिंदी गजलकार, जिनके एक संचयन सहित कुल ग्यारह गज़ल-संग्रह प्रकाशित और चर्चित हुए हैं। उन्हें 'एक टुकड़ा धूप' गज़ल-संग्रह पर उ.प्र. हिंदी संस्थान और 'बोलता है बीज भी' पर साहित्य अकादमी, म.प्र. संस्कृति परिषद् के प्रतिष्ठित कृति पुरस्कारों से विभूषित किया जा चुका है।

ग़ज़ल में गहरी रुचि रखने वाला हर व्यक्ति जानता है—ग़ज़ल की बाहरी और भीतरी दो संरचनाएँ हैं। बाहरी संरचना रदीफ-काफिए की पाबंदी से लेकर शेर के वज़्न को जाँचने-परखने के स्वीकृत छंद-अनुशासन तक सीमित होती है। भीतरी संरचना में विचार, संवेदना और कल्पनाशीलता के युक्ति-युक्त सम्मिश्रण से शेर जन्म लेता है। हर हिंदी या उर्दू या अन्य भाषा के शायर के सामने दोनों संरचनाओं के साथ अपने रचनात्मक व्यवहार की चुनौतियाँ होती हैं।

उल्लेखनीय है कि उर्दू शायरी की शहरी मध्यम-वर्गीय सीमा को हिंदी सोच की शायरी करने वालों ने थोड़ा और विस्तृत किया है। हिंदी में लिखी जा रही ग़ज़लों के विषय-वैविध्य उर्दू ग़ज़लों से अधिक हैं। तमाम विषय तो ऐसे हैं, जिनसे शायरी को सिर्फ हिंदी ग़ज़ल ने अवगत कराया। जैसे स्त्री की ओर से पुरुष के प्रति प्रेमाभिव्यक्ति, शायरी में बाल-मन की छवियाँ, महबूबा के अलावा स्त्री के अन्य रूप, घरेलू जीवन, परिवार, लोकतंत्र, समाज में शीर्षस्थान पर बैठे लोगों के प्रति संदेह करने का साहस, जन-सामान्य से जुड़ाव और संघर्ष का पौरुष, जटिल एवं निरंतर गतिशील यथार्थ की पहचान-पकड़ इत्यादि। उदाहरणार्थ—

अपने लिए वोट माँगने से पहले, देश का प्राय: हर राजनीतिज्ञ अंतिम आदमी तक पहुँचने की बात करता है। लेकिन अब मुल्क का अंतिम आदमी भी समझ गया है कि यह सब छलावा है। विनोद तिवारी के शेर के अनुसार अंतिम आदमी जानता है—

आपने सुख टाँग रक्खे हैं वहाँ,
हाथ मेरे जिस जगह जाते नहीं।

मुल्क के कर्णधारों की कथनी और करनी में बड़ा अंतर है। वे होते कुछ हैं, दिखते कुछ हैं। परदे के पीछे उनके उन लोगों से गठजोड़ होते हैं, जो देश के लिए खतरा हैं। हमारे राजनीतिज्ञों के चरित्र की पड़ताल करता हुआ जहीर कुरेशी का एक शेर—

समुद्र शक्ल से कितना शरीफ़ लगता है,
ये तस्करों से मिला है, पता नहीं लगता!

हमारे देश के रहनुमाँ नफरत के बीज बोकर सद्भावना की फसल काटना चाहते हैं। सलीम खाँ फरीद राजनेताओं की 'जैसा बोओगे, वैसा काटोगे' मानसिकता पर एक ऐसा शेर कह जाते हैं, जो देर तक सोचने के लिए मजबूर करता है—

खेतों में पर्वत उग आए,
तुमने पत्थर डाले होंगे।

हिंदी ग़ज़ल के उन्नयन के विगत पचास वर्षों में आदमी की ज़िंदगी बहुत बदली है। आधुनिक टेक्नोलॉजी हमारे समय का एक बहुत बड़ा सच है। उसके प्रवेश के साथ आज के मनुष्य का स्वभाव बदला है। आधुनिक टेक्नोलॉजी के अनुसार हमारे रिश्ते-नाते भी बदल रहे हैं।

मैं यह तो नहीं कहता कि आधुनिक टेक्नोलॉजी के आगमन से हमारी तरक्की नहीं हुई है। लेकिन 'नेट' ने खास तौर से आज की युवा पीढ़ी को असामाजिक बना दिया है। यहाँ तक कि दोस्त दोस्त से भी साक्षात् मिलना नहीं चाहता। इस विषय पर मेरी एक ताजा ग़ज़ल का मतला और शेर—

'नेट' पर जुड़ते गए संसार से,
कट गए अपने ही घर-परिवार से।

ट्विटर या फेसबुक से न फ़ुरसत मिली कभी,
मित्रों से जा के मिलने-मिलाने के दिन गए।

हिंदी ग़ज़ल के सामयिक संदर्भों में आजकल बाजारवाद पर भी हिंदी ग़ज़लकारों की पैनी नजर है। विश्व-बाजार और उसके अनुसार बदलता मनुष्य का मन, बाजार के अनुसार बदलती आकांक्षाएँ, सीमा से बाहर जाने पर उसके दुष्परिणाम आदि समकालीन विषयों पर हिंदी ग़ज़ल में उल्लेखनीय शेर कहे जा रहे हैं।

आज के आदमी की इसी बाजारवादी मानसिकता पर डॉ. कुमार विनोद का स्मरणीय शेर—

खूबसूरत जिस्म हो या सौ टका ईमान हो,
बेचने की ठान लो तो हर तरफ बाजार है।

इक्कीसवीं सदी में आपकी आस्था, आतंक, घृणा, प्यार, आत्मा, परमात्मा, यानी ऐसी अनेक चीजें भी बिक रही हैं, जिनके विक्रय के विषय में इनसान कभी सोचता भी नहीं था। ये जो बड़े-बड़े मंदिर हैं, ऊँची-ऊँची दरगाहें, वहाँ पर मनुष्य के भय के अनुसार तरह-तरह की दुआओं का व्यापार हो रहा है। उन जगहों पर आप कभी भी चले जाइए, आस्था के उस बाजार का मौसम कभी नहीं बदलता। इस भावनात्मक विषय पर देवेंद्र आर्य का एक उम्दा शेर—

यहाँ है एक ही मौसम, खरीदो या बेचो,
सबाब भी यहाँ सौदागरी से तय होगा।

आतंकवाद आज पूरी दुनिया के लिए समस्या बना हुआ है। नोंन, तेल, लकड़ी की तरह आज आतंक भी बेचा जा रहा है। हरे राम समीप खौफ को बेचने की एक अलग शैली में पड़ताल करते हैं—

खौफ बेचा जा रहा बाजार में कम दाम पर,
क्योंकि ज़ालिम को मुनाफे में तबाही चाहिए।

आज की हिंदी ग़ज़लों के विषय में पर्यावरण-विनाश भी एक प्रमुख मुद्दा है। तथाकथित तरक्की के लिए जिस तेजी से पेड़ काटे जा रहे हैं, उसी गति से हम प्रकृति से दूर होते जा रहे हैं। यहाँ तक कि आज के आदमी के घर-आँगन में भी पेड़ अनुपस्थित हैं। कमलेश भट्ट कमल के दो शेरों के अनुसार—

पेड़ कटे तो छाँव कटी फिर आना छूटा चिड़ियों का,
आँगन-आँगन रोज फुदकना, गाना छूटा चिड़ियों का।

मिट्टी के घर में इक कोना चिड़ियों का भी होता था,
अब पत्थर के घर से आबोदाना छूटा चिड़ियों का।

खासतौर से शहर का आदमी, भाँति-भाँति के पखेरुओं के नाम भी नहीं जानता। वह (प्रकृति की जान) पक्षियों को घर के अंदर भी आने देना नहीं चाहता। जबकि पंछी शहरी आदमी से भी दोस्ती करना चाहते हैं। हरजीत सिंह के शेर के मुताबिक—

खिड़की के पास आऊँ तो भीतर भी आ सकूँ,
चिड़िया ये कह रही है कि जाली उतार दे!

संवादहीनता टूटने के बाद हिंदी और उर्दू ग़ज़ल के विषयों में भी आदान-प्रदान हो रहा है। लेकिन, चूँकि हिंदी ग़ज़ल की स्पर्धा समकालीन छंद-मुक्त और मुक्त-छंद कविता से है, अत: हिंदी ग़ज़ल विषयगत नवाचार के प्रति उर्दू ग़ज़ल से अधिक सचेत है।

पचास वर्षों की निरंतर यात्रा के बाद हिंदी ग़ज़ल मुझे समकालीन (छंद मुक्त और मुक्त छंद) कविता का ही गेय रूप लगती है। साढ़े चार दशक पहले लगभग ऐसी ही हिंदी ग़ज़ल की कल्पना मैंने की थी।

अंत में सिर्फ एक बात और कहकर मैं अपने आलेख को विराम दूँगा।

सबसे पहली बात तो यह कि हिंदी ग़ज़ल की उर्दू ग़ज़ल से कोई स्पर्धा नहीं है। उर्दू ग़ज़ल की जमीन पर चलकर ही हिंदी की भाषा प्रकृति के अनुरूप हिंदी काव्य में ग़ज़ल का यह रूप विकसित हुआ है। इस बात को यों भी समझा जा सकता है कि जैसे फ़ारसी ग़ज़ल की राह पर चलकर उर्दू ग़ज़ल ने आकार ग्रहण किया। उसी प्रकार उर्दू ग़ज़ल के मार्ग पर चलकर हिंदी ग़ज़ल पल्लवित हुई है, हो रही है। मैं समझता हूँ—यही हिंदी ग़ज़ल और उर्दू ग़ज़ल का आपसी रिश्ता है।

१०८, त्रिलोचन टावर, संगम सिनेमा के सामने,
गुरुबक्श की तलैया, पो.ऑ. जीपीओ,
भोपाल-४६२००१ (म.प्र.)
दूरभाष : ०९४२५७९०५६५
poetzaheerqureshi@gmail.com

खिड़की से झाँकती वे सूनी आँखें

• हरींद्र कुमार

'एशियाड-८२' दिल्ली में खेले जाने के कारण दिल्ली के विद्यालयों में एक महीने की छुट्टी की घोषणा हुई थी। मैं आठवीं कक्षा में पढ़ता था उस समय, गाँव के विद्यालय में एक महीने की छुट्टी, बच्चों की खुशी का ठिकाना न रहा। मौज-मस्ती, खेल-कूद सब। टीवी. उन दिनों ऐसा नहीं था, जैसा आज है। रविवार को फीचर फिल्म और बुधवार को 'चित्रहार' सिर्फ दो ही कार्यक्रम देखने को मिलते थे और वे भी माता-पिता से नजरें चुराने के बाद, नहीं तो वे भी नहीं। मेरे 'बड़े भाई' का स्नेह मुझे खूब मिलता था और कभी-कभी उस स्नेह के कारण ही 'छूट' भी। भाई ही मेरी प्रत्येक बालहठ को पूरा करते थे और मुझे अपने साथ-साथ रखते थे।

उन दिनों मेरे गाँव से गोवर्धन-वृंदावन यात्रा के लिए एक टोली जाने लगी थी। मेरे पिताजी भी उस टोली में शामिल हो गए। मैं भी हर बार उनके साथ जाने की जिद करता और भाई यही समझाकर मुझे मना लेते कि छुट्टियों में तुम्हें भेज देंगे। 'एशियाड-८२' की छुट्टियों ने मुझे वृंदावन-गोवर्धन यात्रा का सुअवसर दिलाया, मैं अपने पिताजी के साथ यात्रा हेतु चल दिया।

बस में बैठकर सफर करना 'बालमन' को बहुत भाता था। जैसे ही बस में हम सवार हुए, मेरा मन खुशी से भर उठा। भीड़-भाड़ में कैसे हम शाम को वृंदावन पहुँचे, अब याद नहीं, लेकिन वृंदावन मुझे 'नीको' लगा। वहाँ मेरे गाँव के आस-पास की कीर्तन मंडली पहले से मौजूद थी और हम सीधे किशोरीदास तिलपत वाले महाराज की राधावल्लभ धर्मशाला और मंदिर पहुँचे। मैंने तो 'सूरदास' स्कूल में पढ़ते हुए अध्यापक महोदय से ही 'वृंदावन' की खूबी सुनी थी। मुझे उस भूमि के दर्शन की कम, शायद यह खुशी ज्यादा थी कि अब मैं अपने सहपाठियों को बता सकूँगा कि मैंने भी वृंदावन देखा है। कुछ ही देर में हमारी पूरी मंडली वृंदावन परिक्रमा के लिए निकल पड़ी। मैं पिताजी का हाथ पकड़े-पकड़े आस-पास की दुकानों को देखता-प्रसन्न होता चलता रहा।

सबसे पहले हम श्यामा कुंज पहुँचे। द्वार के बाहर पिताजी ने चने लिये और मेरे हाथ में दे दिए। तुरंत एक बंदर ने कृपा की और चने मेरे हाथ से छीनकर भाग गया। अब मैं डरा-सहमा अंदर जाने का साहस नहीं जुटा पा रहा था। जब हम अंदर पहुँचे तो मंडली के एक सज्जन ने 'श्यामकुंज' का परिचय बताते हुए कहा कि इस मंदिर में रात्रि में अब भी भगवान् कृष्ण राधा के साथ रासलीला करने के लिए आते हैं और रात्रि में जो भी इस स्थान पर उन्हें देखने के लिए रुकता है, वह प्रातः मृत पाया जाता है। इसलिए पक्षी तक यहाँ नहीं आ सकते। स्थान तो बहुत सुंदर था। छोटे-बड़े वृक्ष, जलकुंड सब कुछ मनोरम था। किंतु शाम होने को थी और परिक्रमा बड़ी लंबी। हम जल्दी ही वहाँ से चल दिए और सोने के खंबे वाले मंदिर में पहुँच गए। वहाँ भी एक कथा सुनने को मिली। इतना विशाल मंदिर मैंने पहली बार देखा था। जब मैंने पूछा कि इस खंभे की रखवाली कौन करता है तो एक बुजुर्ग सज्जन ने उत्तर दिया—'भगवान।' जो इस खंभे को चुराने का प्रयास करता है, वह अंधा हो जाता है। आज सोचता हूँ, शायद इसी कारण से खंभा बचा हुआ है। यह मंदिर 'रंगजी' का माना जाता है।

सुपरिचित रचनाकार। दो आलोचनात्मक पुस्तकों का लेखन। चार पुस्तकों में सहयोगी लेखन। 'कुमार हरेन्द्र' उपनाप से चार दर्जन से अधिक लेख, पुस्तक, समीक्षाएँ प्रकाशित। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में आलोचनात्मक लेख प्रकाशित।

वृंदावन की इन कुंजों की परिक्रमा में रास्ते में कुछ सफेद धोती पहने बाल कटवाए हुए दोनों छोरों पर भिखारिनों की भीड़ थी। मैंने भिखारियों को वरदी में पहली बार देखा था। मैंने जब उनके विषय में पिताजी से प्रश्न किया तो मुझे उत्तर कुछ इस तरह मिला कि ये यहीं पर भगवान् का भजन करती है और इस भिक्षा से अपना जीवन चलाती हैं। परंतु मेरे बालमन में यह प्रश्न बना रहा कि कैसे रहती होंगी ये भक्तिनें।

रात्रि में वृंदावन परिक्रमा के बाद हम वापस धर्मशाला में आ गए। इस बार धर्मशाला में वैसे ही कपड़े पहने कुछ स्त्रियाँ ढोलक बजा रही थीं, भजन गा रही थीं। हमने देर रात्रि तक उन्हें सुना। मुझे तो ढोलक का बजना ही अच्छा लगा, भजन समझ नहीं आए। लेकिन उन सफेद कपड़ों

वाली स्त्रियों के जीवन के प्रति मन में एक प्रश्न निरंतर बना रहा।

प्रात:काल हम गोवर्धन यात्रा के लिए निकल पड़े। गोवर्धन की दो परिक्रमाओं में से हमने एक परिक्रमा की। कच्चे रास्ते, पानी के कुएँ और उन पर रखी राहगीरों के लिए पानी की बाल्टियाँ, अब केवल स्मृति में ही रह गई हैं। परिक्रमा करने के पश्चात् उसी रात हम वापस चल दिए और दिल्ली पहुँच गए। मैं अपने मित्रों को बहुत दिनों तक अपनी यात्रा के किस्से प्रसन्नतापूर्वक सुनाता रहा।

लगभग २२ वर्ष के बाद पीएच.डी. कार्य हेतु मेरा वृंदावन जाना हुआ तथा 'राधावल्लभ संप्रदाय' में भी जाने का कई बार अवसर मिला। जब जाना होता तो बाँके बिहारी के दर्शन की इच्छा मन में होती। इस लंबे अंतराल में मैंने महसूस किया कि अब सफेद कपड़ों वाली 'भक्तिन', जो 'बाल-विधवा' के रूप में वृंदावन भूमि में रह रही हैं, ज्यादा विवश और अशक्त दिखाई पड़ रही हैं। अब मुझे समझ आया कि इस विवशता और अशक्तता का नाम 'भक्तिन' है।

कई-कई दिन बीत जाते और मैं कभी-कभी अकेला ही वृंदावन की उन कुंजों में घूमता रहता। एक दिन मैं गुरुकुल वृंदावन के पास की बस्ती से गुजर रहा था, अचानक देखा कि कोई सूनी 'दो आँखें' मुझे खिड़की में से देख रही हैं। मैं कुछ पल के लिए वहीं खड़ा हो गया। वह स्थान एक आश्रमनुमा था, जिसमें मैली सफेद धोती में बिखरे बाल, सूखा मुँह और सूनी आँखें मुझे निहार रही थीं। मैंने किसी से पूछा तो उत्तर मिला कि यह 'वृद्ध बाल विधवा' आश्रम है। मेरे मन में २२ वर्ष पुरानी वह स्मृति कौंध गई कि ये सफेद वरदी में स्त्रियाँ 'भक्ति' करने के लिए आई हैं। जीवन के अंतिम दिनों में इन भक्तिनों की ऐसी दशा होती होगी, मैं अपनी आँखों से देख रहा था। अंदर जाने का साहस नहीं जुटा पाया और शायद जुटाता तो मुझे पता नहीं कोई जाने देता या नहीं। वे सूनी आँखें खिड़की में से मुझे एकटक देखे जा रही थीं और मेरा मन कह रहा था—'मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।'

साअ
हिंदू कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
दूरभाष : ९८१०७७३११४

आभार तुम्हारा मित्रो

कविता

• संगीता शर्मा अधिकारी

सुपरिचित कवयित्री, आर्टिस्ट, गायिका, रेडियो/ टीवी एनाउंसर, ऑर्गनाइजर, एंकर, समाज सेविका एवं राजभाषा अधिकारी। अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सम्मानों से सम्मानित।

आभार,
आभार उन सभी जल-कुकड़ों का
जिन्होंने हमेशा मुझे चर्चा में बनाए रखा।
ब्रेकफास्ट, लंच, डिनर की टेबल
दफ्तर के बंद कैबिंस
फाइलों की बंद नोटशीट
मोबाइल कॉल्स और
चाय की चुस्कियाँ में मुझे जीवित रखा।
वरना कौन, किसे, कब…
कहाँ जगह देता
याद रखता है आजकल।

इतना समय भी नहीं किसी के पास
किसी को याद किया जाए बारहाँ।

आभार,
कि तुमने गाहे-बगाहे
जाने-अनजाने
मेरी राह में काँटे बोए
कीचड़ फैलाया
और मुझे कमल सा खिलाया।

आभार,
कि तुम जलते रहे
पैदा करते रहे रुकावटें लगातार
पर मैंने भी कहाँ मानी हार।
बस ढिठाई से डटी रही
और जो चाहा वो पाया हर बार।

तुम्हारे चाहने से ही
सब नहीं होता और
न होगा इस दुनिया में
फिल्म तो हम सब की
पहले से ही तैयार है
बस जुटे हैं हम सभी
अपनी-अपनी भूमिकाओं को
निभाते हुए देखने में।

तुम कोई खुदा नहीं
एक नाम ही तो हो
या फिर कोई एक पद मात्र…
वो भी घिनौने षड्यंत्रों
दुष्ट चालों का
उठापटक… शतरंज की बिसात का।

जबरन मठाधीश बन बैठी
गुटबाजी-घेराबंदी की घिनौनी सोच का।

तुम्हारे करतब, तुम्हें मुबारक…
मेरी चाल
मेरा अंदाज
मेरा जायका
मेरी पहचान
मेरा स्वाभिमान…

फिर भी,
इस सब के बीच भी…
आभार…
आभार…
तुम्हारा आभार…
दिल से साभार मित्र…

जिन्होंने
मुझे रचनात्मक बनाया
अपनी कमियों पर
पार पाना सिखाया
हर क्षेत्र में कुछ अभिनव
कर जाने का जज्बा जगाया
सफलता को प्राप्त कर
शिखर तक पहुँचाया।

जिन्होंने
मुझ में यह अहसास भरा
कि मैं भी रचनाधर्मी हूँ
सृजनक्षम हूँ मैं
सृष्टि रचना का एक कण मैं भी हूँ।

आभार…

साभार तुम्हारा मित्रो!

साअ
एच-४५, ग्राउंड फ्लोर, गेट नं. ३,
एयरपोर्ट अथॉरिटी ऑफ इंडिया रेजीडेंसी
कॉलोनी, आइ.एन.ए. कॉलोनी,
नई दिल्ली-११००२३
दूरभाष : ९८१०२४७७५२
sangeetaasharma30@gmail.com

मुखौटा

• सुधांशु गुप्त

यह नवंबर का एक उदास सा दिन है। आसमान एकदम शांत है। सड़क पर धूप और छाया का खेल सा चल रहा है। कहीं धूप दिखाई पड़ती है तो कहीं छाया। धूप न अच्छी लग रही है न बुरी। कुछ फुटकर दुकानें खुली हैं। दुकानों पर न सामान बेचने वाले नजर आ रहे हैं, न खरीदने वाले। लगता है, मानो सारे लोग किसी यातना शिविर में चले गए हैं। लेकिन वह है। यातना शिविर से बाहर! परिधि पर। वह सड़क पर चल रहा है, एकदम अकेला। इतनी खाली सड़क उसने पहले कभी नहीं देखी। कोई इक्का-दुक्का आदमी ही काफी देर बाद दिखाई दे जाता है। वह कुछ सोचता हुआ जा रहा है। कहाँ? पता नहीं। लेकिन वह सोच रहा है कि शायद कोई जान-पहचान का व्यक्ति उसे मिल जाएगा। बल्कि उसकी दिली इच्छा है कि कोई जान-पहचान का आदमी मिल ही जाए। आज किसी जान-पहचान के व्यक्ति से मिलने का बड़ा मन हो रहा है। लेकिन दूर-दूर तक कोई दिखाई नहीं पड़ रहा। वह और भी पता नहीं क्या-क्या सोच रहा है। सोच में ही पता नहीं वह कहाँ पहुँच गया? वह यह भी भूल गया कि वह सड़क पर है। लेकिन वह सड़क पर ही है। उसकी आँखें सड़क पर हैं। उसे लग रहा है कि इसी सड़क से कोई आदमी निकलेगा। जान-पहचान का आदमी। उससे वह देर तक बातें करेगा।

आज किसी से बात करने का बड़ा मन है। लेकिन सड़क से कोई आदमी नहीं निकल रहा। हाँ, दूसरी तरफ से आकर एक व्यक्ति अचानक उसके सामने खड़ा हो गया है। शायद जान-पहचान का आदमी हो! इसीलिए उसके पास आकर रुका है। वह उसकी तरफ ध्यान से देखता है। उसे वह कुछ अजीब सा लग रहा है। उसने चेहरे पर एक मुखौटा लगा रखा है। चश्मे की तरह यह मुखौटा कानों के पीछे दो डोरियों की मदद से चेहरे पर टिका है। सफेद रंग के इस मुखौटे के बीच में कुछ काली धारियाँ हैं। मुँह वाले हिस्से पर एक फूल बना है। लाल रंग का। फूल से ही अंदाजा लग रहा है कि यहाँ इसका मुँह होना चाहिए। मुँह तो अपनी जगह पर ही होगा। मुखौटा मुँह की लोकेशन थोड़ी बदल देगा। उसने मुखौटे के पीछे छिपे उसके होंठों, गाल और ठोढ़ी को पहचानने की कोशिश की है। लेकिन कुछ समय नहीं आ रहा। मुखौटा चेहरे, नाक और गालों को पूरी तरह ढके हुए है। केवल आँखें दिखाई दे रही हैं। उसने ध्यान से देखा,

सुपरिचित लेखक। तीन कहानी-संग्रह 'खाली कॉफी हाउस', 'उसके साथ चाय का आखिरी कप' और 'स्माइल प्लीज' तथा लगभग तीस साल से अनेक पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित।

मुखौटे की नाक काफी आगे को निकली हुई है। ठीक वैसे ही जैसे प्लेग के समय डॉक्टरों के मुखौटों की नाक काफी आगे निकली होती थी। तो क्या यह डॉक्टर है! नहीं, यह डॉक्टर नहीं हो सकता! उसने फिर से उसे देखा। उसका मन किया कि वह उसके चेहरे पर लगे मुखौटे को खींचकर नीचे गिरा दे। उसका असली चेहरा देख ले। वह उसकी असली शक्ल देखना चाहता है। शक्ल देखे बिना यह अंदाजा लगाना मुश्किल है कि यह कौन है? उसने सोचा, कोई न कोई दोस्त ही होगा, अन्यथा इस तरह उसके सामने आकर खड़ा नहीं होता। वह सोचने लगा कि यह कौन हो सकता है? उसे कुछ याद नहीं आया। कई दोस्तों के नाम उसके जहन में आए। लेकिन वे नाम उसने मन में ही रखे। मुखौटे वाले के सामने कोई नाम नहीं लिया। वह अपनी ही सोच में डूबा था। पता नहीं किस सोच में।

अचानक मुखौटे वाले ने उससे पूछा, 'क्या हाल हैं।'

उसने मुखौटे वाले का सवाल शायद सुना ही नहीं। वह अपने में ही डूबा रहा। मुखौटे को देखता रहा।

फिर पूछा, 'तुमने मुखौटा क्यों लगा रखा है?'

'मैं जीना चाहता हूँ।'

'मुखौटे के बिना नहीं जी सकते?'

'मुखौटे के बिना जीना संभव नहीं है।'

'क्यों?'

वह मुखौटे के पीछे से शायद हँसा। कहा, 'मेरी शक्ल बहुत डरावनी है, देखोगे तो डर जाओगे, इसलिए मुखौटा लगा रखा है। जीने का यही तरीका रास आ रहा है, कोई पहचान भी नहीं पाता।'

उसे पता नहीं चला कि मुखौटे वाला कौन है और उससे क्यों बात कर रहा है। तो क्या उसने इसलिए मुखौटा लगा रखा है कि वह उसे न पहचान सके। सचमुच वह उसे नहीं पहचान पाया। बस उसने मान लिया

कि वह कोई जान-पहचान का ही होगा, अन्यथा कौन किससे बात करता है। उसने पाया कि जान-पहचान के किसी आदमी से मिलने की उसकी इच्छा लगभग खत्म हो गई है। उसका मन हुआ कि पूछे तुम कौन हो? लेकिन इससे पहले ही मुखौटे वाला बोल पड़ा, 'तुमने मुखौटा क्यों नहीं लगा रखा?'

'मैं जीना नहीं चाहता।'

इसके बाद मुखौटे वाला एक पल भी नहीं रुका। तेज कदमों से आगे बढ़ गया। वह उसे जाते हुए देखता रहा। पीछे से उसका मुखौटा दिखाई नहीं दे रहा था। उसे लगा, वह नाराज होकर चला गया है। लेकिन अजनबी लोगों से कैसी नाराजगी! वह तो उसे पहचान ही नहीं पाया। हो सकता है, मुखौटे वाला उसे पहचान गया हो। लेकिन मुखौटे वाला अचानक चला क्यों गया? क्या उसने कुछ गलत बात कह दी। वह जीना चाहता है, इसलिए उसने मुखौटा पहन रखा है, लेकिन जो जीना नहीं चाहता''' !

उसका अब कहीं जाने का मन नहीं किया। वह वापस लौटने लगा। घर की तरफ। रास्ते में उसे बहुत से मुखौटे दिखाई दिए। काले रंग का, जिस पर सफेद चकत्ते से बने हुए थे, मुँह की जगह लाल रंग से मुँह बनाया गया था'''एक मुखौटा सफेद था, उस पर ज्यामितीय आकृतियाँ बनी थीं'''कई मुखौटे ऐसे थे, जिनसे डर सा लग रहा था। एक मुखौटा मिला'''यह मेहरून रंग का था, इस पर अलग-अलग रंगों से धारियाँ बनी हुई थीं, नाक वाला हिस्सा थोड़ा आगे को निकला हुआ था, यह आँखों के बिल्कुल नीचे तक पहुँच रहा था, पहनने वाले की सिर्फ आँखें ही दिखाई दे रही थीं'''एक मुखौटे वाले ने सिर के ऊपर मंकी कैप पहन रखी थी, कैप और मुखौटा एक-दूसरे से मिल गए थे'''लड़कियाँ मुखौटे के साथ सिर पर दुपट्टा ढके थीं, उनके मुखौटे पुरुषों के मुखौटों से ज्यादा आकर्षक थे'''शायद डिजाइनर मुखौटे होंगे'''सड़क पर कुछ बच्चे भी दिखाई दिए'''आश्चर्य की बात यह थी कि बच्चों ने भी मुखौटे पहन रखे थे'''मासूम चेहरों पर मुखौटे अजीब लग रहे थे'''लेकिन अच्छी बात यह थी कि ये मुखौटे उनकी मासूमियत को ढक नहीं पा रहे थे। माँ-बाप शायद बच्चों को अभी से मुखौटों का अभ्यास कर रहे हैं, आखिर जीना तो सबको है'''बच्चों को भी।

वह घर आ गया। सोचने लगा। कब पहली बार उसने किसी को मुखौटा पहने देखा था। उस समय वह दस बारह साल का रहा होगा। खुले मैदान में रामलीला होती थी। सब बच्चे दरी लेकर रामलीला शुरू होने से पहले ही आगे की जगह घेर लेते थे, ताकि करीब से रामलीला देखी जा सके। अन्य बच्चों के साथ वह भी यही करता था। उस दिन कुंभकरण को जगाए जाने का दृश्य होना था। मंच पर कुंभकरण को जगाने के लिए काफी बच्चे इकट्ठे हुए थे। सबने मुखौटे पहन रखे थे। ऐसे मुखौटे, जिनसे लगे कि वे रावण की सेना के हैं। पता नहीं ये मुखौटे किस चीज के बने थे। लेकिन इनके ऊपर बड़ी-बड़ी मूँछें थीं, रंगों का भरपूर इस्तेमाल किया गया था। खासतौर पर काले रंग का। ये मुखौटे डर पैदा नहीं कर रहे थे, बल्कि हास्य पैदा कर रहे थे। एक अच्छी बात यह थी कि मुखौटों के बावजूद बच्चों को पहचाना जा सकता था। मंच से बाहर बैठे हम बच्चे उन्हें पहचान रहे थे, उनका नाम ले लेकर पुकार रहे थे'''बंटी'''बिट्टू''' राजू'''बच्चे बेशक मंच पर अभिनय कर रहे थे। लेकिन वह दर्शकों की आवाजों को पहचान लेते थे। अभिनय भी उनकी वास्तविक पहचान को छिपा नहीं पाता था। हनुमान की सेना में भी कई लोग ऐसे थे, जो मुखौटे पहने हुए थे, ये मुखौटे उन्हें वानर का रूप दे रहे थे। रावण की सेना में भी अनेक योद्धाओं ने मुखौटे लगा रखे थे। ये मुखौटे उन्हें राक्षस घोषित कर रहे थे। लेकिन देखने वाले सभी जानते थे कि ये मुखौटे लगाए कॉलोनी के ही बच्चे, किशोर या युवा हैं। ये वास्तव में राक्षस नहीं हैं। यह वह समय था, जब मुखौटे महज मनोरंजन का काम किया करते थे।

मनोरंजन का वह समय खत्म हो गया। वह बच्चा नहीं रहा। अब रामलीला देखने में भी रुचि खत्म हो गई। लेकिन मुखौटों से उसका वास्ता पड़ता रहा। रंगमंच में उसकी रुचि थी। वह कई नाटक देखा करता था। कई बार नाटक में किसी किरदार को रूप बदलने के लिए मुखौटा पहनना पड़ता था। उसे याद है एक बार ऐसा भी हुआ था कि वह कोई नाटक देख रहा था। शायद गिरीश कर्नाड का लिखा नाटक था। उसमें एक अभिनेता को किसी और का किरदार निभाने के लिए उसका मुखौटा पहनना पड़ा। बाद में वह यह भूल गया कि वह मुखौटा पहनकर किसी और का किरदार निभा रहा है। उसे अपने मूल स्वरूप में लौटने में काफी वक्त लगा। धीरे-धीरे वह समझ गया था कि मुखौटे रूप बदलने के काम आते हैं। कभी रूप बदल कर दर्शकों का मनोरंजन किया जाता है, कभी उन्हें डराया जाता है। कई बार स्वयं को कोई और रूप देने के लिए मुखौटा इस्तेमाल किया जाता है।

उसकी पत्नी को इस तरह के खेल बहुत पसंद आते हैं। उसकी नई-नई शादी हुई थी। छोटे से घर में सिर्फ पति-पत्नी रहते थे। एक शाम वह घर लौटा। घर खुला हुआ था। उसने देखा, पत्नी कहीं नजर नहीं आई। वह हर कमरे में पत्नी को तलाश करता रहा। लेकिन पत्नी कहीं दिखाई नहीं दी। उसने सोचा, घर खुला छोड़कर पत्नी कहाँ जा सकती है? वह फिर इधर-उधर देखने लगा। लेकिन पत्नी कहीं नहीं थी। उसके मन में अजीब सा डर भी पैदा हुआ। फिर उसने सोचा, कहाँ जाएगी, आसपास कहीं गई होगी, आ जाएगी अभी। वह डबल बेड पर बैठ गया। अचानक पत्नी लोहे की अलमारी के पास बनी थोड़ी सी जगह से बाहर आ गई। पत्नी ने चेहरे को अलग-अलग रंगों से रंग रखा था। माथे पर तीन रेखाएँ थीं। गालों पर सितारे बने हुए थे। सब कुछ मिलकर उसके चेहरे पर एक मुखौटा बना रहे थे। एकबारगी उसे लगा कि यह उसकी पत्नी नहीं है, नहीं हो सकती, वह बुरी तरह डर गया। लेकिन पत्नी खिल खिलाकर हँस पड़ी। पत्नी ने कहा, 'डर गए ना'''।'

उसने कहा, 'हाँ, डर तो सचमुच गया था, लेकिन तुम्हें यह क्या सूझी?'

पत्नी एकदम सहज थी। उसने कहा, 'मैं रोज-रोज के अपने ही चेहरे से थक गई थी, तो मैंने अपने चेहरे पर मैकअप से एक और चेहरा बना लिया'''।'

वह अब भी पत्नी के चेहरे को देख रहा था। पत्नी ने अपने मूल चेहरे को रंगों से पूरी तरह ढक लिया था। कहीं लाल रंग पुता था तो कहीं नीला। लाल रंग पर उसने कुछ सितारे से बना रखे थे। वह कहीं से भी इस लोक की स्त्री नहीं लग रही थी। उसने कहा, 'आज तो यह मजाक कर लिया, लेकिन दोबारा ऐसा मजाक मत करना।'

पत्नी ने उसी शरारत से कहा, 'नहीं करूँगी, लेकिन सच बताना, आप डर गए थे ना?'

'हाँ, डर तो गया था, लेकिन मैं तुम्हारे साथ डरकर नहीं जीना चाहता।'

इसके बाद पत्नी ने कभी इस मजाक को नहीं दोहराया। लेकिन अब···अब कोई विकल्प नहीं है!

वह अपने कमरे में बैठा है। अचानक पत्नी अंदर आई। उसने काले रंग का गाउन पहन रखा है। चेहरे पर मुखौटा है काले रंग का। काफी बड़ा। बाल खुले हुए हैं। रात के समय कोई बच्चा देख ले तो डर सकता है। लेकिन वह डरा नहीं। अब वह मुखौटे में भी पत्नी को पहचानने लगा है। शायद अब वह दूसरे लोगों को भी मुखौटों में पहचान पाए।

'नीचे जाना है क्या?' पत्नी ने पूछा।

'कुछ काम है?'

'अगर जाओ तो ये दो दवाएँ ले आना।' पत्नी ने उसके हाथ में डॉक्टर का लिखा एक पर्चा पकड़ा दिया।

उसने पर्चे को देखा और घर से बाहर निकल गया।

सड़क पर अब भी लोग कम थे। जितने थे, वे सब मुखौटे पहने हुए थे। उसे अजीब सा लगा। अब उसे मुखौटे वाले लोगों को देखकर डर नहीं लगा। उसे लगा कि वह भी मुखौटे देखने का अभयस्त हो चुका है। हो रहा है। यह भी संभव है कि अगर अब कोई मुखौटा वाला उसे मिल जाए तो वह उसे पहचान ले। वह खरामा-खरामा केमिस्ट की दुकान पर पहुँच गया। दुकान पर इक्का-दुक्का आदमी ही दवाइयाँ खरीद रहा था। अधिकांश लोग मुखौटे खरीद रहे थे। केमिस्ट ने दुकान पर एक और लड़का रख लिया था। वह ग्राहकों को मुखौटे दिखा रहा था। वह अलग-अलग रंगों और डिजाइन के मुखौटे निकालता और ग्राहकों को दिखाता जाता। आश्चर्य की बात यह थी कि मुखौटे दिखाने वाले इस लड़के ने भी मुखौटा पहन रखा था। मुखौटा देखने वालों में अधिकांश महिलाएँ थीं। प्रौढ़ महिलाएँ। महिलाएँ कई मुखौटे देखने के बाद एक या दो मुखौटे चुन रही थीं। ऐसा लग रहा था कि महिलाएँ घर के अन्य सदस्यों के लिए भी मुखौटे खरीद रही हैं। वह भी मुखौटों को ही देख रहा है। अचानक उसकी नजर एक मुखौटे पर पड़ी। वह आसमानी रंग का था। बिल्कुल सादा सा। लग ही नहीं रहा था कि वह मुखौटा है। पूरे मुखौटे पर कोई चित्रकारी नहीं थी। न ही उस पर किसी अन्य रंग का प्रयोग किया गया था। पता नहीं उसे क्या हुआ, उसने इस मुखौटे के दाम पूछे। मुखौटे बेच रहे लड़के ने कहा, पचास रुपए।

उसने एक पल भी नहीं गँवाया। उसे लगा कि कहीं इसे भी कोई और न खरीद ले। उसने मुखौटा अपने लिए चुन लिया। दवाई देने वाले लड़के को पर्चा दिया और दवाई देने के लिए कहा। लड़के ने दवा दे दी और पैसे काटकर वापस कर दिए। दवाई उसने एक पॉलीथिन में डाल दी। उसे खुशी हुई कि उसे मनपसंद मुखौटा मिल गया है। उसने दुकान से थोड़ा आगे बढ़कर मुखौटा पहन लिया। भीतर से उसे अच्छा लगा। यह भी अच्छा लगा कि अब उसे कोई नहीं पहचान पाएगा। उसने पाया कि मुखौटा पहनने के बाद उसकी चाल में आत्मविश्वास आ गया है। वह सधे हुए कदमों से चलने लगा। आसपास के सभी लोग मुखौटे पहने हुए थे। अच्छी बात यह थी कि वह कई लोगों को पहचान भी पा रहा था। उसने बिल्कुल पड़ोस में रहने वाली जैन साहब की पत्नी को देखा। उसने भी मुखौटा पहन रखा था। लेकिन वह उन्हें फौरन पहचान गया। घर में आने वाली 'मेड' भी उसे दिखाई दी। वह उसे भी पहचान गया। उसने सोचा चलो, 'पहचान का संकट' तो खत्म हुआ। अब वह हर व्यक्ति को पहचान लेगा। कितना अच्छा हो उस दिन मिला अजनबी (जो शायद दोस्त भी हो सकता है) दोबारा मिल जाए। वह सोचने लगा कि वह घर पर जाकर पत्नी को डरा सकता है। पत्नी भी चौंक जाएगी उसे मुखौटे में देखकर। लेकिन यदि पत्नी ही उसे नहीं पहचान पाई तो! नहीं···नहीं पत्नी उसे जरूर पहचान लेगी। स्त्रियाँ इस मामले में ज्यादा समझदार होती हैं। पहचान को लेकर वे कभी भ्रमित नहीं होतीं। उसे यह देखकर भी खुशी होगी कि अब वह भी जाना चाहता है। वह तेज कदमों से घर की तरफ चलने लगा।

कुछ ही कदम चला होगा कि सामने से आता उसे एक मुखौटा दिखाई दिया। उसने गौर से देखा। हाँ, बिल्कुल वही मुखौटा है। उस दिन भी इसने यही मुखौटा पहन रखा था। सफेद रंग का मुखौटा, काली धारियाँ और मुँह वाले हिस्से पर बना एक फूल। वह इसे देखते ही पहचान गया। यह तो रमेश है। कॉलोनी में ही रहता है। अकसर मिलता रहता है। उसने रमेश को आवाज दी···रमेश ओ रमेश! मुखौटे ने उसकी ओर देखा। वह करीब आ गया।

उसने पूछा, 'कहाँ घूम रहे हो?'

उसने जवाब दिया, 'बस ऐसे ही टहल रहा हूँ।' लेकिन उसकी आँखों में पहचान का कोई चिह्न दिखाई नहीं दिया।

दोनों कुछ पल चुपचाप खड़े रहे। उसे बड़ा अजीब लगा कि उस दिन वह रमेश को नहीं पहचान पाया था और आज रमेश उसे नहीं पहचान रहा। उसने ही पहल की, 'अरे मैं राहुल, पहचाना नहीं क्या, उस दिन मिले थे न तुम···।'

उसकी आँखों में आश्वस्ति के भाव उतरे। उसने कहा, 'उस दिन तुमने मुखौटा नहीं पहन रखा था न, तुमने तो कहा था कि तुम जीना नहीं चाहते।'

उसने मुखौटे के भीतर से ही हँसने की कोशिश की। कहा, 'अब मैं जीना चाहता हूँ, चाहता हूँ कि मैं भी दूसरों की तरह ही मुखौटे में रहूँ और लोग मुझे पहचान न पाएँ।'

रमेश चला गया और वह घर आ गया।

६४-सी, डी.डी.ए. फ्लैट्स, सत्यम एन्क्लेव,
झिलमिल कॉलोनी, दिल्ली-११००९५
दूरभाष : ९८१०९३६४२३

स्वर्ण बालियाँ झूम रहीं

● होड़िल सिंह 'मधुर'

सुपरिचित कवि-लेखक। कई उपन्यास, बाल-साहित्य की कई पुस्तकें एवं अध्यात्म पर एक-दो काव्य पुस्तकें प्रकाशनाधीन एवं हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। अध्यापक पद से सेवा-निवृत्त होकर अब साहित्य-सेवा में संलग्न।

बसंत

पीत वर्ण फूली सरसों, है लगती बड़ी मनोहर।
सोना लुटा रही है धरती, जैसे धरी धरोहर॥
स्वर्ण बालियाँ झूम रहीं,
है खेतों में हरियाली।
नित प्रातः उठ सींचा करता,
अन्नदाता बन माली॥
लाल-श्वेत हैं सुमन मटर के, ज्यों उड़ रही तितलियाँ।
ऋतु बसंत के स्वागत में, मुखरित होंगी सब कलियाँ॥
कोषि शाल ने निज ललाट,
पर, पहना बौर ताज है।
चंचरीक, शुक और मृणीक को,
कितना हुआ राज है॥
सुमन-सुमन पर गुंजित होता, षट्पद भ्रमर बली है।
मधुकर का आगमन 'मधुर' खिल उठती कली-कली है॥
वृंदावन की सुघर गोपियाँ,
बनी अधखिली कलियाँ।
कृष्ण वदन को जान भ्रमर,
सब मना रही रँगरलियाँ॥
बहे प्रभंजन धीमे-धीमे, विभावरी और अहर।
बाँध लिए नूपुर पग अपने, नृत्य कर रही अरहर॥
बहे समीर त्रिविधि गुण कारक,
शीतल, मंद, सुगंधित।
शस्य श्यामला भूमि नमामि,
भारत माता वंदित॥

तालाब सौंदर्य

है सुंदर यह ग्राम, शांति का बना निकेतन।
अल्प दूरि का सार दिखता, जिसमें निर्मल जीवन॥
निकट सरोवर पादप दल, शोभा को बढ़ा रहा है।
पूर्व दिशा में अंशुमालि, निज रथ को सजा रहा है॥
श्वेत मछलियाँ तैर रहीं, घन रस में प्यारी-प्यारी।
व्योम मार्ग से उतर रही, बगुलों की पंक्ति न्यारी॥
तरुवर शिखर बैठकर, नभचर करें मनोहर कलरव।
निकट सरोवर ऐसा लगता, मानो उतरा त्रिदव॥
मृग, पिक, हंस, मयूर और अहि खंजन यहाँ पर आते।
शीतल पत्री छाँह बैठ, सरसी में प्यास बुझाते॥
भ्रमर वृंद मकरंद हेतु, सरसिज पर अलख जगाते।
गया दिवस हुआ बंद जलज, मधुव्रत भी अब सो जाते॥

बरसात

आती है बरसात सुहानी। वर्षा है ऋतुओं की रानी।
तृण, तरु पल्लव हरे-भरे हैं। कोषि शाल सिर मुकुट धरे हैं।
किंतु पंक से खेत, बाग, बन, घर, आँगन सब सने परे हैं॥
अन्न की होती शुरू कहानी। वर्षा है ऋतुओं की रानी॥

पानी से तरु सरसाता है। धरा, जीव, जन हरसाता है।
वाष्प रूप में सागर से भर, बादल पानी बरसाता है॥
भूमि कृषक द्वारा कर्षानी। वर्षा है ऋतुओं की रानी॥

पानी बिन सब सून कहावै। मोती, मानुष, चून न भावै।
वर्षा पानी आसुत जल सा, काया से सब रोग भगावै।
वर्षा तरु, जन-जीवन दानी। वर्षा है ऋतुओं की रानी॥

वर्षा जन-मन रंजन करती। कष्ट कृषक का सारा हरती।
श्याम घटा सी बदली बनकर, ताल, तलैया नदिया भरती।
दादुर, मोर, पपीहा वानी। वर्षा है ऋतुओं की रानी॥

गाँव-मुहम्मदपुर, डाकघर-ढोलना
जनपद-कासगंज (उ.प्र.)
दूरभाष : ९५६८८९५२२१

एक शहीद की दास्तान

● ऊषा निगम

एक युवक मणींद्रनाथ बनर्जी, केवल २५ वर्ष की उम्र में शहीद हो गया। देशसेवा, देश के लिए बलिदान होने और मातृभूमि को आजाद कराने के अतिरिक्त उसके जीव का कोई और सपना नहीं था। शहीद होकर वह क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास में अपना नाम दर्ज करा गया।

भगींद्रनाथ बनर्जी

मणींद्र को अंग्रेजी राज के प्रति नफरत की भावना विरासत में मिली थी। मणींद्र के दादा डिप्टी कलेक्टर थे। किसी कारण से स्वाभिमानी हरि प्रसन्न बनर्जी ने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया था। उन्होंने मणींद्र के पिता ताराचरण को भी सरकारी नौकरी में नहीं जाने दिया, उन्हें डॉक्टर बनाया। मणींद्र की माँ सुनयना बंगाल की थीं, जहाँ बीसवीं सदी के आरंभ से ही अंग्रेजी राज का विरोध आरंभ हो गया था। मणींद्र का जन्म १३ फरवरी, १९०९ को बनारस में हुआ था। यहीं पांडे घाट में उनका परिवार रहता था। १९२२ में असहयोग आंदोलन के स्थगन के बाद बनारस पुन: क्रांतिकारी आंदोलन का केंद्र बन गया था। शचींद्र नाथ सान्याल और योगेश चंद्र चटर्जी ने 'हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ' की स्थापना की थी और राजेंद्र नाथ लाहिड़ी को बनारस क्षेत्र का संगठनकर्ता नियुक्त किया था। मणींद्र इन्हीं राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी के संपर्क में आए और इस संघ का हिस्सा बन गए।

९ अगस्त, १९२५ को सरकारी खजाना लूटने के लिए ट्रेन डकैती हुई थी, जिसमें राम प्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला खान, ठाकुर रोशन सिंह और राजेंद्रनाथ लाहिड़ी को फाँसी की सजा दी गई थी। १७ दिसंबर, १९२७ को लाहिड़ी को गोंडा जेल में फाँसी हुई। मणींद्र लाहिड़ी से अत्यधिक प्रभावित थे, उनके निकट संपर्क में थे। अत: लाहिड़ी की फाँसी से वे अत्यधिक दु:खी और आहत थे। तभी उन्होंने इसका बदला लेने का निश्चय कर लिया था। आगे का घटनाक्रम इस बात का प्रमाण है। इसके लिए उन्हें किसे मारना होगा, वह उनका कोई करीबी संबंधी होगा या कोई अन्य इससे उन्हें कोई अंतर नहीं पड़ना था।

काकोरी कांड के बाद बिस्मिल ने लाहिड़ी को कोलकाता भेज दिया था, जहाँ उन्हें दक्षिणेश्वर बम केस में गिरफ्तार किया गया तथा दस वर्ष की सजा हुई। बाद में यह स्पष्ट हो जाने पर कि उन्होंने काकोरी कांड में भाग लिया था, उन्हें कोलकाता से लखनऊ लाया गया था। काकोरी केस की तफतीश खुफिया विभाग के एक इंस्पेक्टर जितेंद्र नाथ बनर्जी कर रहे थे। उन्होंने अधिकतम क्रांतिकारियों को फँसाने और उन्हें अधिकतम सजाएँ दिलाने का मन बना लिया था। अंग्रेजी सरकार के प्रति वफादारी का इनाम उन्हें 'राय बहादुर' की उपाधि के रूप में मिला था। विचित्र संयोग था। जितेंद्र नाथ बनर्जी मणींद्र नाथ के मामा थे। बावजूद इसके मणींद्र ने बदला लेने का निर्णय ले लिया था। क्रांतिकारियों के पास बदला लेने का एक ही तरीका था, वह था दोषी को मृत्युदंड देना। कोई संगी-साथी न मिलने के कारण मणींद्र ने अकेले ही इस कार्य को करने का निश्चय कर लिया था।

उन दिनों जितेंद्र नाथ बनारस आया हुआ था। मणींद्र ने इस अवसर का लाभ उठाया। जिस समय जितेंद्र गदौलिया नामक स्थान से गुजर रहा था, मणींद्र ने उस पर दो गोलियाँ चला दीं, साथ ही यह भी कहा, "राजेंद्र दा को फाँसी दिलाने का इनाम तो लेते जाओ।" मणींद्र चाहते तो भाग जाते, वे भागे भी लेकिन पुन: वापस आकर जितेंद्र नाथ से कहा, "राय बहादुर, काकोरी का इनाम मिल गया तुम्हें।" जितेंद्र नाथ गोलियाँ लगने के बाद भी होश में था। उसके चिल्लाने पर लोगों ने मणींद्र को पकड़ लिया। मणींद्र ने स्वत: आत्म-समर्पण कर दिया। थाने ले जाए गए। मुकदमा चला। उन्हें दस वर्ष के सश्रम कारावास की सजा मिली।

मणींद्र को फतेहगढ़ केंद्रीय कारागार भेज दिया गया, जहाँ उन्हें 'बी' क्लास में रखा गया। फतेहगढ़ जेल अंडमान की सेल्यूलर जेल के समान मानी जाती थी। बाद में क्रांतिकारी मन्मथ नाथ गुप्त, यशपाल, फिर रमेश चंद्र गुप्त को भी यहीं रखा गया था। मणींद्र के जेल-जीवन के छह वर्ष बीत गए थे कि तभी एक घटना हो गई। जेलर लेंडली ने 'सी' क्लास के एक राजनीतिक बंदी चंद्रमा सिंह की बुरी तरह से पिटाई की। पिटाई के विरोध में चंद्रमा सिंह ने अनशन आरंभ कर दिया। उनका नैतिक बल बढ़ाने के लिए मन्मथनाथ, यशपाल और मणींद्र ने भी अनशन आरंभ कर

दिया। अनायास चंद्रमा सिंह ने अनशन त्याग दिया। बाद में यशपाल और मन्मथ ने भी अनशन समाप्त कर दिया, केवल मणींद्र दृढ़ रहे। उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। उन्हें अस्पताल ले जाया गया। वहाँ किसी भी इलाज से उनको लाभ नहीं हुआ, जटिलताएँ बढ़ती गईं। मणींद्र के फेफड़े खराब हो गए थे, मूत्राशय ने काम करना बंद कर दिया था, उन्हें नींद भी नहीं आती थी। चिकित्सकों के प्रयासों के बावजूद मणींद्र को बचाया नहीं जा सका।

जिस समय जेल के अस्पताल में मणींद्र की हालत खराब होती जा रही थी, जेलर ने यशपाल और मन्मथ को सूचित किया था। दोनों क्रांतिकारी मणींद्र के पास गए थे। जेलर की दी सूचना एवं स्वयं मणींद्र की हालत देखकर उन्हें अनुमान हो गया था कि मणींद्र के पास जीवन-यात्रा के कुछ पल ही शेष हैं। मन्मथनाथ ने उन्हें प्रेरित करने के लिए अनेक प्रयास किए, लेकिन उनकी बुझती जीवन-ज्योति को वे पुन: प्रज्ज्वलित नहीं कर सके। संध्या के ठीक सवा चार बजे मणींद्र मन्मथ की गोद में लुढ़क गए। उन्होंने उसका शिथिल मस्तक अपनी गोद में रख लिया। डॉक्टर आया, उसने उन्हें मृत घोषित कर दिया। उस समय मन्मथ को ऐसा प्रतीत हुआ था, जैसे मणींद्र की मृत्यु के साथ ही उनके मित्र, साथी तथा कुछ अंशों में पथ-प्रदर्शक का अंत हो गया।

मणींद्र की मृत्यु के बाद तार द्वारा उनके परिवार को सूचित किया गया था। बड़े भाई प्रभास चंद्र और सुनयना ने जेल के वार्डरों और अन्य कर्मचारियों की सहायता से फर्रुखाबाद के गंगा तट पर मणींद्र का अंतिम संस्कार किया। सुधीर विद्यार्थी ने लिखा है, "शहर में किसी को खबर नहीं दी गई। मणींद्र एकदम गुमनाम चले गए। लेकिन जेल के भीतर तो मामूली कैदियों ने भी शोक किया। वे कैदी मणींद्र को 'सुदामा' कहा करते थे। रमेश चंद्र गुप्त उन्हें 'युधिष्ठिर' कहा करते थे।" (उत्सर्ग, पृ० १३१)।

साथी मन्मथनाथ गुप्त ने बड़े विस्तार से मणींद्र के अंतिम समय का करुण चित्रण किया है। मणींद्र की दशा देखकर मन्मथ हिल गए थे। इस नास्तिक क्रांतिकारी ने उन पलों में ईश्वर को याद किया था। प्रार्थना की थी कि वह मणींद्र की जीवन-रक्षा कर ले। तब मणींद्र ने मेरी प्रार्थना को पसंद नहीं किया। उसने मेरी प्रार्थना को बीच में ही टोकते हुए कहा, '(अंग्रेजी में) टट! टट! चुप चुप!' भगवान कहाँ है! न्याय कहाँ है? इस जगत् में दुष्ट सदा सुख भोगते हैं और अच्छे लोग कष्ट सहते हैं।" मन्मथ ने यह भी लिखा था कि अंतिम समय तक मणींद्र की श्रवण एवं विचार शक्तियाँ प्रखर रही थीं। उसका शरीर बेकार हो गया था, पर मालूम कैसा मस्तिष्क अंतिम साँस तक एकदम ठीक काम कर रहा था। केवल मस्तिष्क से ही यदि जीना संभव होता, तो मणींद्र चिरंजीवी होता। (सु.वि. 'फतेहगढ़ डायरी' पृ. २४)

मणींद्र ने मृत्यु पूर्व असहनीय पीड़ा झेली थी। मणींद्र तड़प रहे थे। मन्मथ और यशपाल कुछ नहीं कर पा रहे थे। कभी डॉक्टर का मुँह देखते तो कभी अपने साथी का। कभी गोद में लेकर बैठते, कभी मालिश करते, कभी दवा दिलवाते, कभी पानी पिलाते। मन्मथ अत्यधिक बेचैन और

सुपरिचित लेखिका। स्वतंत्रता सेनानियों पर विशेष लेखन। पत्र-पत्रिकाओं में लेख आदि निरंतर प्रकाशित। 'कानपुर : एक सिंहावलोकन' स्मारिका भी। सन् १९७०-७२ में पी.पी.एन. कॉलेज में अध्यापन कार्य किया। संप्रति लेखन में रत।

विचलित थे, तभी उन्होनें लिखा था, "सच बात तो यह थी कि मैं कुछ हत बुद्धि हो रहा था। मुझे स्वयं ही सांत्वना, यहाँ तक कि चिकित्सा की आवश्यकता थी। मैंने आज पहली बार यह अनुभव किया कि मेरे साहस में त्रुटि है।" (वही, पृ. २४)

मणींद्र के पिता की मृत्यु १९२५ में हो गई थी। माँ सुनयना ने अपने आठ बेटों का पालन पोषण किया था। मणींद्र के गिरफ्तार होने के बाद माँ सुनयना ने किसी से कोई आर्थिक मदद नहीं ली थी। अपनी संपत्ति बेचकर मुकदमे की पैरवी करती रही थीं। केवल यही नहीं, मणींद्र की गिरफ्तारी के बाद मणी के अन्य भाई सुरक्षा की दृष्टि से मेरठ के गांधी आश्रम में रहने लगे थे। वहीं १९३३ में उनके एक भाई भूपेंद्र नाथ बनर्जी ने सत्याग्रह में भाग लिया था। उनका भी १९३३ में निधन हो गया था। माँ सुनयना उन्हें देख भी नहीं पाई थीं। मणींद्र की मृत्यु २० जून, १९३४ को हुई थी। माँ के लिए यह बहुत बड़ा आघात था।

लेखक और कवि श्रीकृष्ण 'सरल' ने मणींद्र नाथ की तुलना अर्जुन से करते हुए लिखा है कि जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण के उपदेशों के परिणाम स्वरूप महाभारत में अर्जुन ने अपने संबंधियों पर तीरों की बौछार की थी, उसी प्रकार मणींद्र नाथ ने मूल्यों की रक्षा के लिए अपने मामा पर गोलियाँ चलाई थीं।

१९८५ में फतेहगढ़ के केंद्रीय कारागार परिसर में क्रांतिकारी शहीद भगवती चरण वोहरा की धर्मपत्नी श्रीमती दुर्गा भाभी के प्रयत्नों से मणींद्र नाथ बनर्जी की प्रतिमा लगाई गई थी। क्रांतिकारियों के प्रति संपूर्ण जीवन समर्पित कर देने वाले आदरणीय सुधीर विद्यार्थीजी ने इसी जेल में बाहरी परिसर में २० जून, १९८३ को मणींद्र का 'बलिदान दिवस' मनाया था। इस अवसर पर उन्होंने कहा था, "गांधी सहित किसी गांधीवादी ने साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष में अनशन करके कभी अपनी जान नहीं दी।" इस बलिदान दिवस पर क्रांतिकारी अनंतराम श्रीवास्तव तथा काकोरी शहीद अशफाक उल्ला खाँ के पौत्र अशफाक उल्ला खाँ भी उपस्थित थे।

अंत में कुमार विश्वास की कुछ पंक्तियाँ याद आ रही हैं—

कंचनी तन, चंदनी मन, आह, आँसू, प्यार सपने,
राष्ट्र के हित कर चले सब कुछ हवन, तुमको नमन है!

७४, कैंट, कानपुर-२०८००४
दूरभाष : ९७९२७३३७७७

राम झरोखे बैठ के

शिकारपुर और उसके वासी

• गोपाल चतुर्वेदी

पहले सिर्फ कहा जाता था। इक्कसवीं सदी के दो दशक बाद सिद्ध हो गया है कि यह मूल रूप से भौतिकता और प्रतियोगिता की सदी है। तभी तो बाबूराम आजकल शहर में सफलता के मानक माने जाते हैं। उन्होंने अपने सेवा काल में नगर विकास निगम के उपाध्यक्ष रहकर इतनी लूट की कि भ्रष्टाचार भी उससे शरमाए। एक बिल्डर का मामला उनके आगे आया तो उन्होंने उसे बुलाया। उसके स्वयं के हालचाल ही नहीं, परिवार की कुशल भी दरियाफ्त कर जुबानी भाई-चारा बनाया। चाय-बिस्कुट से उसकी खातिरदारी की। बाबूराम का वैयक्तिक सहायक समझ गया कि मोटा मुर्गा फँसा है। बस अब इसका शहीद होना बाकी है। दरअसल वह बाबूराम की इस स्टाइल से परिचित था। वह एक झटके में न मारकर धीरे-धीरे उसे जिबह करते थे। जिबह होने वाला, इस दौरान प्रसन्न रहता! उसके चेहरे की मंद-मंद मुसकान उसके होंठों का एक पल भी साथ न छोड़ती।

इसी बीच बाबूराम ने अपने निजी सहायक को सरकारी लाल बत्ती वाली गाड़ी लगाने का आदेश दिया। जब उन्होंने बिल्डर के लिए खुद दरवाजा खोला तो वह गद्गद हो गया। उसने बाबूराम की 'अजगरी' ख्याति सुन रखी थी। लूट में इसकी किसी से भागीदारी नहीं है, यह उसकी सारी की सारी रकम खुद-ब-खुद निगल लेता है, जैसे अजगर जीता-जागता इनसान। बिल्डर को एक पल को लगा कि नेक इनसान को लोग व्यर्थ में कैसे और क्यों बदनाम करते हैं। कुछ को इसी में आनंद आता है। लोग सहज में विश्वास भी कर लेते हैं। असल में यह सरकार, सचिवालय और दफ्तरों की सामान्य प्रक्रिया हो गई है। यहाँ तक कि किसी साधारण पत्र का उत्तर तक 'पैसे दो, जवाब लो' के सिद्धांत पर आधारित है। यदि इस नियम की अवहेलना कर कभी उत्तर मिला तो पाने वाला इतना कृतार्थ होता है कि मंदिर में प्रसाद चढ़ाने की नौबत आती है। बिल्डर को लगा कि प्रतियोगी वर्ग चाहते हैं कि लोग व्यक्तिगत रूप से इस सहज-सरल अधिकारी के संपर्क में न आएँ, वरना क्यों उसकी छवि ऐसी बनाई जाती? बिल्डर इन्हीं खयालों में गुम था कि गाड़ी एक नए विकसित प्लांट के सामने आकर रुक गई। बाबूराम ने पहले की भाँति शालीनता प्रदर्शित की। बिल्डर से अधिकारी की संक्षिप्त वार्त्ता हुई। ''आप तो इस क्षेत्र में खासे अनुभवी हैं। कृपया अनुमान लगाकर बताएँ कि इसमें तीन बेडरूम, संलग्न टायलेट, लॉबी, किचन और डाइनिंग रूम बनाने में कितना वक्त लगेगा? व्यय की चिंता नहीं है किंतु फिटिंग्स सब 'लेटेस्ट' और आधुनिक होने चाहिए। ऐसे कल ग्यारह बजे तक 'एस्टिमेट' बनाकर मुझे दर्शन दें।''

बिल्डर के पास अन्य चारा ही क्या था? उसने 'यस सर' की हामी भरकर कल आने का वादा किया। उसे पता तक नहीं था कि उस पर क्या बीतने वाली है? उसने एक बार शाम को स्वयं जाकर प्लांट का निरीक्षण किया, अपने आर्किटेक्ट के साथ एक रफ किस्म का नक्शा बनाकर, उसकी अनुमानित कास्टिंग की और आदेशानुसार समय पर हाजिर हो गया। आते ही बाबूराम की दिव्य उपस्थिति में उसे पेश किया गया। न प्रतीक्षा न अन्य कोई औपचारिकता। वह उनके आचार-व्यवहार से फिर से प्रभावित हुआ। वाकई अफसर हो तो ऐसा। आजादी के बाद देश को ऐसे ही जनसेवक की आवश्यकता है। बाबूशाही के किले में ऐसे ही अधिकारियों से जनसेवा की सेंध संभव है। चाय-बिस्कुट के बाद बाबूराम काम की बात पर आए, ''तो कितना समय और खर्चा लगेगा?'' बिल्डर ने नक्शा निकाला, उन्हें दिखाया और बताया, ''सर! सब से बेहतरीन फिटिंग्स और निर्माण सामग्री लगाकर सत्तर-अस्सी लाख का खर्चा आएगा। चूँकि घर भूतल पर बनाना है तो हम इसमें फर्स्ट-फ्लोर का भी प्रावधान कर रहे हैं। निर्माण और सजावट में सात-आठ माह तो लग ही जाएँगे।''

बाबूरामजी मुसकराए और बोले, ''तो आप काम शुरू करवा दीजिए। जब तक यह फ्लैट बनेगा, हम सुनिश्चित करेंगे कि आपकी कॉलोनी का केस भी सुलट जाए और उसकी स्वीकृति भी। जिस दिन

फ्लैट की चाभी मिलेगी, निर्णय और कॉलोनी की स्वीकृति आपको सौंप दी जाएगी।''

बिल्डर हतप्रभ था। पहली बार उसका साबका एक ऐसे अधिकारी से पड़ा था, जिसने 'बिना' एक शब्द भी कहे, अपने हिस्से का बीस प्रतिशत से अधिक हिस्सा लूट लिया था। हालात और होते तो उसका कोई प्रतिनिधि पूरी 'डील' की सौदेबाजी करता। यहाँ ऐसी कोई बात नहीं थी। न कोई बिचैलिया था। बिल्डर को महसूस हुआ कि बाबूराम पैसा कमाने में खासे क्षमतावान व कुशल हैं। पूरी चर्चा में उसके पास कोई सबूत भी नहीं है कि जिससे बाबूराम के फँसने की गुंजाइश हो? वह फ्लैट की राशि लोन और सेविंग से दिखा ही देंगे। रही रसीद की उपलब्धता तो उसका प्रबंध तो वह खुद ही कर देगा, यदि इच्छा से नहीं, तो जबरन। उसका बड़ा काम भी तो बाबूराम की स्वीकृति पर ही अटका है। इतना ही नहीं, अब इसे सीट दर सीट भाग-दौड़ नहीं करनी है, नहीं तो कितना समय और पैसा बरबाद होता? इससे अच्छी तो बाबूराम की 'सिंगल बिंडो क्लियरेंस' है। उसकी भाग-दौड़ बची, पैसा भी—और सब बाबूराम की कृपा के कारण।

मन-ही-मन जैसे वह प्रसन्न था। यदि फिर से उसे कभी अवसर मिलता तो वह बाबूराम जैसे अफसर से ही संपर्क कर कृतकाय होता। हर क्षेत्र और धंधे के लोग भ्रष्टाचार की लूट का प्रावधान कर योजना बनाते हैं। सब की सी.बी.आई. और विजिलेंस से साँठ-गाँठ होती है, जैसे सियासी दलों के ऐसे कार्यकर्ताओं की, जिनकी हर क्षेत्र में वसूली नियत है। सही भी है। नहीं तो बेरोजगारी में उनका काम कैसे चले? अन्यथा दल के सत्ता में आने से उन्हें क्या लाभ?

दूरदर्शी अधिकारी अपने सेवाकाल में ही रिटायरमेंट का प्रबंध कर लेते हैं। यह कला जैसे बाबूराम में जन्मजात थी। तभी हर बाबू उन्हें अपना आदर्श मानता। वह बाबुओं के राम थे। उन जैसे अधिकारियों ने भ्रष्टाचार की मर्यादा बखूबी निभाई है। उनका कोई कार्य ऐसा न होता, जिसमें निजी लाभ का कोई-न-कोई जुगाड़ न हो। विशेषता यह थी कि मीडिया उसे सदाचार के रूप में प्रचारित करता। हर कार्य का श्रेय मंत्री-मुख्यमंत्री को देते, जिससे उन पर सियासी कृपा बनी रहे। वह स्वयं की छवि सरकार में भ्रष्टाचार के रावण के हनन की बनाते। छवि बनाने में टी.वी. से लेकर समाचार-पत्रों तक का अविस्मरणीय योगदान रहा है। ऐसे महानायकों की उपस्थिति के कारण शिकारपुर भी देश की ऐसी महानगरी बन गया है, जिसका अनुकरण करने को देश के शहर-महानगर उत्सुक हैं। बाबूराम के अपने सेवाकाल में ही पत्नी के नाम से समाजसेवी संस्थान का गठन किया है। इसके अंतर्गत एक शिक्षण संस्थान भी बनाया जा चुका है। उसकी जमीन में सरकार का सहयोग है और भवन में बिल्डरों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

शिक्षा का क्षेत्र बाबूराम का निजी चयन है। वह जानते हैं कि इसे किसी भी उद्योग की तरह लाभप्रद अंदाज में संचालित कर सकते हैं। शिक्षकों से रसीद अधिक की और वेतन कम का। हर बहाने छात्रों से फीस और वक्त-बेवक्त दान-चंदा। नकल की सुविधा की 'वसूली'। फिर कहने को देश सेवा। अशिक्षा के अंधकार को दूर करने के प्रयास का पुण्य-प्रताप अलग। ऐसे व्यक्तियों का समाज में सम्मान और कीर्ति है। क्या पता अपने राजनैतिक संबंध का लाभ उठाकर वह किसी पद्म पुरस्कार के हकदार ही न बन जाएँ? ऐसे उन्हें किसी सम्मान की हसरत नहीं है। रहने को महल जैसा मकान है, कॉमर्शियल इलाके में दुकानों से लाखों का किराया है, पुत्र है, जिसके दहेज में तीन-चार करोड़ की आशा है।

यों बाबूराम का विचार है कि उनका बेटा कुछ अयोग्य किस्म का है। उसे प्रेम-प्रसंग दोहराने का उतना ही शौक है, जितनी काम-धंधे से अरुचि। स्वर्गीय कैलाश बाजपेयी के शब्दों में—'बड़े बाप के बेटे हैं, जब से जन्म हुआ लेटे हैं।' सबके जीवन में कोई-न-कोई ऐसी समस्या है कि जिसका कोई हल नहीं है। बाबूराम की यह समस्या उनका बेटा है। वह डिग्री प्राप्त कर भी सिर्फ डिग्री-याफ्ता है, शिक्षा-याफ्ता नहीं। कॉलेज-यूनिवर्सिटी में उसने सिर्फ प्रेम-प्रसंगों में प्रसिद्धि पाई है। वह भी अपने पिता के पैसे के कारण। वह लड़कियों का मुफ्तिया आवागमन या भ्रमण का साधना रहा है। यदि उसकी किसी परिचित कन्या को बस से कॉलेज-यूनिवर्सिटी जाना पड़ता तो इसे वह अपना व्यक्तिगत अपमान मानता। उनके लिए उनकी निजी कार-सेवा हाजिर है। उन्हें समय से यूनिवर्सिटी ले जाने और वापस घर लाने का वादा करता ही नहीं, निभाता भी। कैंटीन का खर्चा भी उसी का जिम्मा रहा है। इन्हीं सब नेक कार्यों से उसके तथाकथित प्रेम-प्रसंगों की संख्या दिनोदिन तरक्की पर रही है। जिसे वह प्रेम समझता, लड़कियाँ उसे उल्लू बनाना।

यों शिकारपुर ऐसे महानगर में यह संरक्षण महत्त्वपूर्ण है। नहीं तो आँकड़े साबित करते हैं कि अपहरण, बलात्कार, हत्या, डकैती जैसे अपराधों में शिकारपुर रोज नए मानक बना रहा है। हर शहर-महानगर उससे प्रेरित है, उसके अनुकरण में व्यस्त है, पर मजाल है कि उसकी ऊँचाई छू भी पाए? राज्य का सचिवालय वहीं स्थित है। वह शासन का ही नहीं, करप्शन का भी केंद्र है। लोग बहुधा बहुमंजिली इमारतों को भौंचक होकर देखते हैं और अकसर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'भले ही इनकी कीमत सोने की हो, इनकी नींव शर्तिया भ्रष्टाचार की है।' इसमें उच्चाधिकारियों और कई मझले बाबुओं की अट्टालिकाएँ भी शामिल हैं। ज्यादातर राजनेता इधर देखकर भी नहीं देखते हैं। उनकी इमारतें भी ऐसों के कारण ही निर्मित हुई हैं। मामला पारस्परिक पीठ खुजाई का है। प्रतियोगिता भी ऐसी ही ऊँची दुकानों और फीके पकवानों की है। कोई पास जाए तो उसे आभास हो कि वह किसी मंदिर के पास आ गया है। वहाँ जैसे मौखिक भजन कीर्तन है, यहाँ नैतिकता, जनसेवा, न्याय और सदाचार की गूँज है। स्वाभाविक है कि कोई इनकी सच्चाई पर संदेह करे। मंदिरों में तो श्रद्धावान भक्त हो भी सकते हैं, यहाँ सभी को शक है कि केवल बगुला-भगत हैं? कौन जाने इक्कीसवीं सदी, समय ही बगुला भगतों का है?

वह भी ऐसे-वैसे सामान्य बगुला-भगत नहीं, सिद्ध किस्म के। इन्होंने जीवन-पर्यंत सदचार का गुण-गान किया है। हरसिंगार की भाँति इनके मुँह से केवल नैतिकता के वाक्य झरते हैं। कार्यों में इन्होंने न कभी देश का सोचा है, न निर्धन-कल्याण। बस यह इनकी कहने की बातें हैं, करने की नहीं। जब चुनाव में इस जुबानी जमा-खर्च से जीत हासिल होती है तो और कुछ क्यों करें? यों जनता ने जब से पटखनी लगाई है, वह अपनी कागजी उपलब्धियाँ गिनाकर उसे ही कोस रहे हैं, खासकर युवा मतदाताओं को। ''इन्हें हमारे परिवार की पुश्त-दर-पुश्त जनसेवा का लिहाज नहीं है, तो हमारी कल्याणकारी योजनाओं पर कैसे ध्यान दें? बस दूसरों के बरगलाने में आ जाते हैं। इतिहास पर भी थोड़ी नजर डालें। पर इसके लिए कितनों को फुरसत है! उनका एक सूत्रीय कार्यक्रम हमारा विरोध है।''

जहाँ शिकारपुर का हर वासी दूसरे के शिकार पर अमादा है, वहीं कुछ इस तथ्य पर ताज्जुब करते हैं कि यह पशुवत् प्रवृत्तियाँ इनसानों में कैसे आ गईं। वह भी भरे पेट समृद्धों में। क्या वर्तमान के शहर-महानगर, कल के वन-जंगल का पर्याय हैं। यों इक्कीसवीं सदी की प्रतियोगिता सिर्फ समृद्धों तक सीमित है। सामान्य व्यक्ति का सपना लाखों-करोड़ों का न होकर दाल-रोटी का है। इसमें सब्जी की गुंजाइश बने तो क्या कहना? महँगाई की पतंग आकाश में विचरण कर रही है। सामान्य व्यक्ति उत्सुक है कि सरकार इसका पेंच काटे तो उसे भी आलू-प्याज खाने का सौभाग्य प्राप्त हो। अपनी-अपनी हसरत है। कुछ आयातित सब्जियों से संतुष्ट हैं, कुछ कीमतों के गगनचुंबी उछाल में आलू-प्याज के अभाव से।

९/५, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ-२२६००१
दूरभाष : ९४१५३४८४३८

कविता

सरस्वती वंदना

● अंकुर सिंह

हे विद्यादायिनी! हे हंसवाहिनी!
करो अपनी कृपा अपरम्पार।
हे ज्ञानदायिनी! हे वीणावादिनी!
बुद्धि दे!, करो भवसागर से पार॥

हे कमलवसिनी! हे ब्रह्मापुत्री!
तम हर, ज्योति भर दे।
हे वसुधा! हे विद्यारूपा!
वीणा बजा, ज्ञान प्रबल कर दे॥

हे वाग्देवी! हे शारदे!
हम सब है, तेरे साधक।
हे भारती! हे भुवनेश्वरी!
दूर करो हमारे सब बाधक॥

हे कुमुदी! हे चंद्रकाति!
हम बुध्दि ज्ञान तुझसे पाए।
हे जगती! हे बुद्धिदात्री!
हमारा जीवन तुझमें रम जाए॥

हे सरस्वती! हे वरदायिनी!
तेरे हाथों में वीणा खूब बाजे।
हे श्वेतानन! हे पद्मलोचना!
तेरी भक्ति से मेरा जीवन साजे॥

हे ब्रह्म जाया! हे सुवासिनी!
कर में तेरे ग्रंथ विराजत।
हे विद्या देवी! हे ज्ञान रूपी!
ज्ञान दे करो हमारी हिफाजत॥

चंदवक, जौनपुर-२२२१२९ (उ.प्र.)
दूरभाष : ८३६७७८२६५४

इस अंक की चित्रकार

देव कुमारी कौशिक

जानी मानी चित्रकार। 'नया ज्ञानोदय,' 'हंस', 'कथादेश', 'पाखी', 'इंद्रप्रस्थ भारती' आदि पत्रिकाओं में अब तक ३०० रेखाचित्र प्रकाशित।

संपर्क : आर/१०४३, गली नं. २
ईगल बिल्डिंग के सामने, तेलिबाध
तेलिबंधा, रविग्राम, रायपुर-४९२००६ (छ.ग.).
दूरभाष : ८५८६०२८०५९
devkumarikaushik45@gmail.com

गुम होते क्रेडिट काड्र्स

• प्रगति गुप्ता

रात तीन बजे एकाएक ही वैदेही सोते-सोते विवाह के बाद गुजरे उन पंद्रह सालों में पहुँच गई, जहाँ उसको मरीजों के बीच घिरा रहना सुकून देता था। ऑपरेशन थिएटर, सर्जिकल इंस्ट्रूमेंट्स, खुद के मरीज और स्टाफ, सभी उसका आत्मविश्वास बढ़ाते थे। घर और अस्पताल का काम सँभालते हुए कब दिन निकल जाता, वैदेही को पता ही नहीं चलता था। कुछ ऐसे ही स्वप्नों के साथ उसकी नींद सालों साल से उचट रही थी। समय के साथ ठहरे हुए स्वप्न अकसर जागरण करवा ही देते हैं।

फिर अचानक वैदेही को महसूस हुआ, जैसे श्रीकांत ने उसको आवाज देकर पूछा हो—

"वैदेही! सो गई हो क्या?"

"हम्म···मुझे बहुत नींद आ रही है श्रीकांत। आज दिन काफी हेक्टिक था। तीन डिलीवरी केस थे।···आउटडोर में भी काफी मरीज थे। बहुत थक गई हूँ। कुछ बहुत जरूरी न हो तो···कल सवेरे बात करते हैं।"

"अभी सिर्फ साढ़े दस ही बजे हैं। तुम सो भी गईं। हम दोनों अपना सारा वक्त मरीजों के साथ गुजारते हैं। बात करने का वक्त ही नहीं निकलता। तुम अपने मरीजों की सर्जरी सवेरे-सवेरे रख लेती हो। फिर तुम्हारा आउट्डोर।···घर कब आती और जाती हो, पता ही नहीं चलता।"

श्रीकांत की बात सुनकर वैदेही कुछ बोलना चाहती थी। मगर बुदबुदाकर रह गई···

'जब कभी लंच या डिनर सभी के साथ लेने के लिए पहुँचती हूँ।··· तब भी तो सभी को खिलाने-पिलाने में लगी रहती हूँ। किसी के दिलो-दिमाग में नहीं आता कि मुझे भी बैठकर तसल्ली से खाना खाने को कहे। लंच पर डिनर और डिनर पर ब्रेक-फॉस्ट में क्या खाना है, सब उन फरमाइशों की चर्चा जरूर कर लेते।'

वैदेही को बहस करने की आदत नहीं थी। उसको लगता था बहसों से घर की शांति भंग हो जाती है। अकसर अपनी बात खुद से ही बोलकर शांत होना उसका मूल स्वभाव था।

सुपरिचित रचनाकार। 'तुम कहते तो', 'शब्दों से परे', 'सहेजे हुए अहसास' आदि संग्रह प्रकाशित। कहानियों, संस्मरण आलेख, लघुकथा, कविताएँ व हाइकू का निरंतर प्रकाशन। कई कहानियाँ व लेख पुरस्कृत।

उस रात भी सबको खाना खिलाकर वह बच्चों साथ उनके बेड-रूम में ही लेट गई थी। यह उसकी दिनचर्या थी, ताकि बच्चों के साथ वक्त गुजार सके। बच्चे थोड़े समझदार हो चुके थे। अपना होम-वर्क खुद कर लिया करते थे। बस उनको बीच-बीच में माँ की जरूरत होती थी।

वैदेही अस्पताल से भी बच्चों को फोन लगाकर निर्देशित किया करती थी।

बहुत थकी हुई होने के कारण वैदेही जैसे ही अपने बिस्तर पर आकर लेटी, उसको नींद आ गई। उसका डिनर अकसर ही छूट जाता था। हमेशा की तरह श्रीकांत डिनर लेकर न्यूज देखने बैठ गए थे और माँ पापा के कामों में लग गई। वैदेही ने डिनर लिया या नहीं, यह सिर्फ वैदेही को पता होता था।

छोटे-मोटे वैचारिक मतभेदों को वैदेही बहुत तवज्जो नही देती थी। उसको श्रीकांत पर बहुत प्यार आता था। श्रीकांत जब भी वैदेही को सोते से जगाता, उसे लगता श्रीकांत को उस पर प्यार उमड़ा है। अकसर बहुत थके होने पर वैदेही में स्त्री-सुलभ अपेक्षाएं स्वत: ही जन्म ले लेती, वह सोचती···

'कोई उसके माथे पर हाथ रख दे या बालों में उँगलियों की पोरों से सहला दे।' पर सच में ऐसा होना मन के सोचे से नहीं बल्कि निमित्त के अधीन होता है।

दोनों के पास सीमित समय था। जिसमें घर की जिम्मेदारियों से जुड़ी बातें हावी होती रही थीं। कैसे जिम्मेदारियाँ अंतरंग रिश्तों में घुसपैठ करके उन्हे आम जरूरत सा बना देती हैं। वैदेही को अकसर ही महसूस

होता था। खैर अपनी सोच पर विराम लगाते हुए वैदेही ने श्रीकांत से कहा, "तुम भी तो सारा दिन बिजी ही रहते हो श्रीकांत।···अच्छा बताओ, क्या बात करनी थी तुम्हें ?···मैं सुन रही हूँ।"

श्रीकांत के बात शुरू करते ही वैदेही सजग हो गई।

"वैदेही! मुझे माँ-पापा के बारे में बात करनी है। दोनों की ही तबीयत अब काफी खराब रहने लगी है। पापा के लकवाग्रस्त होने के बाद माँ का काम काफी बढ़ गया है। दोनों का बी.पी. और ब्लड शुगर काफी घटता-बढ़ता रहता है। जिसको बराबर मॉनिटर करना जरूरी है। मुझे पापा के लिए रखे हुए स्टाफ पर कम विश्वास है कि वह सब काम सुचारु रूप से करता होगा।···हमारे बेटे भी अब बड़े हो रहे हैं। वह दोनों भी अपने भविष्य के प्रति सजग और केंद्रित रहे, यही चाहता हूँ। अब उनको भी व्यक्तिगत तौर पर देखना बहुत जरूरी हो गया है।···तुम तो जानती ही हो वैदेही, खुद के मरे स्वर्ग नहीं मिलता।"

वैदेही की मुँदी हुई आँखें देखकर श्रीकांत ने उसे हलका सा हिलाकर पूछा, "सुन रही हो न वैदेही मुझे···"

"हम्म, सुन रही हूँ श्रीकांत। मुझे लगा, तुम्हें हम दोनों से जुड़ी हुई कोई बात करनी थी। एक बार को तो मुझे लगा कि शायद तुमको प्यार आ रहा है। तभी तुम मुझे सोते से जगा रहे हो।···श्रीकांत! एक अरसा हो गया न हमें भी कुछ···हर रात जब थककर चूर होकर लेटती हूँ तो लगता है थोड़ी देर के लिए बस तुम मेरे सिर पर हाथ ही फेर दो और मैं एक गहरी नींद लूँ। पर तुम्हारे दिल में कभी ऐसा खयाल आया हो, मुझे महसूस ही नहीं हुआ।"

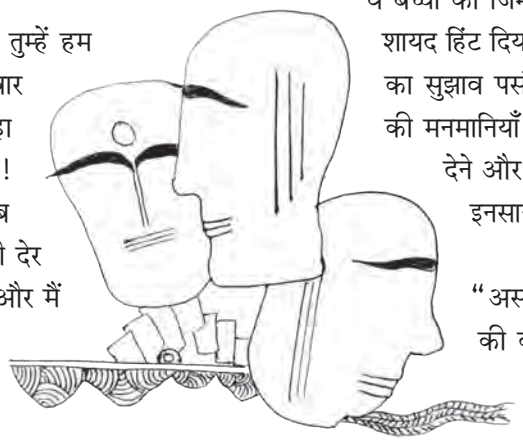

"क्या वैदेही तुम भी···मैं इस वक्त बहुत परेशान हूँ। हमारे घर के लिए चिंतित हूँ। तुमको तो बस यही सूझता है··· छोड़ो, अगर तुमको सोना है तो सो सकती हो। घर के बारे में सोचने की जिम्मेदारी अगर अकेले मेरी है तो मैं ही सोच लूँगा। तुम मेरी बातों को नजरअंदाज करके अपने काम को तवज्जो देना चाहती हो तो देती रहो। क्या होगा इतने सारे रुपए कमाकर, जब घरवाले ही उपेक्षित हो जाएँ?"

श्रीकांत अपने शब्दों के बाण चलाकर शांत हो चुका था। अब उसे वैदेही की प्रतिक्रिया का इंतजार था।

"तुम अपनी बात बोलकर हमेशा ही निष्कर्ष पर क्यों पहुँच जाते हो श्रीकांत। जबकि मुझे पूरी बात का पता ही नहीं। बात पता चलने के बाद मुझे भी अपना पक्ष सोचने व रखने दो। आम घरेलू महिला के जैसे मेरे साथ, उनके पतियों जैसा व्यवहार मत करो। घर और बच्चे मेरी भी प्राथमिकता हैं। तभी हर बात को व्यक्तिगत स्पर्श देने की कोशिश भी करती हूँ। क्या कहना चाहते हो, वह साझा करो? आज घर में तुम्हारी किससे और क्या बात हुई है···सभी कुछ मुझे विस्तार से बताओ। हो सकता है, व्यस्तता के रहते कुछ ऐसा हो, जो मैं देख नहीं पा रही हूँ।"

थोड़ी देर तक जब श्रीकांत की ओर से कोई बातचीत शुरू नहीं हुई तो वैदेही ने वापस पूछा, "कुछ हुआ है क्या श्रीकांत?"

श्रीकांत के उलटे तरीके से बात करने की वजह से वैदेही की नींद अब कोसों दूर भाग चुकी थी। कहने को दोनों का विवाह प्रेम-विवाह था। पर जब भी श्रीकांत को वैदेही से अपनी कोई बात मनवानी होती टेढ़ा-ही-टेढ़ा बोलता और चलता। उसकी यही बात वैदेही को बहुत आहत करती। पर उसकी शांत होने की प्रवृति उसको और अधिक मरीजों के साथ झोंक देती।

जब भी ऐसा कुछ होता तो वह अपना अधिकतम समय अस्पताल में रहकर गुजारना चाहती। वैदेही को खामोश देखकर श्रीकांत ने बताना शुरू किया—

'आज लंच के समय माँ बोल रही थी कि 'पापा के लकवाग्रस्त होने के कारण उनके पास बहुत काम रहते हैं। इसलिए अब उनसे घर व बच्चों की जिम्मेदारी नहीं सँभाली जाती।' उन्होंने तुमको भी शायद हिंट दिया था। उनको तुम्हारा घर में और नौकर बढ़ाने का सुझाव पसंद नहीं आया। माँ का कहना है कि 'नौकरों की मनमानियाँ भी उनसे नहीं देखी जाती, नौकरों को निर्देश देने और उन पर आँख रखने के लिए घर का ही कोई इनसान होना चाहिए।'

वैदेही ने श्रीकांत के चुप होते ही कहा, "अस्पताल से फोन कर-करके सब कुछ सँभालने की कोशिश करती तो हूँ। नौकरों पर आँख रखने का क्या मायने है? तुम्हारी और माँ की मेरे से क्या अपेक्षा है, श्रीकांत?"

"कुछ तो सोचना ही पड़ेगा वैदेही। आखिरकार इकलौता बेटा हूँ उनका।" अपनी बात बोलकर श्रीकांत शांत हो गए।

"तुम मुझसे क्या चाहते हो? मरीजों की डिलीवरी के हिसाब से मुझे अपना टाइम सेट करना पड़ता है। हमारे बेटे भी अब बड़े हो रहे हैं। उनकी आगे की पढ़ाई व खर्चों को भी तो देखना होगा। कहीं बाहर पढ़ने भेजना है तो रुपया चाहिए ही न।"

"रुपया तो मैं भी अब काफी कमा लेता हूँ। आज की परिस्थितियों को देखकर हम दोनों में से एक जन को कोई-न-कोई निर्णय लेना ही होगा।"

"कैसा निर्णय?"

"यही कि हम दोनों में से एक घर को ज्यादा समय दे और जिम्मेदारी सँभाले।"

"तुम सँभाल पाओगे घर की जिम्मेदारियाँ? न तो तुमने कभी घर का काम किया है, न ही तुम्हें कोई इंटरेस्ट है। अगर हम दोनों सामने खड़े

हो तो माँ और पापा को भी अपने सभी काम मेरे से ही करवाने होते हैं। उनको हमेशा से ही अपना बेटा बहू से ज्यादा थका हुआ दिखाई देता है। बच्चों के स्कूल जाने से लेकर उनकी पढ़ाई अब तक मैंने ही सँभाली है।" वैदेही की नींद अब पूरी तरह गायब हो चुकी थी।

वैदेही की बातों का जवाब दिए बगैर श्रीकांत ने अपनी ही बात जारी रखी—

"यह तुमको सोचना है वैदेही। मैं सोलह से अठारह घंटे काम कर सकता हूँ, तुम नहीं कर सकती। अब निर्णय तुमको ही लेने हैं। तुम कहोगी तो मैं अपनी नौकरी छोड़ देता हूँ। अगर तुमको लगता है, माँ-पापा मेरे हैं तो मुझे ही सोचना चाहिए तो सोच लूँगा। या फिर सोचकर देखो, कुछ सालों की ही तो बात है। तुम अपनी प्रैक्टिस बाद में भी शुरू कर सकती हो। अपनी बात बोलकर श्रीकांत करवट लेकर लेट गए।

उस रोज खुद को घर की चारदीवारी में कैद करने का खयाल आते ही वैदेही सिहर गई थी। वह मेडिकल की जिस ब्रांच से जुड़ी थी, मरीज प्रेगनेंसी के पहले दिन से डिलीवरी तक एक ही डॉक्टर को दिखाना चाहता था। बौखलाहट में वैदेही अपने बिस्तर पर उठकर बैठ गई और श्रीकांत से बोली, "श्रीकांत! तुम सो गए हो क्या? नींद से उठाकर मेरे से बात शुरू की है तो बात तरीके से पूरी भी करो प्लीज। माँ-पापा तुम्हारे या मेरे क्या होता है। माँ-पापा बस माँ-पापा ही होते हैं।" वैदेही को श्रीकांत की यह बात आहत कर सकती है, उसने नहीं सोचा। तभी पुन: बोला, "वैदेही! बात पूरी हो चुकी है। तुम जो भी निर्णय लोगी मुझे सवेरे बता देना। मैं वैसा ही कर लूँगा।"

थोड़ी ही देर में श्रीकांत के खर्राटों की आवाज कमरे में गूँजने लगी। वैदेही के दिलो-दिमाग पर इस समय खर्राटों की आवाज हथोड़े के जैसे लग रही थी। श्रीकांत के बात करने का अंदाज कुछ ऐसा ही होता था। जब वह अपनी मनमानी करवाना चाहता था। इतने साल साथ गुजारने के बाद वैदेही अकसर सोच में पड़ जाती, अगर दोनों का प्रेम विवाह हुआ था, तो उनके बीच से प्रेम ऐसे मौकों पर गुम कहाँ हो जाता था।

अकसर नींद में वैदेही को मेडिकल कॉलेज वाला समय भी चलचित्र जैसा चलता हुआ दिखता था। जब उनका प्रेम परवान चढ़ा। दोनों प्रेम में सराबोर थे। पर अपने कॅरियर और प्रैक्टिस को जमाने के भी असंख्य स्वप्न देखते थे। बगैर किसी अड़चन दोनों का विवाह भी हो गया था। शुरू के सालों में जो गायनेकोलॉजिस्ट पत्नी और बहु गर्व का एहसास करवाती थी। समय के साथ ज्यों-ज्यों वह व्यस्त होती गई, घर के लोगों की अपेक्षाएँ उसके समर्पण की घर पर भी ज्यादा माँग करने लगी।

दोनों एक ही अस्पताल में काम करते थे। श्रीकांत भी जनरल सर्जन था। शुरू के सालों में श्रीकांत के पास मरीज नहीं होते थे, क्योंकि किसी भी नए सर्जन के मरीज बनने में समय लगता है। जबकि स्त्री-रोग विशेषज्ञ के मरीज जल्दी बन जाते हैं। ऐसा ही वैदेही के केस में भी हुआ। वैदेही का शांत व सौम्य व्यवहार मरीजों को बहुत राहत देता था।

जिस प्राइवेट अस्पताल में दोनों काम करते थे, उसके मालिक डॉ. कामथ नामी हृदय-रोग विशेषज्ञ थे। वह हमेशा ही वैदेही को बोलते थे, "वैदेही, यू आर परफेक्ट फॉर योर प्रॉफेशन···योर डेडिकेशन इस रिमार्केबल" वैदेही उनकी बात पर मुसकरा जाती और अपना बेस्ट देने की कोशिश करती।

शुरू में वैदेही घर और बच्चों को अधिक समय देना चाहती थी। पर श्रीकांत के बहुत मरीज न होने से अप्रत्यक्ष रूप से वैदेही पर ज्यादा घंटे काम करने का दबाव डाला गया था। तभी घर सुचारु रूप से चल सकता था। जब वैदेही का काम बढ़ने लगा सास-ससुर से अनचाही बातें भी सुनने को मिली। जबकि उस समय वह दोनों स्वस्थ थे।

'हम दोनों तो घर की चौकीदारी कर रहे हैं। तुम दोनों तो होटल के जैसे घर में आते-जाते हो। सारा दिन हमारी आँखें दरवाजे पर लगी रहती हैं। कब तुम दोनों आओ और घर सँभालो।'

वैदेही को यह सब बातें मिलकर समाधान न खोजने की वजह से आहत करती थी। खैर, समय तो अप्रत्याशित होता है। जब पापा को अचानक ही लकवा हो गया तो परिस्थितियाँ और भी बदल गईं। साथ में माँ की उलहाना बदल गई। फिर माँ अकसर ही एक बात बोलती थी—

"तुम लोगों ने पापा के लिए जो स्टाफ रखा है। वह पापा की अस्पष्ट भाषा नहीं समझ पाता तो मुझे ही उसको समझाना पड़ता है। तुम दोनों के आने-जाने का कोई समय तो है नहीं। तो बच्चों के स्कूल से आने के बाद मुझे उनको भी देखना पड़ता है। तुम लोग कम-से-कम खाने के निर्देश तो अस्पताल से ही दे दिया करो, ताकि मुझे रसोई की चिंता नहीं करनी पड़े। अब मेरे से इस उम्र में इतना कुछ नहीं सँभाला जाता।"

उम्र के साथ सभी को दिक्कतें आती ही हैं। वैदेही बहुत अच्छे से समझती थी। तभी समस्याओं के समाधान खोजने की भी कोशिश करती थी। ऐसे में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से मिलने वाले उलाहने उसको पीड़ा देते थे। पर वैदेही उन कही बातों को मुसकराकर भूलने की कोशिश करती।

कहीं न कहीं यह भी सच था कि जरूरत से ज्यादा सुविधाएँ इनसान को आरामतलब बना ही देती है।

श्रीकांत ने किसी भी बात पर प्रतिक्रिया न देने का मानस बना रखा था। शायद यह उस समय की जरूरत भी थी। अपनी-अपनी प्रैक्टिस को जमाने के लिए बाकी बातों से हम दोनों को ही ध्यान हटाना था।

वैदेही ने भी अपने मुँह पर संस्कारों का बाड़ा बाँधकर रखा था। न सिर्फ घर और श्रीकांत को उसके काम की जरूरत थी बल्कि काम करना उसका पैशन भी था। कुछ इस तरह विवाह के बाद पंद्रह साल निकल गए थे। वैदेही का शहर की अच्छी स्त्री-रोग विशेषज्ञ में नाम था।

वैदेही को विवाह के पंद्रह साल बाद श्रीकांत का इस तरह बात करना बहुत स्वार्थी सा महसूस हुआ था। पहले उसको बारह-बारह घंटे काम करने दिया। जब घर में जरूरत हुई तो मिलकर विकल्प सोचने की बजाय उसकी भावनाओं को आहत किया। जब बातों में थोपने जैसा व्यवहार दिखाई दे, तब इनसान पीड़ा महसूस करता है।

उम्र के इस पड़ाव पर वैदेही कोई कड़ा निर्णय नहीं ले सकती थी। जिससे घर की शांति भंग हो, और जब उसके बच्चे अपने-अपने कॅरियर बनाने की तैयारियों में लगे हो। उस रोज वैदेही को समझ नहीं आ रहा था कि वह कहाँ खड़ी है ? और उसके साथ कौन-कौन खड़ा है। एक बार को तो उसका सभी रिश्तों से मन उचट गया।

जिस विवाह की नींव पर सारे रिश्ते खड़े थे, वहाँ शांति की कीमत क्या हो सकती थी। यह वैदेही से बेहतर कोई नहीं समझ सकता था। खूँटे पर बँधी गाय के जैसे उसके हालात थे। ऐसे में कड़े से कड़ा निर्णय एक औरत कितनी जल्दी ले लेती है, वैदेही को खुद पर भी आश्चर्य हुआ।

उसके इतने बड़े फैसले को भी फॉर ग्रांटिड ही ले लिया गया। स्वप्न वैदेही के थे तो उनका मूल्य सिर्फ उसके लिए था। तभी तो उनका दर्द वैदेही को सालोसाल गुजरने के बाद पीड़ा सा सालता रहा। जब भी उसको एकांत काटने दौड़ता है। पीड़ाएँ भी साथ-साथ हावी हो जाती।

वैदेही ही नींद अब पूरी तरह खुल चुकी थी। खाली बिस्तर पर असंख्य दर्द और पीड़ाएँ बिखरी पड़ी थी। खुद को शांत करने के लिए उसे बहुत जतन करने पड़े नहीं तो वह अवसादित हो जाती। या किसी के लिए भी मन से नहीं कर पाती।

रात तीन बजे वैदेही की नींद छूटे हुए स्वप्नों की वजह से उचट गई थी। पुरानी बातें सोचते-सोचते अब सवेरे के पाँच बज चुके थे। वैदेही उठकर अपने लिए कॉफी बना लाई थी। आज वैदेही बेड साइड पर बैठकर उन सभी घटनाओं को एक ही बार में दोहरा लेना चाहती थी, जो किश्तों में बार-बार आकर उसी नींद को उचाट देती थी।

वैदेही ने अपनी मरजी के खिलाफ अपना इस्तीफा उस दिन डॉ. कामथ को भिजवा दिया था। जब डॉ. कामथ ने वैदेही को फोन करके पूछा तो उसके पास कहने को सिर्फ एक ही बात थी, 'डॉ. कामथ! हाल-फिलहाल घर को मेरी बहुत जरूरत है। सब सेटल होते ही आपके अस्पताल को फिर से जॉइन करूँगी।'

उसकी बातों को सुनकर डॉ. कामथ ने कहा था, 'वैदेही! याद रखना गुजरा हुआ समय फिर से नहीं आता। समस्याओं के समाधान खोज सको तो जल्द ही वापस अस्पताल जॉइन कर लेना। यू आर ऑलवेस वेलकम…'

'जी जरूर…थैंक्स…आई विल डेफिनेटली लेट यू नो…'

उस दिन पंद्रह साल की मेहनत पर घर की जिम्मेदारियाँ भारी पड़ गई थी। हर महीने दो से तीन लाख रुपए का चैक उठाने वाली वैदेही का अकाउंट बच्चों की पढ़ाई व विभिन्न कामों में खर्च हो गया।

एक रोज अपनी अलमारी सँभालते हुए जब उसका हाथ अपनी जीरो बैलेंस वाली पासबुक पर पड़ा तो शब्द गुम हो गए, बस आँखों में एक नमी तैर गई। अपने कॅरियर से जुड़ा पहला क्रेडिट कार्ड उसने खुद ही श्रीकांत को सौंप दिया था। खुद कमाने का एक एहसास जो वैदेही को आत्मविश्वास देता था, वह उसके क्रेडिट कार्ड के साथ श्रीकांत के पास चला गया था।

बाद में श्रीकांत ने जो भी कमाया, उससे जॉइंट नेम में घर और बाकी इंवेस्टमेंट्स भी किए। आज उसी घर के एक कमरे में वैदेही अकेली बैठी थी। काम करना उसका पैशन था। तभी स्वप्न उसका पीछा नहीं छोड़ते थे। उसकी पढ़ाई, उसके मरीज, उसका नाम, उसकी मेहनत सब बार-बार आकर उसको जगा देते थे।

जिस रोज वैदेही ने अपना निर्णय घर के सभी लोगों को सुनाया। श्रीकांत ने सभी के सामने खुश होकर कहा, 'मैं तुम जैसी पत्नी पाकर बहुत खुश हूँ वैदेही। मुझे तुम से यही उम्मीद थी। पत्नी हो तो तुम जैसी। जैसे ही बच्चे थोड़ा सेटल हो और माँ-पापा की तबीयत सुधरे तुम वापस जॉइन कर लेना। मैंने हमेशा तुम्हारे साथ हूँ।'

श्रीकांत की बात सुनकर वैदेही मुसकरा दी थी। वह कहना चाहती थी, 'श्रीकांत! साथ होने के मतलब तुम आजीवन नहीं समझ पाओगे। पंद्रह साल की जमी-जमाई प्रैक्टिस को छोड़ना कितनी पीड़ा देता है। इसका एक प्रतिशत भी तुमने महसूस किया होता तो तुम हर जगह मेरे साथ खड़े हो जाते।'

दरअसल पापा तो हकीकत में बीमार थे, पर माँ जिद में वैदेही की माँ बनकर नहीं सोच पाई। घर की शांति को बरकरार रखने के लिए उसने सालोसाल एक झूठ को अपनी मुसकराहट में छिपाकर रखा कि वह अपना कॅरियर छोड़कर खुश है।

कैसे खुश हो सकती थी वह। जैसे आज उसके बच्चों के स्वप्न उसके लिए बहुमूल्य थे। ऐसे ही उसके भी स्वप्नों में उसकी माँ-बाबा का किया हुआ त्याग शामिल था। उसका मेडिकल का इम्तहान होता या कोई और भी इम्तहान माँ सारा-सारा दिन मंत्रों के जाप करती। वह आज जो भी थी अपने माँ-बाबा की वजह से थी।

निर्मूल कारणों से पौराणिक वैदेही को जमीन में समाना पड़ा था और इस वैदेही ने खुद अपना कॅरियर उन लोगों के लिए जमीन में दफना दिया था, जिन्होंने उसको डॉक्टर से नर्सिंग स्टाफ बना दिया।

'वैदेही! पापा का बी.पी. ले लो, पापा की ब्लड शुगर ले लो, इंसुलिन लगा दो। वैदेही! पापा की मेडिसन का वक्त हो गया है। जब तुम उनकी दवाइयाँ हाथ पर रखोगी, वे तभी खाएँगे।'

पापा की नर्सिंग केयर व बाकी काम सँभालने में कब वक्त उड़न छू हो जाता वैदेही को पता ही नहीं चलता।

हालाँकि पापा के लिए एक फुल टाइम नर्सिंग स्टाफ रखा हुआ था। पर जब वह अस्पताल जाती थी, तब भी पापा को वैदेही के लौटने पर

उसी से अपने काम करवाने होते थे। अब सारा दिन वह घर पर दिखती थी तो सभी की निर्भरता बढ़ गई थी।

खैर, घर पर रहने के बाद वैदेही को बेफिजूल की उल्हाना से तो मुक्ति मिल गई। पर उसका पैशन एक प्रश्न चिह्न बनकर लटक गया था। जिस रोज वैदेही ने अपना इस्तीफा लिखकर एक महीने का नोटिस देकर अस्पताल भेजा घर में सभी के चेहरे पर मुसकराहट की लहर दौड़ गई। पर किसी ने उसके मन की थाह लेने की कोशिश नहीं की।

पापा के लिए रखा हुआ स्टाफ पंद्रह दिन की छुट्टी माँगकर अपने गाँव क्या गया तो वापस ही नहीं लौटा। उसके बाद जो भी स्टाफ मिले, पार्ट-टाइम ही मिले। वैदेही के घर होने से फुल टाइम स्टाफ को ढूँढ़ने की कोशिश भी नहीं की गई।

समय के साथ जिम्मेदारियों का एक ऐसा चक्र शुरू हुआ, जिससे वैदेही अगले के दस-बारह सालों तक नहीं निकल सकी। पापा के जाने के बाद मम्मी का मानसिक संतुलन बिगड़ गया। वैदेही को हमेशा उनका संबल बनकर खड़ा रहना पड़ा। लगभग दो साल तक माँ के ऐसे ही हालात रहे। फिर माँ भी चल बसी। इस बीच बच्चे भी अपना-अपना भविष्य बनाने विदेशों को निकल गए। वैदेही भी अब सत्तावन साल की हो चुकी थी।

वैदेही की अपनी भावनाओं का क्रेडिट कार्ड भी इस बीच न जाने कब और कहाँ गुम हो गया। उसने कभी किसी से फिर कोई अपेक्षा ही नहीं की। बस उसको अपने जिंदा होने का एहसास भर रहा। उसका घर में रुकना क्या हुआ कि उसके कॅरियर और दिनचर्या पर सबकी अपेक्षाओं ने अपना कब्जा जमा लिया। इन सबके बीच वैदेही का डॉक्टर होना भी कहीं खो गया था।

श्रीकांत एक बार घर से निकलता तो रात को ही थका-हारा प्रवेश करता। पहले एक ही अस्पताल होने से दोनों के बीच कोई-न-कोई बात करने को होती थी। फिर दोनों के बीच बातों पर भी धीर-धीरे पूर्ण विराम लगता गया। खुद के कमाने पर वैदेही को बहुत गर्व था। शायद इसी वजह से वह ताउम्र कभी भी श्रीकांत से माँगकर रुपया नहीं ले पाई। वैदेही के लिए रुपया कभी प्राथमिकता नहीं थी। तभी उसने अपना कॅरियर दाँव पर लगा दिया था।

समय के साथ जब बेटे भी अपनी राहों पर निकल गए। तब श्रीकांत ने वैदेही से कहा, 'वैदेही! अब तुम अस्पताल जॉइन कर सकती हो। तुमको तो अभी भी अस्पताल वाले बुला रहे हैं। मम्मी-पापा भी नहीं रहे। अब तुमको जॉइन करने का सोचना चाहिए।'

श्रीकांत की बात मानकर वैदेही ने खुद को मानसिक रूप से तैयार करके अस्पताल जाने का फैसला किया। वैदेही को अब चौदह साल से अधिक प्रैक्टिस छोड़े हुए हो चुके थे। जब वह पहले दिन अस्पताल पहुँची। वहाँ का वातावरण उसको उत्साहित करने की बजाय डरा रहा था। जो सर्जीकल इंस्ट्रूमेंट उसको उत्साह से भर देते थे, आज वही खौफ दे रहे थे। मुश्किल से आधा घंटे वह अस्पताल में रुक पाई। इस तरह अपना आत्मविश्वास खोते हुए देखकर वैदेही का रोना ही छूट गया। जब डॉ. कामथ ने उसे रोते हुए देखा तो उसकी मनो:स्थिति को भाँपते हुए बोले, 'हिम्मत रखो, समय के साथ सब ठीक हो जाएगा।'

डॉ. कामथ की बातों ने उसे बहुत हौसला दिया। पर वैदेही के हाथ सर्जरी करने के लिए तैयार ही नहीं हो पा रहे थे। डॉ. वैदेही को मारकर वैदेही की हिम्मत टूट चुकी थी।

फिर अचानक दो महीने पहले ही श्रीकांत भी कार्डियक अरेस्ट से चले गए। एक खौफ से वह निकली नहीं थी कि श्रीकांत का अचानक चले जाना उसको बहुत तोड़ गया।

अतीत के पृष्ठ एक बार क्या उलटना शुरू हुए कि वह पलटना ही बंद नहीं कर रहे थे। जिन रिश्तों के लिए उसने अपने फिसिकल और इमोशनल अकाउंट खाली कर दिए थे। वह सब अपनी-अपनी राह निकल गए। साथ में उसका आत्मविश्वास भी ले गए थे। आज बिस्तर पर अकेली पड़ी वैदेही अपने अतीत के पन्नों को बराबर उलट-पलट रही थी।

जीवन में उसने कभी कोई क्रेडिट कार्ड इस्तेमाल नहीं किया। पर वह खुद क्रेडिट कार्ड के जैसे ताउम्र इस्तेमाल होती रही या सच कहो तो खुद को इस्तेमाल करवाती रही। पता नहीं किन जनमों का कर्ज था कि बरसो-बरस की मेहनत को छोड़ना पड़ा।

श्रीकांत के अचानक ही चले जाने के बाद उसके क्रेडिट काड्र्स उसका ही मजाक उड़ा रहे थे। जिनका बैलेंस जीरो था और उसकी जिंदगी अकेलेपन में गुम थी।

किसी के कहे हुए चंद वाक्यों क्षणिक सुखों का अनुभव तो करवा सकते हैं, पर इनसान का काम करना उसको जीवंत महसूस करवाता है। यह बात वैदेही बहुत अच्छे से समझ चुकी थी।

वैदेही अब उन ठहरे हुए चौदह-पंद्रह सालों से जुड़े उन स्वप्नों से भी बाहर निकलना चाहती थी, जो उसको रात-रात भर का जागरण करवा देते थे।

बच्चे उसको पास आकर रहने को बोल रहे थे। पर हिंदुस्तान के बाहर जाकर रहना उसको अच्छा नहीं लगता था।

श्रीकांत के रहते हुए उसने अस्पताल का एडमिनिस्ट्रेशन सँभालने का काम शुरू किया था। वह आज भी जारी था, ताकि वह मरीजो के बीच रहकर उनकी मदद कर सके। मरीजो का प्यार व विश्वास ही उसका अकेलापन भर सकता था। वैदेही अपने सोए हुए आत्मविश्वास को फिर से जगाना चाहती थी, ताकि भविष्य में वह सर्जरी भी कर सके। साथ ही वह उन स्वप्नों से भी निकलना चाहती थी, जिनको परिस्थितियों ने उस पर थोप दिया था।

साअ

५८, सरदार क्लब स्कीम
जोधपुर-३४२००१ (राज.)
दूरभाष : ०९४६०२४८३४८
pragatigupta.raj@gmail.com

गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित कबीर-वाणी

● मनमीत कौर

कबीर की वाणी के मुख्य रूप से चार पुराने साक्ष्य हैं—सबसे पुराना रूप मिलता है आदिग्रंथ (गुरुग्रंथ साहब) में, श्री अर्जुन देव द्वारा संकलित संग्रह में दूसरा संत दादूदयाल की आज्ञा से दादू, कबीर, नानक, नामदेव, रैदास और हरिदास की वाणी के तैयार किए गए 'पंचवाणी' नामक संकलन में; इसमें बाद में कुछ-न-कुछ जुड़ता गया है। तीसरा रूप मिलता है दादू के शिष्य रज्जब द्वारा संकलित संतवाणी 'सर्वांगी' में चयनित कबीर-साहित्य में, और चौथा कबीरपंथ का अपना अभिलेख 'बीजक', जो पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में सत्रहवीं सदी के अंत में ग्रंथ के रूप में उपनिबद्ध हुआ। यहाँ बात हो रही है गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित कबीर-वाणी की। गुरू ग्रंथ साहिब सिक्खों का पवित्र धर्म-ग्रंथ है, जिसमें कई सिक्ख और गैर-सिक्ख की वाणियाँ संकलित हैं। इसमें बाबा फरीद, सूफी भीखण, वैष्णव रामानंद, अवतारपूज्य सूरदास, मूर्तिपूज्य धन्ना, ब्राह्मण परमानंद, खत्री सुंदरदास, वैश्य त्रिलोचन, भट्ठ कलसहार, राजपूत पीपा जैसे भगत-फकीरों की वाणियाँ संकलित हैं तो रविदास चमार, कबीर जुलाहा, सत्ता डूब, सैन नाई और सधना कसाई जैसे निचली या पिछड़ी समझी जाने वाली जाति के संतों की वाणियाँ भी हैं। अर्थात् यहाँ किसी विशिष्ट जाति को महत्त्व न देकर उनके विचारों की विशिष्टता को महत्त्व दिया गया है।

विचारों के मूल में यह बात स्पष्ट है कि मनुष्य अपने कर्म अनुसार ही जीवन में गति पाता है। गुरुवाणी के अनुसार परमात्मा का वास मनुष्य के हृदय में है, अपने मधुर एवं विनम्र आचरण द्वारा समस्त संसार को जीता जा सकता है। यह वाणी ब्रह्मज्ञान से उपजी आत्मिक शक्ति को लोककल्याण की ओर प्रवृत्त करने हेतु प्रेरणादायी है। इन संतों में कबीर की श्रेष्ठता इस बात में निहित है कि ग्रंथ में संकलित गैर-सिक्ख वाणियों में सबसे अधिक वाणियाँ कबीर की हैं। 'कबीर' मूलत: अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है—महान्, बड़ा बुजुर्ग, सर्वश्रेष्ठ आदी। कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि वे अपने नाम के अनुरूप विचारों में भी कबीर (सर्वश्रेष्ठ) हैं, जिसका साक्षात् प्रमाण 'गुरुग्रंथ साहिब' है।

कबीर के विचारों की मौलिकता और आधुनिकता ने उन्हें आज भी

राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर की सम्मानित पत्र-पत्रिकाओं में २२ से अधिक शोध, आलेख प्रकाशित। साहित्य अमृत, चिंतन सृजन, नयी धारा, साहित्य कुंज, जनकृति, परिंदे, ककसाड, इस्पातिका, प्रेमचंद पष्प, सत्राची, साहित्य रागिनी आदि।

प्रासंगिक बनाए रखा है। उनके समय में हिंदुस्तान में अनेक धार्मिक मत-मतांतर प्रचलित थे और मुसलमानों का पूर्ण रूप से दबदबा था। मध्ययुगीन समाज की उन चुनौतियों का सामना कबीर कर रहे थे, जिसमें जाति, धर्म, वर्ग में विभाजित समाज एक मार्गदर्शक की आवश्यकता महसूस कर रहा था। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे। वे साधु होकर भी योगी (अगृहस्थ) नहीं थे। वे वैष्णव होकर भी वैषणव नहीं थे। वे योगी होकर भी योगी नहीं थे।" हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर को युग-संधि के उस काल में उत्पन्न हुआ मानते हैं, जब धर्म साधनाओं और सामाजिक विचार-प्रवृत्तियों के बीच अंतहीन टकराहट शुरू हो गई थी। वे लिखते हैं—"कबीरदास ऐसे ही मिलनबिंदु पर खड़े थे, जहाँ से एक ओर हिंदुत्व निकल जाता है, दूसरी ओर मुसलमानत्व, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है, दूसरी ओर अशिक्षा, जहाँ एक ओर योगमार्ग निकल जाता है, दूसरी ओर भक्तिमार्ग, जहाँ एक ओर निर्गुण भावना निकल जाती है, दूसरी ओर सगुण साधना, उसी प्रशस्त चौराहे पर वे खड़े थे। वे दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर विरुद्ध दिशा में गए मार्गों के गुण-दोष उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे।"

यही कारण है कि उन्होंने स्वयं को जुलाहा कहना अधिक पसंद किया। 'जुलाहा' शब्द ही कपड़ा बुनने वाले वर्ग अर्थात् धार्मिक कर्मकांडों से इतर कर्म विश्वासी वर्ग की महत्ता को द्योतित करता है। हालाँकि 'जुलाहा' शब्द फारसी का है। पर इस जाति के बारे में संस्कृत पुराणों में बताया गया है कि मलेच्छ से कुविंद कन्या में 'जोला' या जुलाहा जाति की उत्पत्ति हुई है अर्थात् मलेच्छ पिता और कुविंद माता से जो संतति हुई, वही जुलाहा कहलाई। अपनी जाति के कारण कबीर ने स्वयं में

हीन भावना न पालकर हिंदू-मुसलिम सामाजिक तंत्र और पद्धतियों की आलोचना की। जाति-व्यवस्था से ऊपर उठकर स्वयं को ईश्वर की जाति का घोषित किया। कबीर कहते हैं कि सभी लोग मेरी जाति पर हँसते थे, किंतु मैं इस जाति पर बलिहारी जाता हूँ। इसके कारण ही मैंने सृष्टिकर्ता की बंदगी की और आत्मिक सुख पाया है।

कबीर मेरी जाति कउ सभु को हसनेहारु।
बलिहारि इस जाति कउ जिह जपिओ सिरजनहारु॥ (गु.ग्रं., पृ.१३६४)

कबीर कहते हैं, जैसे हल्दी और चूने के मेल से हल्दी अपना पीला रंग छोड़ देती है और चूने का सफेद रंग भी नहीं रहता है। वैसे ही भक्ति से नीची जाति वाले मनुष्य के अंदर से नीची जाति वाली भावना मिट जाती है और ऊँची जाति वाले मन से उच्चता का भाव दूर हो जाता है। अर्थात् सभी एकमेक हो जाते हैं। कबीर उस परमात्मा की प्रीति पर बलिहारी हैं, जो ऊँची-नीची जाति का भेदभाव मिटा देता है।

कबीर हरदी पीरतनु हरै चून चिहनु न रहाइ।
बलिहारी इह प्रीति कउ जिह जाति बरनु कुलु जाइ॥ (गु.ग्रं., पृ.१३६७)

कबीर स्वीकारते हैं कि मेरी नीच जाति जुलाहा मेरे अंदर छोटापन पैदा नहीं कर सकती, क्योंकि मेरे हृदय में सृष्टि के मालिक परमात्मा का वास है। (देखें, गु.ग्र., पृ.१३६८)

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि "कबीर ने सामान्य की भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में आत्म-गौरव का भाव जगाया।" आचार्य ने दूसरी बात सौहार्द की यह कही कि "उपासना के बाह्य स्वरूप का आग्रह करने वाले और कर्मकांड को प्रधानता देने वाले पंडितों और मुल्लों दोनों को उन्होंने खरी-खरी सुनाई और राम-रहीम की एकता समझकर हृदय को शुद्ध और प्रेममय करने का उपदेश दिया।" इसका साक्ष्य गुरुग्रंथ साहिब में मिलता है। कबीर कहते हैं कि दुनिया पंडितों के पीछे लगी है और पत्थर की मूरत को परमात्मा मान बैठी है, उसे पूज रही है। जो मान बैठे हैं कि वे पत्थर पूजकर परमात्मा को पा सकते हैं, वे गहरे पानी में डूबे समझो अर्थात् वे भ्रम में जीते हैं। कबीर आगे कहते हैं कि हे मुल्ला, मस्जिद की छत पर चढ़ने का तुम्हें क्या फायदा है। जिस परमात्मा की नमाज खातिर तू बाँग दे रहा है, उसे अपनी अंतरात्मा में ढूँढ़, वह तेरे अंदर ही बसता है। यदि तुझे आत्मिक शांति नहीं है और सिर्फ लोगों को बुला रहा है तो अच्छी तरह समझ लो खुदा बहरा नहीं है, वह तेरे दिल की हालत जानता है, उसे ठगा नहीं जा सकता।

कबीर पाहनु परमेसुरु कीआ पूजै सभु संसारु।
इस भरवासे जो रहे बूडे काली धार॥ (गु.ग्र., पृ. १३७१)
कबीर मुलां मुनारे किआ चढहि साँई न बहरा होइ।
जा कारनि तूं बांग देहि दिल ही भीतरि जोइ॥ (गु.ग्र., पृ. १३७४)

कबीर द्वारा मान्य परमतत्त्व का मूलाधार अद्वैतवाद है। वे निर्गुण भक्त हैं, धार्मिक कर्मकांडों के विरुद्ध तीखा कटाक्ष करते हैं। वे मूर्तिपूजा का विरोध करते हैं, क्योंकि उसे मनुष्य ने बनाया है। उनके अनुसार मूर्ति को नहीं बल्कि मनुष्य को मूर्त बनाने वाले उस परमात्मा को पूजना चाहिए। कबीर अपनी वाणी में देव पूजा के लिए फूल-पत्तियाँ तोड़ती मालिन को शिक्षा देते हैं कि जिस पत्थर के देवता के लिए यह फूल-पत्तियाँ तोड़ रही हो, उसके हर पत्ते में जिंदगी धड़क रही है।

कबीर द्वारा मान्य परमतत्त्व का मूलाधार अद्वैतवाद है। वे निर्गुण भक्त हैं, धार्मिक कर्मकांडों के विरुद्ध तीखा कटाक्ष करते हैं। वे मूर्तिपूजा का विरोध करते हैं, क्योंकि उसे मनुष्य ने बनाया है। उनके अनुसार मूर्ति को नहीं बल्कि मनुष्य को मूर्त बनाने वाले उस परमात्मा को पूजना चाहिए। कबीर अपनी वाणी में देव पूजा के लिए फूल-पत्तियाँ तोड़ती मालिन को शिक्षा देते हैं कि जिस पत्थर के देवता के लिए यह फूल-पत्तियाँ तोड़ रही हो, उसके हर पत्ते में जिंदगी धड़क रही है। मूर्ति निर्जीव है। इस संदर्भ में कबीर का शब्द श्री गुरुग्रंथ साहिब में, राग आसा में लिखा हुआ है—

पाती तोरै मालिनी पाती पाती जीउ।
*जिस पाहन को पाती तोरै सो पाहन निरजीउ॥ (गु.ग्र., पृ.४७९)*५

संपूर्ण पर्यावरण की चिंता कबीर के यहाँ मिलती है। वे जीव हत्या की भी निंदा करते हैं। वे कहते हैं कि जब मैं काबे का हज करने जा रहा था, वहाँ आगे से खुदा मिल गया, किंतु खुदा खुश होने की बजाय मुझ पर गुस्सा करने लगा कि मैंने तो यह हुक्म नहीं दिया कि मेरे नाम पर तू गाय की कुर्बानी दे, मैं तेरे गुनाह बख्श दूँगा।

कबीर हज काबै हउ जाइ था आगै मिलिया खुदाइ।
साँई मुझ सिउ लरि परिआ तुझै किन्हि फुरमाई गाइ॥ (गु.ग्र.,पृ. १३७५)

वे आगे कहते हैं, अगर कुर्बानी देनी ही है तो मनुष्य को दिल की पवित्रता की कुरबानी देनी चाहिए (देखें गु.ग्र., पृ.१३७५)। कबीर परमात्मा से विमुख मनुष्य से बेहतर सूअर को मानते हैं, क्योंकि वह कम-से-कम गाँव को तो साफ-सुथरा रखता है (देखें गु.ग्र., पृ.१३७२)। जनसंख्या वृद्धि के कारण मनुष्य पशुओं का आवास छीन रहा, वनों की कटाई हो रही है, वनवासियों से उनके जल-जंगल-जमीन को हथियाने की साजिशें हो रही हैं, मनुष्य में जो अधिक पाने की लालसा है; इन सबकी चिंता कबीर के यहाँ मिलती है। कबीर स्पष्ट कहते हैं कि हम मिट्टी के पुतले हैं और अपना नाम मनुष्य रख लिया है। हम यहाँ चार दिन के मेहमान हैं और अधिकाधिक जगह घेरते जा रहे हैं।

कबीर माटी के हम पूतरे मानसु राखिओ नाउ।
चारि दिवस के पाहुने बड-बड रुँधहि ठाउ॥ (गु.ग्र.,पृ. १३६७)

कबीर सचेत भी करते हैं कि जैसे मिट्टी इकट्ठी करके एक नगर बसाया जाता है वैसे ही परमात्मा ने पाँच तत्त्व इकट्ठे करके यह शरीर रचा है। यह चार दिन के लिए तो ठीक है, किंतु अंत में जिस मिट्टी का वह बना है, उसी में मिल जाएगा (फिर इतनी लालच क्यों?)।

कबीर धूरि सकेलि कै पुरिआ बाँधी देह।
दिवस चारि को पेखना अंति खेह की खेह॥ (गु.ग्र., पृ.१३७४)

कबीर को साधु-संत की कुटिया अच्छी लगती है, जबकि बेईमान मनुष्य का महल भट्ठी के समान जलता प्रतीत होता है, क्योंकि वहाँ सदैव माया, मोह, तृष्णा की आग जलती रहती है (देखें-गु.ग्र., पृ.१३६५)। कबीर माया को महा ठगनी कहते हैं, क्योंकि वह ठग-ठग कर अपनी दुकान सजाती है। वही मनुष्य ठगाने से बच सका है, जिसने इसके बारह बाँट कर दिए अर्थात् इस माया के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। (देखें गु.ग्र., पृ. १३६५) कबीर आगे कहते हैं कि परमात्मा से बिछड़कर सिर्फ माया जोड़ने से क्या लाभ, जिसने कोड़ी-कोड़ी जोड़कर करोड़ों रुपए जमा किए और उस संपत्ति का लाख खयाल रखा, पर मरते समय कुछ भी साथ नहीं चला। यहाँ तक कि उसकी लँगोट भी उतार ली गई।

कबीर कउडी कउडी जोरि कै जोरे लाख करोरि।
चलती बार न कछु मिलिओ लई लँगोटी तोरि॥ (गु.ग्र., पृ.१३७२)

कबीर के अनुसार, माया की माया से मुक्ति गुरु ज्ञान द्वारा ही संभव है। वे कहते हैं कि यह 'मानव शरीर' मानो कजली वन बन जाता है जिसमें 'मन' रूपी हाथी अपने मद में मस्त हुआ फिरता है। इस हाथी को काबू में रखने के लिए गुरु का श्रेष्ठ ज्ञान ही औजार बनता है। कोई भाग्यवान ज्ञानी ही इस ज्ञान कुंड को चला सकता है या चलाने योग्य होता है (देखें गु.ग्र., पृ. १३७६)। कबीर कहते हैं कि शरीर की रचना इसलिए हुई है कि इसमें सूरज और चंद्रमा का उदय हो, अर्थात् नम्रता व शीलता का भाव पैदा हो। यह गुण पैदा हो सकते हैं, यदि ऐसा गुरु मिल जाए, जो परमात्मा के चरणों में ले जाए। गुरु और परमात्मा के मिलन के बिना यह शरीर फिर मिट्टी-का-मिट्टी हो जाता है, अर्थात् मानव जीवन व शरीर व्यर्थ चला जाता है (देखें गु.ग्र., पृ. १३७४)। कबीर कहते हैं कि जब से मेरा 'मैं' (अहं) समाप्त हुआ है, तब से मेरे अंतर्मन को शांति व सुख का अनुभव हुआ है और मुझे अहसास हुआ है कि मेरा ईश्वर मुझे मिल गया है, मेरे मन में बस गया है, जिससे मेरी सभी ज्ञान इंद्रियाँ भी ईश्वर के ध्यान में रम गई हैं। (देखें गु.ग्र., पृ. १३६४)। कबीर के अनुसार मनुष्य को बाँस के पौधे समान ऊँचे-लंबे होने का अहंकार नहीं करना चाहिए। वह बाँस चाहे चंदन के पेड़ के आस-पास ही उगा हो, लेकिन उसमें चंदन की सुगंध नहीं आती। मनुष्य को चंदन के पौधे समान होना चाहिए, चाहे वह ढाक पलास जैसे व्यर्थ के वृक्षों से घिरा हुआ ही क्यों न हो। उसके अपने आस-पास उगे बेकार के वृक्ष भी चंदन हो जाते हैं। (देखें गु.ग्र., पृ. १३६५)कबीर कहते हैं कि इस शरीर का, जवानी का गर्व नहीं करना चाहिए, आखिरकार यह हड्डियों से लिपटा हुआ मांस ही है, जिसने भी इस शरीर का अहंकार किया, चाहे वह अमीर हो, राजा हो, जो अच्छे घोड़ों की सवारी करता हो या चाहे सिर पर छत्र झूलते हों, आखिर तो मिट्टी में ही दफन हुआ है।

कबीर गरबु न कीजीऐ चाम लपेटे हाड।
हैवर ऊपरि छत्र तर ते फुनि धरनी गाड॥ (गु.ग्र., पृ.१३६६)

कबीर मनुष्य को सचेत करते है कि अपना ऊँचा महल देखकर अहंकार नहीं करना चाहिए, यह भी चार दिन का खेल है, मृत्यु आने पर महल छोड़कर मिट्टी में मिल जाना है और फिर हमारे ऊपर घास उग आएगी। इसी क्रम में वे आगे कहते हैं कि यदि तू धनवान है तो इस धन का मान मत कर और न ही किसी कंगाल को देखकर उस पर हँस, न उसका मजाक बना। यह तेरी अपनी जीवन की नाव अभी समुद्र में है, पता नहीं क्या हो जाए? और कब यह नाव डूब जाए। कबीर साँप के कैंचुली उतारने वाली प्रवृत्ति का उदाहरण देते हुए समझाते हैं कि मनुष्य को अपने सुंदर रंगवाले शरीर का अहंकार नहीं करना चाहिए। जिस तरह सांप अपनी कैंचुली उतार देता है, थोड़े दिन में यह शरीर भी साथ छोड़ जाएगा। अर्थात् जीव और शरीर का साथ भी हमेशा का नहीं है। (देखें गु.ग्र., पृ. १३६६)। वे कहते हैं—

कबीर माइआ तजी त किआ भइया जउ मानु तजीआ नही जाइ।
मान मुनी मुनिवर गले मानु सभै कउ खाइ॥ (गु.ग्र., पृ.१३७२)

अर्थात् माया, महल आदि दौलत त्यागने से कुछ नहीं होगा, यदि अहंकार नहीं त्यागा। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि मान-अहंकार में बरबाद हो गए, यह अहंकार किसी को नहीं छोड़ता, हरेक को बरबाद कर देता है और आत्मिक जीवन खत्म हो जाता है। इसलिए कबीर समझाते हैं कि मानव जन्म बड़ी मुश्किल से मिलता है, प्रभु का नाम बिसारकर दुनिया के धंधे में फँसकर इसका मोल मत गँवा। जैसे जंगल में वृक्षों के पके फल जब जमीन पर गिर जाते हैं तो फिर वापस डाली पर नहीं लगते, वैसे ही परमात्मा से बिसरा हुआ मनुष्य कहीं का नहीं रहता है। (देखें गु.ग्र., पृ. १३६६) कबीर कहते हैं कि हे प्रभु, जो कुछ मेरे पास है (यह तन, मन, धन) इसमें कोई भी चीज ऐसी नहीं, जिसे मैं अपनी कह सकूँ। जो कुछ मेरे पास है वह सब तेरा ही दिया हुआ है। यदि तुम्हारी कृपा हो तो तेरा बख्शा हुआ, मैं तुझे भेंट कर दूँ, इससे मेरे पास से कुछ भी खर्च नहीं होगा। वे आगे कहते हैं, हे प्रभु, तेरी कृपा से हर वक्त तेरा जाप करते-करते मैं तुझमें लीन हो गया हूँ, मेरे अंदर मैं, मैं का खयाल ही नहीं रह गया है, जब से मेरे अंदर से अपने-पराए का भेद मिट गया है, तब से मैं जिधर देखता हूँ, मुझे हर तरफ तू ही तू दिखता है।

कबीर मेरा मुझ महि किछु नहीं जो किछु है सो तेरा।
तेरा तुझ कउ सउपते किअ लागै मेरा॥
कबीर तूँ तूँ करता तू हुआ मुझ महि रहा न हूँ।
जब आपा पर का मिटि गइआ जत देखउ तत तू॥ (गु.ग्र., पृ.१३७५)

गुरुनानक की तरह जिन साधु-संतों ने देश की अखंडता को बनाए रखने का प्रयत्न किया, उनमें कबीर अग्रणी श्रेणी में हैं। मनुष्यता स्थापित करना ही उन्होंने अपना परम कर्तव्य समझा। अहंकार से मुक्ति, सदाचार का पालन, मानवीय सद्भावना की स्थापना के लिए उन्होंने लोक के बीच लोक की भाषा में एक नया लोक-धर्म गढ़ने का प्रयास किया। मानवीय रिश्तों के बीच शाश्वत प्रेम को स्थापित करने का जो प्रयास कबीर ने किया, वह अद्वितीय है। डॉ. रामकुमार वर्मा लिखते हैं—"कबीर ने धर्म और जीवन में कोई भेद नहीं रहने दिया। जीवन की सात्त्विक अभिव्यक्ति ही धर्म का सोपान है, जिस धर्म के लिए जीवन की स्वाभाविक और सात्त्विक गति एवं मति में परिवर्तन करना पड़े, उसे हम धर्म की संज्ञा नहीं दे सकते।" कबीर की प्रासंगिकता के संदर्भ में सरदार अली जाफरी

लिखते हैं, "हमें आज भी कबीर के नेतृत्व की जरूरत है, उस रौशनी की जरूरत है, जो इस संत के दिल से पैदा हुई थी। आज दुनिया आजाद हो रही है। विज्ञान की असाधारण प्रगति ने मनुष्य का प्रभुत्व बढ़ा दिया है। उद्योगों ने उसके बाहुबल में वृद्धि कर दी है। मनुष्य सितारों पर कमंदें फेंक रहा है। फिर भी वह तुच्छ है, संकटग्रस्त है दुखी है। वह रंगों में बँटा हुआ है, जातियों में विभाजित है। उसके बीच धर्मों की दीवारें खड़ी हैं। सांप्रदायिक द्वेष है, वर्ग-संघर्ष की तलवारें खिची हैं।"

कोरोना महामारी के इस दौर में सृष्टि की सर्वश्रेष्ठता और उसके सामने मनुष्य की बेचारगी, उसकी तुच्छता सर्वमान्य है। सृष्टि के नियमों के विरुद्ध जाना और मनुष्य का अधिकाधिक पाने की लालसा ही उसके विनाश का मूल कारण बनता है। इससे बचने का एकमात्र उपाय है, कबीर जैसे महान् संतों की जीवन पद्धति के अनुरूप अपनी व्यष्टि को समष्टि में विलीन करने की, भारतीय संस्कृति और दर्शन के अनुरूप उदार चरितानाम तु वसुधैव कुटुंबकम् को धारने की। कबीर भले ही हमारे मध्य नहीं है किंतु अपने कबीरत्व द्वारा हमारे मध्य सदैव रहेंगे। कबीर की समष्टि चेतना को रेखांकित करते हुए रवींद्रनाथ ठाकुर ने कहा है, "भारत के मध्य युग में जब कबीर, दादू प्रभृति साधु संतों का आविर्भाव हुआ था, तब भारत के लिए सुख का दिन नहीं था, किंतु ऐसे संकट के समय में भी उन्होंने मनुष्य के भेद की अपेक्षा ऐक्य को ही सत्यरूप में देखा था।"

कोरोना महामारी के इस दौर में सृष्टि की सर्वश्रेष्ठता और उसके सामने मनुष्य की बेचारगी, उसकी तुच्छता सर्वमान्य है। सृष्टि के नियमों के विरुद्ध जाना और मनुष्य का अधिकाधिक पाने की लालसा ही उसके विनाश का मूल कारण बनता है। इससे बचने का एकमात्र उपाय है, कबीर जैसे महान् संतों की जीवन पद्धति के अनुरूप अपनी व्यष्टि को समष्टि में विलीन करने की, भारतीय संस्कृति और दर्शन के अनुरूप उदार चरितानाम तु वसुधैव कुटुंबकम् को धारने की। कबीर भले ही हमारे मध्य नहीं है किंतु अपने कबीरत्व द्वारा हमारे मध्य सदैव रहेंगे।

आधुनिक मनुष्य स्वनिर्मित वायरस, यंत्रों आदि द्वारा अपने जीवन को सुखी नहीं बना रहा बल्कि संपूर्ण विश्व के अस्तित्व को मिटाने की सामग्री जुटा रहा है। इस आधुनिकता से तो पुरातनता भली, क्योंकि अगर विश्व ही नहीं बचेगा तो इस आधुनिकता का उपभोग कौन करेगा? इस 'विकास' और 'प्रगति' ने केवल मूल्यांधता को ही बढ़ावा दिया है और सृष्टि को विनाश के कगार पर ला खड़ा कर दिया है। मानव-संस्कृति और मानव-चिंतन को भीतर से रुग्ण बना दिया है। इससे केवल संघर्ष और तनाव ही बढ़ा है, निराशा और कुंठा ही उपजी है। ऐसे में गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित कबीर-वाणी का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। उनके कहे को आचरण में उतारकर ही आत्मिक शांति पाई जा सकती है। भारतीय संस्कृति का हर पहलू कबीर के यहाँ विद्यमान है, चाहे 'एकोहं बहुस्याम' की बात हो अथवा 'रूपं-रूपं प्रतिरूपं' की या 'वसुधैव कुटुंबकम्' की। कबीर जब 'अवलि अलह नूरु उपाइया कुदरत के सभ बंदे। ऐक नूर ते सभु जग उपजिआ कउन भले को मंदे॥'(देखें गु.ग्र., पृ. १३४९) कहते हैं तो उसके मूल में मानवीय जाति के बीच आत्मीयता स्थापित करने का भाव दृष्टिगत होता है। अपने विचारों की महानता के कारण कबीर सदैव याद किए जाएँगे।

बमनडिहा, डाकघर के पास
पो.-संदरचक, जिला-बर्दमान-७१३३६० (प. बंगाल)
दूरभाष : ८४३६७९८२८२

सरस्वती वंदना

कविता

• बालकृष्ण गर्ग

ज्ञान दे, अज्ञान का तू तिमिर हर ले, माँ सरस्वती,
मुग्ध हो जाए चराचर, मधुर स्वर दे, माँ सरस्वती!
सत्य-शिव-सुंदर सृजन का हमें वर दे, माँ सरस्वती,
भूल हो जाए कदाचित्, क्षमा कर दे, माँ सरस्वती!

हित-सहित साहित्य हो, संगीत की ऐसी कला, माँ
अर्थ जीवन को मिले, पा जाएँ सब अपना सिला, माँ!
भव्य भावों से भरा मन, तन-बदन में नवल-स्पंदन,
बुद्धि ऐसी कर प्रकाशित, बने जिससे दिव्य जीवन।

चंद्रवदना, शुभ्रवसना, श्वेत पद्मासना, माता!
सर्व-विद्या-कला-दात्री, भक्त तेरे गीत गाता,
हंसवाहिनी, वाद्य-वीणा वादिनी, हे माँ सरस्वती
मूढ़ता-जड़ता-प्रमाद विनाशिनी, हे माँ सरस्वती!

ए-३०८, संस्कृति विहार, गौड़ सिटी-२,
ग्रेटर नोएडा-२०१००९ (पश्चिम)
दूरभाष : ०८४३९३३६८९३

सखा धर्ममय अस रथ जाके

• श्यामसुंदर दुबे

सुपरिचित कवि-लेखक-निबंधकार। दो उपन्यास, तीन ललित निबंध-संग्रह, तीन नवगीत-संग्रह, दो लोकसाहित्य, एक कहानी-संग्रह, एक समसामयिक निबंध-संग्रह प्रकाशित। 'बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' पुरस्कार', 'वागीश्वरी पुरस्कार', 'श्रेष्ठ कला आचार्य सम्मान' सहित अनेक पुरस्कारों एवं सम्मानों से सम्मानित।

बचपन से एक दोहा सुनता आ रहा हूँ—'धीरे-धीरे रे मना धीरे सब कछु होय। माली सींचे सौ घड़ा रितु आए फल होय।' अधीर मत होइए, धैर्य रखिए, सब काम अपने समयानुसार ही होते हैं। प्रतीक्षा करना सीखें। उतावली न पालें। यह एक तरह का यथास्थितिवाद है। लेकिन यह जो मनुष्य है द्विपदी, इसकी दृष्टि ऊपर की ओर है—सुषुम्ना एकदम सीधी है—बाँहें आकाश की ओर उठी हैं। इसके भीतर एक त्वरा है, एक आवेग है, जड़ता की यथास्थिति को भंजित करने की एकदम वृक्ष की तरह, वृक्ष को उद्भिज संज्ञा दी गई है। धरती के गुरुत्वाकर्षण को भेदता बीज ऊपर की ओर अंकुर बनकर उठता और वृक्ष बनकर उन्नत शीर्ष होकर फैलता है किंतु वह स्थिर है। मनुष्य ने वृक्ष जैसी उद्भिज शक्ति तो पाई, वह भी गुरुत्वाकरर्षण परिधि को लाँघने की इच्छा से ग्रस्त हुआ, एक ओर आकांक्षा उसके भीतर से उठी होगी बेतहासा दौड़ लगाने की! शिकार करते हुए शेर, चीता, हिरण के पीछे उनकी गति से भागने की। उसने अपने पैरों की ओर देखा होगा। गति की एक सीमा तक उसके पैर भाग सकते थे, उसके आगे नहीं। उसे स्थिर चीजों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने में दिक्कत पेश आ रही थी। शिलाखंड को एक निश्चित वजन के अनुभाव में इधर से उधर वह कर सकता था। फिर उसने जुगत भिड़ाई और चट्टानों को गोल शिलाखंडों को लुढ़काना शुरू किया। जड़त्व को गति में बदलकर उसने चक्र की खोज की, अब उसके पाँव चक्र का आश्रय लेकर सीमित समय में अधिक दूरी नापने लगे—यह अग्नि के बाद का सबसे बड़ा आविष्कार था।

इस गति ने मनुष्य को न जाने कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया। उसने रथों का निर्माण किया। रथ पर बैठकर वह अश्व शक्ति से दौड़ने लगा। रथ के प्रति वह अतिरिक्त सम्मोहित हुआ—उसकी सृजनक्षम मेधा ने रथ के अनेक रूपक गढ़े। रथ को उसने अपने भीतर उतार लिया। वैदिक ऋषि की कल्पना का रथ हम मन के शिव संकल्प में अनुभव कर सकते हैं—तन्मे मन: शिव संकल्पअसी की छह ऋचाओं में अंतिम दो ऋचाओं में रथ का रूपक है। पहले ऋषि रथ के चक्र की चर्चा करता है। साम, ऋक यजु: वेदों के तीन अरों वाला यह चक्र है। चक्र का प्रवर्तन ऊर्जा चाहता है। ऊर्जा ही गति में परिणत होती है। ज्ञान की ऊर्जा ने ही मनुष्य को विकास के सोपानों पर गतिशील होने की सामर्थ्य दी है। वह यह भी जानता था कि ऊर्जा का प्रबलतम आवेग गति को कुपथगामी भी बना सकता है। इसलिए इसके नियंत्रण के लिए मन का सारथी जरूरी है। दस इंद्रियाँ ही घोड़े हैं और मन इनकी वल्गा थामने वाला सारथी है। मन अत्यंत गतिशील है—चंचल है, फिर भी ऋषि ने इसे सारथी बनाया। उसके वश में सभी इंद्रियाँ हैं। मन की एक बड़ी विशेषता यह है कि वह स्वयं भोंकना भाव से निरपेक्ष होना भी जानता और यह तभी संभव है, जब उसमें शिव संकल्प जाग्रत् हो। इस स्थिति में ही वह इंद्रियों से अधिक शक्तिशाली बनकर उनकी वल्गाएँ कस सकता है, अन्यथा मन भोगासक्त होकर इन पर अपना नियंत्रण खो सकता है। मन के इस दुहरे आचरण का उल्लेख गीता में भी है—मन ऐव मनुष्यागां कारणं बन्ध मोक्षयो: मन ही मनुष्य के बंधन और मोक्ष का कारण है।

मन के वश में इंद्रियाँ तभी होती हैं, जब मन भोक्ता के रूप को त्याग दे। मैं अपने गाँव में अकसर बैलगाड़ी से यात्राएँ करता था। उसको हाँकने वाला भोक्ता भाव से रहित था। वह जानता था कि वह केवल गाड़ीवान है—उसके लाभ-अलाभ से एकदम अलग। बैल उसके बस में थे। रात में वह हँकनी लिये गाड़ी हाँकता जरूर था, किंतु कभी-कभी वह सो भी जाता था। उसके सोते रहने पर भी बैल विपथित नहीं होते थे। वे गाड़ी का संतुलन नहीं बिगाड़ते थे। बैल उसके सोते-जागते सभी स्थितियों में वशवर्ती थे। इस तरह का गाड़ीवान बनना आसान नहीं है—ऐसा बनते-

बनते बना जाता है। ऐसा मन ही शिव संकल्प का आधार लेकर इंद्रियों के अश्वों की वल्गाएँ कुशलतापूर्वक साध सकता है—

सुसारथिश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभी शुभिर्वाजिन इव।
हत्प्रतिष्ठं यदजिर जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमसा॥

"सारथी रथ की कुशल वल्गा लिये। नियंत्रित गतिशील कर ज्यों अश्वदल। अथक द्रुम जो। प्राणियों के हृदय स्थित। वही मेरा मन। सदा शिव संकल्पकारी हो।"

रथ का यह रूपक यजुर्वेद का है। ऋग्वेद का परवर्ती वेद है—यजुर्वेद! ऋग्वेद में अश्विनी कुमारों द्वारा भूमि के परिमापन का उल्लेख है। उनके पास जो रथ है—वह बिना घोड़ों का है। लगता है कि यह स्लेज जैसा कोई वाहन है। यह वाहन बिना चक्र के सरकता है। चक्र के आविष्कार के पहले की यह रथ-धारणा हो सकती है। उनके पास नौका बनाने की भी कला थी, जो जल और हवा में एक समान चल सकती है। हो सकता है, गतिशील होने की यह टेक्नोलॉजी चक्र रहित वाहन को घसीटकर चलाने की रही हो। चक्रीय गति ने मनुष्य की कल्पना को भी बेहद उत्क्रमिणी बनाया। उसने आकाश में चलते ज्वलित सूर्यपिंड को देखा। यह पिंड अलस्सुबह अपनी यात्रा प्रारंभ करता है और संध्या के समापन में अपनी यात्रा को विराम देता है। पूर्व से पश्चिम के इस यात्रा पथ को आकाशीय ऊँचाई में सूर्य अपनी गति से नाप लेता है। अब वह पैदल-पैदल तो चलता नहीं होगा। उसके पाँव दर्द देने लगते होंगे, लेकिन वह कहीं विश्राम नहीं करता है, किसी छाया के नीचे बैठकर सुस्ताता नहीं है। तब निश्चित ही वह किसी वाहन का सहारा लेता है। मनुष्य ने उसके वाहन की कल्पना की। इस कल्पना में महत्त्वपूर्ण यह है कि सूर्य का रथ एक चक्री है। धरती का यह यथार्थ आकाश की कल्पना में पहुँचकर रथ के विकास की कथा ही कहता है। रथ अपनी आदिम अवस्था में हो सकता है—एक चक्री ही रहा हो। स्लेज से उठकर यह रथीय संरचना एक चक्र पर आधारित रही होगी। सूर्य एक चक्र वाले वाहन पर यात्रा करता है। उसके इस रथ में सात घोड़े जुटे हैं। ये घोड़े सात रंग की किरणों की धारणा से प्रभावित प्रतीत होते हैं। बाद में ये सप्ताह के सात दिन भी बन गए। एक विचित्र कल्पना-विधान यह भी है कि सूर्य का सारथी अरुण न्यून अंग है। क्या यह रथी के पराक्रम साहस और अनथक उपोग को प्रकाशित करने वाला प्रसंग है। इस रूप में कि अनेक अवरोधों के बाद भी सूर्य अपनी यात्रा नहीं रोकता।

मनुष्य की फितरत पैसा है और पैसा ने मनुष्य को जानवर बना दिया। इसी के आधार पर मनुष्य ने मनुष्य को रथ में जोत दिया। गुलामों को अपने रथ में अश्व बनाकर उन पर कोड़े बरसाने वालों की कमी नहीं रही। कलकत्ता में यंत्र रथ रिक्शा को खींचने वाले अभी भी मिल जाएँगे। निराला कवि की कविता पंक्ति है–'मानव जहाँ बैल-घोड़ा है।' वैसे भी हमारे देश के प्रजातंत्र की बग्घी को खींचने वाले यही बैल-घोड़ा बनाए गए लोग हैं–और इस बग्घी पर सवार हैं–सत्ता-स्वार्थ से चिपके वे सभी, जो अट्सलिकाओं में रहकर इन बैल-घोड़ों को चना-चबैना देकर इन्हें जिंदा बनाए रखते हैं। रथ ने क्या-क्या नहीं दिखाया? रथ युद्ध है, रथ उत्सव है और रथ अध्यात्म भी है।

दिन का सतत यात्रिक है—सूर्य, रात्रि का सतत चलने वाला पथिक है-चंद्र! फर्क बस इतना है कि चंद्रमा घटता-बढ़ता है। यह कुछ-कुछ आदिम व्यक्ति को अचरज भरा कारनामा लगा होगा। यद्यपि अचरज के लिए तो हर तरफ गुंजाइश थी, किंतु रात में चाँद को देखने का उस शून्य-सपाटे में आकाश के विस्तार में इस पीलाभ गोलक को देखतना और उसकी चाँदनी में लिपटते हुए चंद्र के विषय में कल्पना के घोड़े दौड़ाना सहज था। सूर्य की तुलना में चंद्र तो हलका-फुलका है। अपने प्रकाश में शीतल-शीतल, असृण और तिलिस्म निर्मित करने वाला है। भला वह कैसे पाँव-पाँव चल सकता है। उसे भी रथ की व्यवस्था की गई। उसका रथ द्विचक्री है। रथ का पूर्ण विकसित स्वरूप! लेकिन यहाँ कल्पना ने एक कुलाँच मारी और चंद्रमा के रथ में जोत दिए हिरण! चंद्रमा का रथ हिरण ही क्यों खींचते हैं? हिरण घोड़े से तो कम शक्तिशाली हैं—यदि घोड़े जुतते तो जब पुष्प-कलिका जैसा चंद्रमा बचता है, तब तो घोड़े बहुत उलट-फेर कर देते, छोटे वजन को बड़ा हार्स पावर तो खतरा ही खतरा है। हिरण से यह खतरा तो नहीं।

फिर चंद्रमा अकसर नायिका के सुंदर मुख का उपमान बनता है—तो हिरण की आँख, कजरारी आँखों को मात करने वाली ही है। मुख और आँख की जोड़ी मिल गई। कौन जाने चंद्रमा के रथ में जुते हिरण चाँदनी रातों में प्रेमी जोडों के हृदयों में कितनी छलाँगें लगाते होंगे? बिरह में बिसूरती सूरदास की गोपियाँ तो अपनी वीणा-वादिनी सखी को वीणा-वादन करने से बरजती हैं—वे कहती हैं, "दूर करहु वीणा कर धरनो।" सनाका खींचती इस चाँदनी रात में वीणा का सुर चंद्रमा तक पहुँच ही रहा है। यदि उसके रथ में जुते हिरण ऐसे हिरण, जो बेहद संगीत प्रेमी है, वीणा का सुर सुनकर मस्त होकर स्थिर हो गए तो गोपियों की जान पर आफत आ जाएगी। चंद्रमा नहीं चल पाएगा, स्थिर हो जाएगा। यह स्थिर चंद्रमा मंरणांतक विरह संताप जाएगा। सूरदास की कल्पना दृष्टि को मानना पड़ेगा। चंद्रमा, हिरण और रथ का कैसा रूपक बाँधा? चंद्रमा के रथ में हिरण जोतने वालों ने भी ऐसा कभी नहीं सोचा होगा?

इतिहास के राजपथ पर और लोक-स्मृतियों की पगडंडियों पर रथ के आकार-प्रकार के अनेक उपाख्यानों की चक्र-रेखाएँ विद्यमान हैं। न जाने कितनी गाड़ियों के रूपों में रथ की आकृतियों को अंतर्निहित पाया गया है। रथ बदले, रथी बदले, सारथी बदले और रथ में जुटने वाले रथवाह बदले। मनुष्य के शातिर दिमाग ने न जाने कितने प्राणियों को

रथवाह बनाया है। बैल, घोड़ा, भैंसा, ऊँट, गधा, खच्चर और जो भी सामने आ गया। कुत्ता, बकरा सबसे उसने अपना रथ खिंचवाना है। मनुष्य की फितरत पैसा है और पैसा ने मनुष्य को जानवर बना दिया। इसी के आधार पर मनुष्य ने मनुष्य को रथ में जोत दिया। गुलामों को अपने रथ में अश्व बनाकर उन पर कोड़े बरसाने वालों की कमी नहीं रही। कलकत्ता में यंत्र रथ रिक्शा को खींचने वाले अभी भी मिल जाएँगे। निराला कवि की कविता पंक्ति है—'मानव जहाँ बैल-घोड़ा है।' वैसे भी हमारे देश के प्रजातंत्र की बग्घी को खींचने वाले यही बैल-घोड़ा बनाए गए लोग हैं—और इस बग्धी पर सवार हैं—सत्ता-स्वार्थ से चिपके वे सभी, जो अट्सलिकाओं में रहकर इन बैल-घोड़ों को चना-चबैना देकर इन्हें जिंदा बनाए रखते हैं। रथ ने क्या-क्या नहीं दिखाया ? रथ युद्ध है, रथ उत्सव है और रथ अध्यात्म भी है।

राम-रावण का युद्ध प्रारंभ ही हुआ था कि विभीषण के मन में गहरा विषाद जाग उठा। 'रावण रथी विरथ रघुवीरा।' रावण रथ पर सवार है और राम रथहीन हैं। राम कैसे युद्ध करेंगे—यह भाव विभिषण के हृदय में ही नहीं आया, बल्कि उन्होंने राम के सामने इसे प्रकट भी कर दिया। राम ने विभीषण का समर्थन नहीं किया। उन्होंने एक रथ-रूपक विभीषण के सामने रख दिया। यह रथ रूपक व्यक्ति के पुरुषार्थ-प्रसंग को प्रकट करता है। रथ को जहाँ भी जिस रूप में अभिव्यक्त किया गया हो, किंतु राम द्वारा विवेचित यह 'विजय रथ' अप्रतिम है। राम जिस रथ की चर्चा कर रहे हैं। वह संसार के स्तर पर नित्य चलने वाले महासमर पर विजय प्राप्त करने का माध्यम है—रणभूमि में खड़े राम ने जिस रथ को आकल्पित किया है, वह धर्मरथ भी है। एक तरह से राम-रावण का युद्ध धर्म और अधर्म का संघर्ष है, इसलिए इस रथ की कल्पना में व्यक्ति के भीतर निहित आंतरिक शक्तियों का संतुलन और समन्वय है। इसी शक्ति-संधान के आधार पर बाह्य आयुधों की अचूक मारक क्षमताओं का प्रयोग संभव होता है। जीवन ही जैसे यह रथ है। शौर्य और धैर्य जैसे गुण इस रथ के दो चक्र हैं। यह आनुपूरिकता है, समन्वय है। धैर्य रहित शौर्य आपराधिक श्रेणी में आता है। इस रथ की पहचान देने वाले पताका और ध्वज सत्य व शील हैं। आचरण रहित सत्य खतरनाक होता है। आत्मघाती होता है, इसलिए सत्य के साथ शील की दृढ़ता आवश्यक है। धर्म के साक्षात् अवतार युधिष्ठिर को अर्धसत्य का सहारा लेने पर उसके दुष्परिणाम भोगने पड़े थे। जो रथ चक्र दृढ़तापूर्वक पृथ्वी में धँसकर चलता था, चार उँगली ऊपर चलने लगा था। इस रथ में जुते हुए चार अश्व हैं। बल, विवेक, दम और परिहत जैसे गुण ही अश्व हैं। बल के साथ विवेक शक्ति के संतुलन को प्रदर्शित कर रहा है। आत्म-निग्रह के साथ परहित को जोड़कर आत्म-प्रसार के अवसर सुलभ होते हैं—ये दोनों साथ-साथ हैं। रथ का वेग, रथ की दशा-दिशा इन पर ही निर्भर है। अब उन गुणों की चर्चा राम करते हैं, जिनसे युद्ध के संहारक स्वरूप में भी लोक-कल्याण की भावना निहित है। क्षमा, कृपा और समता के भाव की रस्सी या लगाम ही सारथी और घोडों के संबंध की नियामक शक्ति-तंत्र है। यह युद्ध पर शांति की विजय का जयघोष है। ईश्वर का स्मरण ही सुजान सारथी हो सकता है। कविवर तुलसीदास की अद्भुत काव्य क्षमता का परिचय देने वाली यह रथ की आकल्पना शाश्वत है। यह जीवन से पलायन नहीं है। यह द्वंद्व मुक्ति का अभियान है। आज जब तनिक सी असफलताओं से लोग आत्म-हंता हो रहे हैं, तब यह रथ उन्हें आश्वस्त करता है कि विजय होगी, अवश्य होगी, यह आत्म विश्वास का रथ है। तुलसी के शब्दों में, "सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा-पताका। बल विवेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे। ईस भजनु सारथी सुजाना···।" इस रथ की फल श्रुति है—"महा अजय संसार रिपु जीति सकई सो धीर। जाके अस रथ होई दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर।"

यजुर्वेद के तन्मे मन: शिव संकल्पमस्तु में मन को जो सारथी का रूपक दिया था—कविवर तुलसीदास अपने इस रथ के सांग रूपक में उसे जैसे विस्तार देते हैं—उनका सुजान सारथी जिस रथ पर सवार है, वह शाश्वत और सार्थक रथ है। रथ-चिंतन के ये सभी प्रसंग हमारे लौकिक और पारलौकिक आशयों के सहज साक्षी हैं।

श्री चंडी जी वार्ड, हटा,
दमोह-४७०७७५ (म.प्र.)
दूरभाष : ०९९७७४२१६२९

नवगति, नवलय

युवा लेखन को प्रोत्साहित करने और उनकी रचनात्मकता को एक बड़े पाठक वर्ग तक पहुँचाने के लिए 'साहित्य अमृत' सदैव प्रयासरत रहा है। पहले 'नवांकुर' स्तंभ के माध्यम से युवा रचनाकारों की रचनाएँ पत्रिका में प्रकाशित होकर लोकप्रिय हुईं। अब हम पुनः 'नवगति, नवलय' स्तंभ के अंतर्गत युवा कवि/लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित किया करेंगे। पच्चीस वर्ष तक की आयु के रचनाकार अपनी रचनाएँ विचारार्थ भेज सकते हैं। रचना के साथ जन्मतिथि प्रमाण-पत्र, पासपोर्ट आकार का फोटो व पूरा पता अवश्य भेजें।

बसंत

• कर्नल प्रवीण त्रिपाठी

काव्य की सभी विधाओं एवं बाल रचनाओं के संवर्धन में प्रयासरत। साथ ही व्यंग्य एवं आलेख लेखन में रुचि। रचनाएँ व आलेख देश के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। चार दशक से भारतीय सेना में सेवारत।

(रोला छंद में)

सुरभित आज बसंत, फूल अरु भँवरे झूमें।
खुशियाँ मिलीं अनंत, हुलस तरुवर पग चूमें॥

पवन बहे अति मंद, सभी के मन को भाए।
पीने को मकरंद, भृमर दल लेकर आए॥

रंग-बिरंगे फूल, छटा ऐसी कुछ बिखरी।
मौसम के अनुकूल, छेड़ते खग स्वर लहरी॥

फागुन में मदमस्त, नशा रंगों का छाए।
भंग न करती पस्त, नशा दुगुना हो जाए॥

रास-रंग का जोर, चले फागुनिया ऋतु में।
मन होता बरजोर, गोपियों की संगत में॥

टेसू और पलाश, बिखरें छटा सुहानी।
मानो वन में आग, जिसे है अभी बुझानी॥

चहुँदिशि उड़े गुलाल, करे मौसम रंगीला।
रँग में रँगे कपाल, दिखे हर व्यक्ति सजीला॥

ऋतु करती श्रृंगार, सजा कर वन अरु उपवन।
'काम' करे व्यापार, बना मधुमासी तन-मन॥

जल संचय

(कुंडलिया छंद में)

हम सब का दायित्व है, सदा बचाएँ नीर।
बरबादी जल की कभी, देगी सब को पीर।
देगी सबको पीर, बूँद को सब तरसेंगे।
होगा कहीं अकाल, कहीं जमकर बरसेंगे।
जाग्रत करें समाज, सुधारें आदत को अब।
शपथ उठाएँ आज, बचाएँ पानी हम सब॥

जल के सारे स्रोत का, संरक्षण हो आज।
व्यर्थ न हो अब बूँद भी, जाग्रत बने समाज।
जाग्रत बने समाज, खोजकर नए तरीके।
संग्रह के हम आज, सीख लें नए सलीके।
अति दोहन को रोक, सुरक्षित कर लें अब कल।
सर्व शक्ति दें झोंक, बचाने में हम मृदु जल॥

बिगड़ा है जल संतुलन, सकल जगत् में आज।
जलप्लावन दुर्भिक्ष से, पीड़ित सर्व समाज।
पीड़ित सर्व समाज, नहीं हम चेते अब तक।
धरती है नाराज, सहे जल दोहन कब तक।
गहन लगाकर पेड़, मिटाएँ सारा झगड़ा।
बदलें हम परिवेश नहीं अब भी कुछ बिगड़ा॥

जल संचय के कुछ नए, खोजें आज उपाय।
व्यर्थ बहे अब जल नहीं, जो वर्षा संग आय।
जो वर्षा संग आय, समाए धरती भीतर।
नहीं व्यर्थ हो जाए, करें उपयोग सँभलकर।
संचित हो हर बूँद, सुधारे संतति का कल।
रखें न आँखें मूँद, करें संरक्षित सब जल॥

टावर ए-९, फ्लैट-१५०५,
क्लासिक अपार्टमेंटस,
जेपी विशटाउन, सेक्टर-१३४,
नोएडा-२०१३०४, गौतमबुद्धनगर (उ.प्र.)
दूरभाष : ७५९७०४६६८९

मुलाकात

मूल : **गिरीश भट्ट**

अनुवाद : **शिवचरण मंत्री**

अलीबक्स के पदचिह्नों का अनकुरण करते हुए वह एक अनजाने मार्ग पर चला जा रहा था। उसी नगर का होते हुए भी वह इस मार्ग से एकदम अनजान था। एक प्यास उसे इस ओर खिंच लाई थी।

वैसे तो वह रोज शाम को बाग में अलीबक्स से मिल ही जाया करता था। उससे कई प्रकार की बातें होती थीं, वर्तमान की। चंद्रवदन को यह नन्हीं उम्र का मित्र पसंद आ गया था। वैसे अलीबक्स एक भला आदमी था। उसकी चर्चा में गहनता और यदाकदा सूफीवाद की झलक दिखाई देती थी।

अपने इस नन्हे मित्र से चंद्रवदन ने दिल खोलकर बातें की थीं। वैसे दिल खोलने को दिल वाला चाहिए, और उसे ऐसा व्यक्ति अलीबक्स मिल गया। उसके सामने मानचित्र की तरह दिल खोल दिया था। लाहौर में चार साल बिताने की विस्तृत जानकारी दे दी थी। यह सत्रह से इक्कीस वर्ष की आयु का समय था; ज्ञान विकास का समय था और था अठारह की शारदा से मिलने का रोमांस—चंद्रवदन ने सबकुछ कहा था। अंतत: कहा, अलीबक्स सबकुछ चला गया लाहौर, दलसुखभाई का फिल्मी स्टूडियो और शारदा। सब कुछ एक ही झटके में चला गया, देश का विभाजन हुआ और सब कुछ छिन्न-भिन्न हो गया।

एक दिन शाम के समय अलीबक्स ने समाचार दिया अपने चाचा-चाची के लाहौर से आने का और कहा, 'क्या आपको मिलना है? सलीम चाचा लाहौर के एक रईस हैं।'

यह सुनकर वह खुशी से उछल पड़ा, 'अलीबक्स, मुझे ले चल। मुझे ले चल। मुझे उनसे मिलना ही है।'

अलीबक्स ने उसकी आँखों में प्यास देखी। एक क्षण सोचा, क्या आकर्षण होगा चंद्रबदन को—इस ईंट, पत्थर, सीमेंट के बने नगर के प्रति। संभव है, उसे उस युवती के बारे में ज्ञात करना हो, पर ऐसा सोचना निरी मूर्खता ही है। निराशा ही मिलने वाली है। उसका यह प्रयास घास के ढेर में सुई ढूढ़ने सा ही होगा।

मुकाम आ गया। नीची छत का घर। दालान, जालीदार दरवाजा और एक आयताकार मकान। बैठक में गद्दे, तकिए, दूसरी ओर एक कोने में रेडियो पड़ा था, दीवार पर काबा का फोटू टँगा था, लोबान की मंद सुगंध महक रही थी, दालान के छोर पर बाँस की तिलियों का चिकना परदा लगा था। परदा लगभग अर्धपादर्थक था। हवा चलने के साथ ही तीलियों की खनखनाहट पैदा हो जाती थी।

एकदम खयाल आया, परदे की पीछे जनान खाने का। अब तक तो सुना ही सुना था, आज उसने प्रत्यक्ष रूप से जनानखाना देखा था। मन में विचार आया, परदे के पीछे कौन होगी? उत्तर मिला, अलीबक्स के परिवार की औरतें होंगी? जो किसी मर्द के आते ही परदे की ओट में हो जाती थीं, पर परदे के पीछे चहल-पहल थी और वह एक अनजान पुरुष था।

'आइए जनाब—आप लाहौर में कब रहें?' प्रश्न की गूँज कानों में पड़ते ही चंद्रवदन वर्तमान में आ गया और एक मंद मुसकान के साथ मुख मंडल पर मानो सारा शहर फैल गया।

'उस समय में मैं अठारह-उन्नीस वर्ष का था।' बात की शुरुआत हुई।

'मूल फिल्म के स्टूडियो के मालिक दलसुखभाई ने मुझे बुलवाया था। उस समय लाहौर शहर मात्र भूगोल की पुस्तकों में ही था। पर रावी नदी यथावत् थी। इसके बाद चंद्रवदन ने जेब में पड़ा लाहौर का पुराना नक्शा निकाला और साइकिल की तरह उँगली नक्शे पर फिरने लगी। किसी समय मैं इस शहर में साइकिल से बहुत घूमा हूँ। मालिक द्वारा दी साइकिल से स्टूडियो से घर और घर से स्टूडियो घूमा करता था।

इस स्टूडियो के बारे में कई बातें हुई। सलीम ने बात में हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा, 'जनाब, इस समय लाहौर में ऐसे चार स्टूडियो इसके आस-पास हैं।'

बात का सिलसिला बदला, 'जनाब, मैं गुजराती जानता हूँ। एक गुजराती अखबार भी निकलता है।' इससे चंद्रवदन को अपनी बात कहने

में सरलता हो गई।

देखिए, सलीम भाई, यह रामगढ़ का विस्तार। यहाँ एक तीन मंजिला मकान था। तीसरी मंजिल पर मेरा कोटड़ी थी। यहाँ की खिड़की से देखने पर नीचे का सारा दृश्य स्पष्ट दिखाई देता था, नीची छतों के छोटे-छोटे मकान, विशाल कोठियाँ, फोर्ड गाड़ियाँ, जीपें और एक तोप। शाम को यहाँ सिंधियों का बैंड बजता था, जिसे सुनने का भीड़ जमा हो जाती थी। हर रविवार को चर्च में सुबह नगाड़े बजते थे, पास के कच्छी स्कूल में नित्य प्रार्थना होती थी; लोंगलिव दी क्वीन···, उसने यह सब एक ही साँस में कह दिया।

अलीबक्स के लिए ये सब बातें कोई नई नहीं थीं। संभवत: उसे मेहमान का स्वागत करने का ध्यान आया और इसकी तैयारी के लिए उसने धीरे से चिक उठाई और अंदर घुस गया। क्योंकि चंद्रवदन पहली ही बार घर पर आया था। फिर स्टूडियो की चर्चा। क्या वैमन था? सलीम मियाँ, मुझे अशोक कुमार, लीला चटनीस, नूरजहाँ, याकूब मियाँ आदि सभी पहचानते थे। मैं ही इस सबको वेतन देता था। चंद्रवदन के स्वर में एक नया उत्साह दिखाई दे रहा था।

अंतत: अलीबक्स परदे में शरबत के दो गिलास लेकर लौटा तो सारा वातावरण गुलाब की भीनी सुगंध से महक उठा।

उसे शारदा ने ये सभी बातें विस्तार से बताई थीं। उन लोगों का घर एकदम सामने ही था। जब वह आता था तो वह दरवाजे पर खड़ी रहती थी। फिल्मों के विषय में जानने की बड़ी उत्कंठा होती थी। चंद्रवदन ने उसे स्टूडियो दिखलाने का वायदा किया था। शूटिंग से लेकर मैकअप, नायक-नायिका, कैमरामैन, सेट आदि सब कुछ।

'शारदा, यह नगरी बड़ी अजब है। मेरे ऑफिस की अलमारी में दस-दस रुपयों के नोटों के बंडल रहते हैं और राणी छाप सिक्कों की थैलियाँ।' चंद्रवदन अपने रुपए का बखान करता था।

'शारदा! मैं सभी को वेतन का भुगतान करता हूँ और उनके रजिस्टर में हस्ताक्षर करवाता हूँ। पता है, अशोक कुमार हाथ में सिगरेट लिये कह रहा था, 'चंद्रवदन तू बड़े काम का लड़का है।'

लड़की यह सुनकर बाग-बाग हो जाती। विस्मय होता, शरम आती और उसके मुख पर असीम आनंद झलक उठता।

परिवार में मात्र तीन प्राणी—भद्रा पतिपरायण सादी गृहणी और नरहरि बाबू अंग्रेज शिष्टाचारी। नायाब तहसीलदार पर छोटा पर अभिमान भारी। यदाकदा सरकारी वाहन घर छोड़ने आता तो जमीन पर पाँव रखते ही दूर खड़े व्यक्ति सुनें, इतनी तेज आवाज में ड्राइवर को हिदायतें देते रहते। नरहरि बाबू दृढ़ता से कहते थे, 'चंद्रवदन, अंग्रेज इस देश को छोड़कर कभी नहीं जाएँगे और इसी में हमारी भलाई है। हमें भला राज करना कहाँ आता है?'

वह लाहौर के भीड़ वाले रास्तों पर बहुत घूमा था। पुराना बाजार, बड़ा मार्केट, बिलावल मस्जिद, सदर बाजार, सदर चौक, माता का मठ—सभी जगह घूमा था अपनी रुपहली साइकिल उसने शारदा को कहा था, 'तूझे एक बार साइकिल पर स्टूडियो चलना है। क्या तुझे अच्छा लगेगा?'

और वह यह सुनकर शर्म से लाल हो जाती थी। क्या कोई लड़की इस तरह लाहौर के बाजार में निकली है? हाँ, अंग्रेज मेम साइकिलों पर जरूर निकलती थीं और लोग आश्चर्यचकित होकर इन मेमों को देखते रहते थे—उनके चेहरों को, उनके तंग कपड़ों को।

भद्रा कहती थी, ये लोग मर्यादाहीन हैं। बस, मात्र इतवार को चर्च में जाकर प्रेयर करते हैं।

शारद का मन होता कि चंद्रवदन के साथ जाए और कभी कल्पना करती कि वह साइकिल की पीछे की सीट पर बैठी है, रास्ते पार हो रहे हैं और चंद्रवदन पैडल मार रहा है। पर बाद में चंद्रवदन ने सोचा कि यह संभव नहीं है। वह मात्र स्कूल जाने को ही घर से बाहर निकलती थी। भद्रा के साथ माँ के मठ तक जाती और वह निराश हो जाता।

स्टूडियों में नायिकाएँ कितनी स्वतंत्र होती थीं?, उसने यह देखा और अनुभव किया था। एक बार नूरजहाँ ने उसके गाल चिकोटी भरी, वह शर्म से पानी-पानी हो गया। वह स्थिति देख उसने चुटकी ली, 'तू तो लड़कियों सा है।'

वह शाम को पहले से ही उत्सुकता से खड़ी थी हिसाब लेने को। और उसने ब्योरेवार सारी बातें शारदा को बता दीं। मेरी बात सुनकर वह भी नूर सी हँसी और तुरंत कहा, 'देखिए, पुरुष ही स्त्री के गाल पर चिकोटी भरता है। पर अब तुम्हें भी नूर के गाल पर चिकोटी भरनी चाहिए।' कंगन में ऐसा ही देखा था। पिताजी मिनरवा में यह पिक्चर दिखाने ले गए थे।

और वह यह सुनकर घबरा गया। 'अरे, दलसुख सेठ उसे नौकरी से निकाल दे तो? नहीं, मैं ऐसा नहीं करूँगा।'

शारदा उसकी बात सुनकर खिलखिलाकर हँसी और हँसते हुए चल पड़ी। बाद में उसे विचार आया कि कहीं शारदा अपने गाल पर चिकोटी लेने को उसकी प्रतीक्षा नहीं कर रही है। और पूरी रात इसी विचार में ही निकल गई। भद्रा यदाकदा अकेले नवयुवक की कुशलता, दावे के खाने और रोटी पर ठीक से घी लगाने के बारे में पूछती ही रहती थी। अंतत: कहती, 'तनिक भी मत शरमाना। हम पडोसी हैं न?'

यह सुनना उसे अच्छा लगता। कितना सुख था यहाँ? घर की याद आ जाती, स्वजन याद आते, परंतु ये विचार जल्द ही बिखर जाते। शारदा

थी न? उसे देखते ही मन फूल सा हलका हो जाता था। यदाकदा मात्र शारदा के लिए ही स्टूडियो से घर जाता।

चलचित्रों की शूटिंग के समय वह यदाकदा प्रेक्षक बनकर खड़ा रह जाता था। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। कैमरे वैसे ही इधर-उधर घूमते रहते थे। नायक-नायिकाएँ दलसुख सेठ के इशारों की प्रतीक्षा करते रहते थे। ऐसे समय में वह किसी नायक के स्थान पर होता और शारदा याद आ जाती।

प्रात:काल नरहरि बाबू ने उसे विनम्रता से कहा, देखो, बाहर आते-जाते सावधान रहना। आजकल तूफानों का वातावरण है। कतिपय शरारती तत्त्व धमा-चौकड़ी करते ही रहते हैं। पर ये अंग्रेजी सरकार के सामने टिकने वाले नहीं हैं।'

भद्रा चंद्रवदन से उसकी जाति, गोत्र, स्वजनों के बारे में पूरी जानकारी लेना चाहती थी। शारदा ने उसे कहा था, 'देखो, हमारी बात चल रही। समझते हो न?'

एक दिन चंद्रवदन ने एक सैनिक को प्रात: यह बड़बड़ाते सुना, देखना, अंग्रेज जाएँगे। चले जाएँगे, अबकी गोरी मेमों के साथ।

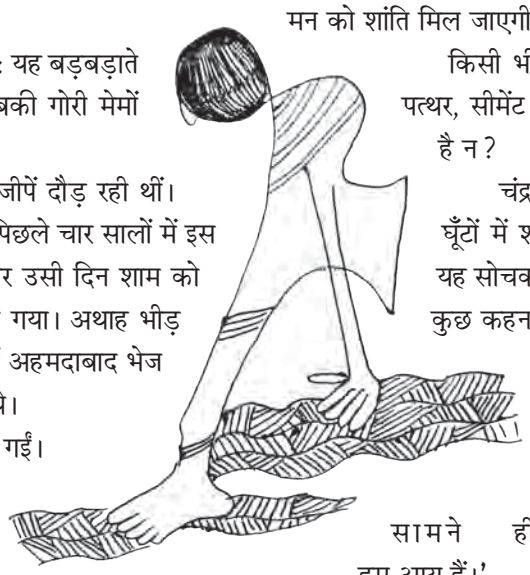

लाहौर की सड़कों पर सुरक्षा बलों की जीपें दौड़ रही थीं। सारे शहर का माहौल बड़ा विचित्र था। उसने पिछले चार सालों में इस शहर की ऐसी दुर्दशा कभी नहीं देखी थी। और उसी दिन शाम को चंद्रवदन अहमदाबाद जाने वाली गाड़ी में बैठ गया। अथाह भीड़ होने पर भी दलसुख भाई कई वेशकीमती चीजें अहमदाबाद भेज रहे थे। इसी लिए वे खुद ही स्टेशन पर आए थे।

उसे शारदा याद आई और आँखें नम हो गईं।

अलीबक्स ने ध्यान भंग करते हुए कहा, 'जनाब, शरबत गरम हो रहा है।'

सलीम ने भी हँसते हुए चुटकी ली, 'क्यों जनाब! क्या लाहौर में घूम रहे थे?'

'हाँ वहीं था—लाहौर में, शारदा में। ट्रेन शारदा से पल-पल दूर होती जा रही थी। वह मन-ही-मन ट्रेन में बैठे-बैठे वह दृढ़ निश्चय कर रहा था कि दिलसुख की थाली सौंपकर वह लौटती ट्रेन से लाहौर लौट आएगा। घोड़ागाड़ी के किराए के दो आने देकर वह अपने कमरे पर पहुँचेगा और शारदा से मिलेगा। अरे हाँ, वह भी कोठरी के बाहर अपने घर के दरवाजे पर खड़ी होगी। बीच में ढाबे वाले को कहेगा कि वह आज से नियमित भोजन करेगा। पर ट्रेन अभी अहमदाबाद ही नहीं पहुँची थी कि आग की तरह यह खबर चारों ओर फैल गई कि देश का विभाजन हो चुका है—दो अलग-अलग देशों में। अंग्रेज अपनी गोरी मेमों लेकर जाने को हैं। यह सब सुनकर उसे बड़ा आघात लगा। सोचा, क्या शारदा दूसरे देश में? वह लाहौर गया? कभी नहीं मिल सकेगा? कल सुबह उसने क्या कहा था? मन में प्रस्फुटित हुए संबंधों का क्या? तार करने के अथक प्रयास किए। पर पोस्ट मास्टर का एक ही उत्तर था कि उसे उस देश में तार करने की आज्ञा ही नहीं है।

माँ भगवान् का आभार व्यक्त करते हुए सबको कहती, 'भगवान् बड़ा दयालु है, उसने देश में तूफान उठने से पहले ही चंद्रवदन को सकुशल घर पहुँचा दिया।'

उन दिनों दोनों देशों में कई असंभव घटनाएँ हुई थीं।

वह भी शारदा के बारे में कहाँ किसी को कुछ भी बता सका था और मन में यह बात सहेजकर वह विगत चालीस सालों से जी रहा था। हाँ, अलीबक्स के पास मन की गाँठ जरूर खोली थी। शहर के साथ शारदा की भी गाथा गाई थी। अलीबक्स का दर्शनशास्त्र अलग ही था। वह कहता था, दोस्त, सब कुछ भूल जा। यादें ही दु:ख देती हैं। वह नारी क्या तुझे याद करती होगी? व्यर्थ में उसे रटने से क्या लाभ? सब कुछ भूल जा।'

और वही अलीबक्स उसे एक लाहौर निवासी से मिलाने को ले आया था। वह चंद्रवदन की प्यास को जानता था। एक बार मिलेगा तो मन को शांति मिल जाएगी और संभव है कि इस बात को भूल ही जाए।

किसी भी शहर का इतिहास क्या होता है? मात्र ईंट, पत्थर, सीमेंट और इमारतें ही न? अंतत: मानव की कहानी है न?

चंद्रवदन को अलीबक्स पसंद था। उसने दो-तीन घूँटों में शरबत पी लिया। इसी समय सलीम ने शायद यह सोचकर बोलना शुरू किया कि अतिथि के स्वागत में कुछ कहना चाहिए। तदुपरांत एक परिचय था, जानकारी भी मिल गई थी। उसने कहा, 'महाशय, मैं आपको जानता हूँ।'

चंद्रवदन यह सुनकर चौंका।

'आप चाँद मंजिल में रहते थे। मैं सामने ही अनार मंजिल में रहता था। जनाब, हम दोनों हम आयु हैं।'

चंद्रवदन क्षण-क्षण विस्मित हो रहा था। 'जनाब, मुझे भली प्रकार याद है कि आप रोज हरक्यूलस साइकिल पर निकलते थे।' वाह, कैसा संयोग? चंद्रवदन ने कहा।

जनाब, अब तो सारे शहर की काया ही पलट गई है। आप तो भुलावे में रास्ते ही भटक जाएँ। अब वह रास्ता फोर लेन हो गया है। नई-नई इमारतें बन गई हैं।

सदर बाजार एकदम ही बदल गया है। वहाँ अब सिने कलाकारों की भव्य कोठियाँ, बँगले बन गए हैं। जहाँ दलसुख सेठ का स्टूडियो था, वहाँ अब चार दूसरे स्टूडियो हैं। यह सब सुनकर चंद्रवदन की आँखें विस्मय से फटी रह गईं। विचार आया शारदा कहाँ होगी? क्या सलीम को यह मालूम है, शायद हो? वह भी इसी मोहल्ले में रहता था, अनार मंजिल में। मन में आया कि इन महोदय से पूछा जाए? शायद जानते हों?

अलीबक्स को लगा कि चर्चा पूरी हुई। यह मीटिंग समाप्त होगी। नमाज कर हो रहा था। चाचा-चाची कट्टर नमाजी थे। पर इसी समय

मानो चाचा को कुछ याद आ गया और वे बोले, 'बिरादर! क्या आपको याद है कि आपके मकान में एक सरकारी बाबू भी रहता था, नरहरि बाबू? शायद आप जानते होंगे?'

यह सुनते ही वह चौंका। यह तो शारदा की ही बात। कैसे हुआ? उसी ने आगे होकर बात शुरू की 'हाँ, सलीम भाई।' चंद्रवदन ने उत्साहित होकर कहा, अलीबक्स भी चौंका। उसे भी ज्ञात था, चंद्रवदन कई बार यह चर्चा कर चुका था।

तत्पश्चात् यह परिवार सदर बाजार में रहने लगा था। यह मकान तोड़ दिया गया। सलीम एक-एक करके जानकारी दे रहा था। चंद्रवदन को अब शारदा बहुत ही समीप आई लगी। सलीम की बातों में वह आएगी ही। पर उसे प्यास छिपानी थी। वह कहाँ होगी?

वह श्वास रोककर ध्यानमग्न हो गया था। तत्पश्चात् उस परिवार ने ईसाई धर्म अपना लिया और चर्च में ही रहने लगा। सरकारी नौकरी छूट गई।

वह धैर्यपूर्वक सब सुनता रहा। पर इनमें शारदा कहाँ? नन हो गई होगी। सामने श्वेत वस्त्र पहने शारदा दिखाई दी और चर्च की घंटा ध्वनि सुनाई दी। मन क्षुब्ध हो गया।

फिर कुछ समय बाद पादरी सहित सभी ने इसलाम धर्म स्वीकार कर लिया। नए कस्बे में मस्जिद के पास ही घर था। सलीम कह रहा था और वह सुनता रहा। इतने सारे परिवर्तन किन कारणों से हुए? चंद्रवदन इन्हीं विचारों में खो गया। तत्पश्चात् शारदा सुकबुदाई तो वह बरबस बोला, 'तो फिर शारदा?'

सलीम का ध्यान अभी पुराने लाहौर के नक्शे ही था। वह उसे ही देखता हुआ इस शहर की नई-नई जानकारियाँ दे रहा था। 'जनाब, सदर बाजार में अब फिल्मी सितारों की कोठियाँ हैं। अब सारे बाजार की काया ही पलट गई है। सदर बाजार के पीछे ही क्या हवाई अड्डा है।'

चंद्रवदन ने यह कहाँ सुना था? पर बीच की बाँस की चिक में हलचल हुई, कंगन खनखनाए और पीछे से एक सिसकी सुनाई दी। भीतर एक स्पर्श छू गया और चंद्रवदन के मुँह से निकल पड़ा, 'शारदा'।

सलीम कह रहा था, 'जनाब, रावी के उस पार उस समय कुछ भी नहीं था न? वहाँ अब···।'

चंद्रवदन आर्द्र होकर बाँस की चिक के उस पार देख रहा था।

वापस लौटते समय अलीबक्स ने दार्शनिक भाषा में कहा, 'चंद्रवदन, चलो मुलाकात तो हो ही गई। भले ही इसी प्रकार।' दो क्षण रोककर कहा, 'बाकी क्या किसी को कोई अंतिम श्वास तक मिल सकता है?'

उसकी दृष्टि में बाँस की चिक अभी तक हिल-डुल रही थी।

ग्राम व पोस्ट श्रीनगर,
अजमेर-३०५०२५ (राज.)
दूरभाष : ९४१४९८१९४४

अँधेरा और रोशनी

लघुकथा

• मुकेश शर्मा

शहर में रोज एक अजीब घटना घट रही थी। फकीरों का एक झुंड दिन में रोटी खाने के लिए मंदिर आ रहा था और रात को सोने के लिए मस्जिद चला जाता था। कुछ ही दिनों में यह बात निगाहों में आ गई।

मंदिर कमेटी और मस्जिद कमेटी वालों ने आपस में बात करके धार्मिक लोगों की एक संयुक्त समिति बना दी, जिसमें दोनों कमेटियों के प्रमुख लोग शामिल हो गए। दिन में रोटी खाने आये फकीरों के झुंड को साथ लगते पार्क में रोक लिया गया।

समिति सदस्यों ने उन्हें साफ हिदायत दे दी—"एक पास हो जाओ। मंदिर में रोटी खाते हो तो दिन-रात वहीं रहो। जो मस्जिद में सोना चाहते हैं, वे दिन-रात वहीं रहें।"

झुंड असमंजस में पड़ गया। उनमें से एक बूढ़ा फकीर आगे आकर बोला, "बाऊ, हमारे लिए क्या मंदिर, क्या मस्जिद? मंदिर में खाना खिलाने के लिए लंगर लगता है तो यहाँ लंगर खाने आ जाते हैं। मंदिर में रात को सोने देने का कोई इंतजाम नहीं है तो सोने मस्जिद में चले जाते हैं। अब बताओ इसमें क्या दिक्कत है?"

"नहीं। तुम्हें एक पास होना पड़ेगा···"

"अच्छा बाऊ, एक बात बताओ···" फकीर समिति के लोगों से मुखातिब हुआ, "तुम हिंदुओं में कितने लोग हैं, जो रोज रामायण पढ़ते हैं, गीता पढ़ते हैं? और मुसलमानों में कितने लोग हैं, जो रोज कुरान पढ़ते हैं?"

समिति सदस्य बगलें झाँकने लगे। जवाब नहीं सूझ रहा था। अब फकीर ने ही अपनी राय दी, "तो बाऊ, ऊपर वाला तुम्हारे लिए महज एक शगल है, धर्म एक कल्पना है, सुनी-सुनाई बातों की··· और फिर, केवल कल्पना या सिर्फ शगल की बात के लिए कैसा झगड़ा?"

म.नं. १४२, पार्ट-६, सेक्टर-५,
गुरुग्राम-१२२००१ (हरियाणा)
दूरभाष : ९८१००२२३१२

कोई आश्चर्य नहीं

• जितेंद्र श्रीवास्तव

हिंदी के साथ-साथ भोजपुरी में भी लेखन-प्रकाशन। इन दिनों हालचाल, अनभै कथा, असुंदर-सुंदर, बिल्कुल तुम्हारी तरह सहित अनेक कविताएँ, कहानियाँ और आलोचना पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। भारत भूषण अग्रवाल सम्मान सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

प्रार्थनाओं का पानी

शाम के चार बजे हैं
मेरा अध्ययन कक्ष भरा है धूप से

किताबें मुसकरा रही हैं मेरी ओर देखकर
मैं बीच-बीच में निहार रहा हूँ चिड़ियों को
वे नीम के पेड़ पर उछलती-कूदती
आइस-पाइस खेल रही हैं

मैं चाहता हूँ, उनकी आवाज का अनुवाद करना
मेरी इच्छा है
मेरी दुनिया के लोग जान पाएँ
सृष्टि के सबसे सुंदर गीतों का मर्म
पर इनकार कर दिया है चिड़ियों ने
यह मंजूर नहीं
दुनिया के आरंभिक वास्तुकारों को

चिड़ियों ने कहा है अपने संदेश में
कि जरूरी नहीं कि आप समझें
हमारी भाषा के अंग-प्रत्यंग
समझें उसका रूप-रंग
हमारी इच्छा है कि मनुष्य जिस तरह विकल है
अपने जनतंत्र के लिए
वह सम्मान करे हमारे पुरातन लोकतंत्र का
हम मनुष्य नहीं कि ईर्ष्या और द्वेष में छोड़ दें
अपने कंठ में बसी आदिम प्रार्थना

हम सब चाहती हैं
कि कुछ भी और नया सीखने से पहले
मनुष्य सीखें प्रार्थनाओं के पानियों को पहचानना।

बिन दीवानों के यह दुनिया

उन दिनों के बारे में सोचिए
जब किसी के पास किसी और के लिए
नहीं होंगे फुर्सत के क्षण
जब परिवार होगा
लेकिन नहीं होंगी गहरी संलग्नताएँ

कुछ जरूरतें होंगी
जिन्हें पूरी कर लेंगे लोग

लोभ का एक नितांत अपरिचित चेहरा
मुसकान का एक अकल्पित रूप
सामने आएगा उन दिनों

हाथ मिलाना और गले लगना
वैसे भी बंद हो चुका है कोविड समय में

कोई आश्चर्य नहीं
कि यह बदल जाए आचरण में
हमेशा के लिए

उन दिनों भाषा में लगाव कम
संकेत अधिक होंगे
तब व्यर्थ होगी
व्यंजना पर कोई भी बातचीत

संकेत बताते हैं
धीरे-धीरे मनुष्य बदल जाएगा
साँस लेते रोबोट में

सोचता हूँ
तब क्या बिल्कुल पैदा नहीं होंगे दीवाने
दुनिया को बदलने की हसरत लिए हुए

मेरा मन कहता है मुझसे
पैदा होंगे दीवाने
जरूर पैदा होंगे

वे होते हैं
तो ऑक्सीजन बढ़ जाता है वायुमंडल में

कुछ हद तक ही सही
पर बदल जाता है
लोगों के सोचने-समझने और कहने का शिल्प

साधो!
बिन दीवानों के यह दुनिया
बिन पानी का सागर हो जाएगी।

हाय, यही जीवन

जब अभाव था गरीबी थी
तब आत्मीयता गहरी थी
जैसे-जैसे आया धन
वैसे-वैसे लोग हुए निर्धन
हाय, यही जीवन

एक सच यह भी

माँ-बाप बच्चों को
चलना ही नहीं सिखाते
उनसे हार-हारकर
उन्हें जीतना भी सिखाते हैं

यह और बात है
कि झूठ-मूठ में जीतने के अभ्यस्त हुए तमाम बच्चे
एक दिन माँ-बाप को हारा हुआ मानकर
उन्हें उस एकांत में छोड़ देते हैं
जिस एकांत की कल्पना भी नहीं करता कोई सद्गृहस्थ।

हिंदी संकाय, मानविकी विद्यापीठ,
ब्लॉक-एफ, इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-११००६८
दूरभाष : ०९८१८९१३७९८
jitendra82003@gmail.com

खाली हो जाना

कविता

• संदीप राशिनकर

वह इकहरे नाम से
पुकारा जाना
भूल सारी शरारतें/ गलतियाँ
मेरी इकतरफा पैरवी करना
झूठमूठ डाँटना,
फिर आ मनाना
वह प्यार दुलार करता हाथ
सिर पर धरना
मेरी उपलब्धियों पर
फूलकर कुप्पा होना
यहाँ-वहाँ जा
मेरी बढ़ाई करना
कहीं नजर न लगे
इसलिए आते-जाते
मेरी नजर उतारना
पैरों की धूल से लगा टीका
या ले नमक और राई का दाना!
हो जाने पर भी
मेरे बच्चे बड़े
मुझे बच्चा ही होने का
स्नेह देना/एहसास देना
ताउम्र भूल अपने दुख-दर्द
मेरी चिंता करना
मेरा खयाल रखना
दोनों हाथों से
बस देते रहना
देना ही देना
लगता रहा
अक्षय ही है
उससे भर-भर के
स्नेह, ममता, आशीष
का लेना
और गोद में उसके
निश्चिंत हो सोना!
तय नहीं कर पा रहा
जीवन में, जीवन का
क्या, क्या?
कितना, कितना खोना
है आई का जाना
कि
यकायक ही
खाली हो जाना है
एक भरे पूरे
शाश्वत निश्चिंतता के
एहसास से…

जाने-माने चित्रकार, लेखक और समीक्षक। राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में हजारों चित्रों/रेखांकनों का प्रकाशन। 'कैनवास पर शब्द' और जीवन संगिनी श्रीति के साथ संयुक्त काव्य कृति 'कुछ मेरी कुछ तुम्हारी' प्रकाशित होकर देश भर में चर्चित व पुरस्कृत। 'जीवन गौरव' के अलावा देश भर के कई प्रतिष्ठित सम्मानों से सम्मानित।

११-बी, मेन रोड, राजेंद्र नगर,
इंदौर-४५२०१२ (म.प्र.)
दूरभाष : ९४२५३१४४२२
rashinkar_sandip@yahoo.com

ठेले पर वैक्सीन

• अशोक गौतम

जब से बाहर के देशों समेत अपने देश में वैक्सीन तैयार होने की खबरों के बीच पड़ोस में सोए-सोए भी निगेटिव रहने वाले पॉजिटिव निकले हैं, तब से नए साल के आगमन के तो छोड़िए, रुटीन के सारे सपने तक आने बंद हो गए हैं। हरदम सपने में भी बस यही डर लगा रहता है कि उम्र भर हर हाल में निगेटिव रहने वाला इन दिनों जो गलती से पॉजिटिव हो गया तो? गई सारी उम्र भर की जोड़ी निगेटिविटी पानी में। इसीलिए अपने भीतर की इस निगेटिविटी को बचाए, बनाए रखने के लिए मैंने अपने नाक के आगे हवा साफ करने वाला ईएमआई पर लिया विदेशी फिल्टर लगा लिया है, ताकि दिमाग के भीतर भले ही सबकुछ अनछना जाए तो जाए, पर कम-से-कम नाक के थ्रू जो भी अंदर जाए, वह ठीक ढंग से छनकर ही जाए।

सुपरिचित लेखक एवं व्यंग्यकार। देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का निरंतर प्रकाशन।

इन दिनों जैसे ही बिस्तर पर पड़ता हूँ, रुटीन के सपने हाशिए पर चले जाते हैं और वैक्सीन की शीशियों के सपने आने शुरू हो जाते हैं। कभी चीन की वैक्सीन के सपने तो कभी ब्रिटेन की वैक्सीन के सपने। कभी अमेरिका की वैक्सीन के सपने तो कभी इटली की वैक्सीन के सपने। कभी फ्रांस की वैक्सीन के सपने तो कभी जापान की वैक्सीन के सपने। बीच-बीच में कभी-कभार अपनी वैक्सीन भी सपने में आ जाती है तो पता नहीं क्यों, एकदम डर से नींद टूट जाती है?

सच कहूँ तो, जिस पड़ोसी देश से अपनी आज तक नहीं बनी, अब तो उसकी वैक्सीन के सपने भी आने लगे हैं। मौत का डर जहर को भी दवा में ऐसे ही बदलता रहा है। हालाँकि इटली पर देश की जनता अब उतना विश्वास नहीं। पर हो सकता है, वैक्सीन पर तो कर ले। शुद्ध दवाई किसी रोगी को मिलने के बाद उतना सुकून नहीं देती, जितना उसके आने पर देती है। दवा आने के बाद दवा का सारा चार्म डर में भी बहुधा बदल जाता है।

आज रात ग्यारह बजे से लेकर सुबह आठ बजे तक मैंने एक बार फिर वैक्सीन के जी भर सपने देखे। सपने में मैंने देखा कि हमारे स्वच्छ शहर में किस्म-किस्म की वैक्सीनों की सेल लगी है। पहले जिन शहर की गंदी नालियों पर फल, सब्जी, मूँगफलियाँ बेचने वाले सजे रहते थे, उन्होंने अब गंदी नालियों पर फल, सब्जियों, मूँगफलियों के बदले वैक्सीन की शीशियाँ सजा रखी हैं थोक में। पानी-पूरीवाला पानी में मिर्च, इमली मिलाने के बदले शीशी में से कुछ पानी में डाल रहा है। चाय वाला चाय में दूध की जगह शीशी में से तरल निकाल बूँदे गिनता चाय में डाल रहा है। कोई एक वैक्सीन की डोज के साथ दो वैक्सीन के डोज फ्री दे रहा है तो कोई वैक्सीन के फैमिली पैक सजाए अपनी दुकान के काउंटर पर तना है। सड़क से लेकर पनघट तक कल तक अपने को बेचने वाला आदमी आदमी के पीछे वैक्सीन लिए भाग रहा है। धंधे के प्रति समर्पित की यही खासियत होती है कि वह जहाँ उसे दो पैसे अधिक मिलें, वह वहीं बेचने का काम पूरी निष्ठा से शुरू कर देता है। शहर के बाजार में नाड़े तक बेचने वाले भी, जिसने कभी पाजामा देखा तक नहीं, उसे वैक्सीन लिए उसे रोके हैं। बीस के पाँच! बीस के पाँच! शहर की रेड लाइट्स पर वैक्सीन-ही-वैक्सीन बेचने वाले। जरा सा ट्रैफिक रुकते ही बीसियों हाथ में वैक्सीन की शीशियाँ लिये जाम को और जाम करते हुए। हर मॉल पर माल की जगह वैक्सीन सजी हुई सोलह सिंगार किए। टीवी पर वैक्सीन के ऑनलाइन विज्ञापन के बाजार दिन-रात खुले हुए।

मैंने वैक्सीन से भरे बाजार में वर्चुअल टहलने के बाद देखा कि मेरे मुहल्ले में जो कल तक आलू, टमाटर, प्याज, गोभी बेचने आता था, उसने भी उस वक्त अपने ठेले पर से आलू, प्याज, टमाटर, गोभी हटा उस पर वैक्सीन भरी है। तरह-तरह के ब्रांडों की वैक्सीन।

अचानक वैक्सीन के ठेले वाला मेरे छह महीने से किराया न चुकाए किराए के कमरे के आगे रुकता है। जोर से अपनी सारी एनर्जी गले में जमाकर आवाज देता है,' वैक्सीन ले लो! ताजी वैक्सीन ले लो! सस्ती ताजी वैक्सीन ले लो!'

…और मैं सपने में भी हड़बड़ाकर जाग जाता हूँ। बिन चाय पिए, बिन मुँह धोए, बिन कपड़े पहने ही वैक्सीन से लकदम ठेले की ओर नंगे-ही-नंगे पाँव दौड़ जाता हूँ।

सामने क्या देखता हूँ कि उसका ठेला वैक्सीन से इतना भरा हुआ, जितना पहले सब्जियों से भी नहीं भरा होता था। यह देखकर मन खुश हो जाता है कि चलो, महामारी से बचे हुए अब वैक्सीन से जरूर मरेंगे।

'और बाबूजी क्या हाल हैं? पॉजिटिव तो नहीं हुए न? कौन सी वैक्सीन दूँ?'

'वाह! ठेले पर वैक्सीन? आमद आदमी तक वैक्सीन की पहुँच? कौन-कौन सी वैक्सीन हैं तुम्हारे पास? पर आज सब्जियाँ छोड़ ठेले पर वैक्सीन?'

'जन कल्याण बाबूजी! जन कल्याण! अपना पेट तो कुत्ते भी भर लेते हैं?' आह रे कोरोना! सोचा न था, आज के दौर में तू हर दिमाग के आदमी को कूट-कूटकर देशभक्त कर देगा, 'बाबूजी! महामारी में जिनके हाथ-पाँव भी नहीं, वे भी जब बहती महामारी में अपने सौ-सौ हाथ पाँव धोने निकले हैं तो मैंने भी सोचा कि जनता के कल्याण के लिए मैं भी बहती गंगा में हाथ धो ही लूँ। सच कहूँ बाबूजी! किलो के बदले नौ-नौ सौ ग्राम तौल-तौलकर अब आत्मग्लानि सी होने लगी है। आदमी जिंदा रहा तो आलू-प्याज तो बाद में भी खा लेगा। इन दिनों उसे आलू, प्याज की उतनी जरूरत नहीं, जितनी वैक्सीन की है। बस इसलिए···'

'इत्ते सारे किस्मों के वैक्सीन? कहाँ से लाए?' मैंने उससे नजरें छुपाते पूछा तो वह सीना तानकर बोला, 'ये न पूछो बाबूजी कि कहाँ से आई? बस आप जैसों के भले के लिए आ गई तो आ गई। कुछ बातें छुपी हुई ही बेहतर लगती हैं, बाबूजी! वैसे आपको आम खाने हैं कि आम के पेड़ देखने हैं। आम कहीं भी लगें। इससे आपको क्या? आम में आम का स्वाद मिले तो वह चाहे अमरूद के पेड़ का ही क्यों न हो। बाबूजी! हम उस क्लास के जीव हैं, जो जन-कल्याण के लिए कुछ भी दाव पर लगा सकते हैं। सो मैंने भी सोचा कि जब पूरे संसार में वैक्सीन-वैक्सीन हो रही है तो क्यों न मैं भी अपने ग्राहकों को···धंधा तो मरने के बाद भी होता ही रहेगा, बाबूजी! जब बीड़ी-सिगरेट वाले तक इन दिनों बीड़ी-सिगरेट बेचना बंद कर वैक्सीन बेच रहे हैं तो ऐसे में मेरा भी कुछ सामाजिक फर्ज बनता है कि नहीं, इसलिए जब तक चलता है तब तक कुछ दिन आलू, प्याज देने के बदले वैक्सीन ही बेच लूँ, ताकि···'

'इत्ते सारे किस्मों के वैक्सीन? कहाँ से लाए?' मैंने उससे नजरें छुपाते पूछा तो वह सीना तानकर बोला, 'ये न पूछो बाबूजी कि कहाँ से आई? बस आप जैसों के भले के लिए आ गई तो आ गई। कुछ बातें छुपी हुई ही बेहतर लगती हैं, बाबूजी! वैसे आपको आम खाने हैं कि आम के पेड़ देखने हैं। आम कहीं भी लगें। इससे आपको क्या? आम में आम का स्वाद मिले तो वह चाहे अमरूद के पेड़ का ही क्यों न हो। बाबूजी! हम उस क्लास के जीव हैं, जो जन-कल्याण के लिए कुछ भी दाव पर लगा सकते हैं।

···और मैं सरकारी राशन की दुकान का सड़ा आटा खाने वाला उसके वैक्सीन से लकदक ठेले पर वैक्सीनों में बेहतर-से-बेहतर वैक्सीन ढूँढ़ने लगा, उलट-पुलटकर उन पर लिखे रेटों को देखते हुए। मेरे जैसों के लिए रेट पहले होता है शुद्धता का वेट बाद में। ···तभी पता नहीं मेरे सोए के भीतर कहाँ से देशप्रेम जाग उठा। सो दूसरे देशों की वैक्सीनों को उलटते-पुलटते मैंने वैक्सीन के ठेले वाले से पूछा, 'बंधु! अपने देश की वैक्सीन नहीं दिख रही इनमें? इस देश के होकर भी तुम अपने देश की वैक्सीन बेचना नहीं चाहते या फिर···' मैंने पूछा तो उसने ठेले के निचले हिस्से में गंदी सी बोरी में भरकर रखी शीशियों में से एक शीशी निकालते कहा, 'माँग ही रहे हो तो ये रही बाबूजी! ऊपर इसलिए नहीं रखी है कि अपने जागरूक ग्राहकों के साथ मुश्किल यही है कि गुण देशभक्ति के गाते हैं, पर बीमार होने के डर से दवा बाहर की खाते या लगवाते हैं। बीमार यहाँ होते हैं और इलाज करवाने बाहर जाते हैं। बस इसीलिए···'

'पर यार! यह अमेरिका वाली वैक्सीन तो बहुत महँगी है?'

'बाबूजी! छुप-छुपाकर आई भी तो सात समंदर पार से है। राम जाने! बेचारी हमारे कल्याण के लिए कैसे-कैसे आई होगी? अपने यहाँ के वैद की पुड़िया तो है नहीं कि···ऊपर से ब्लैक ओपनली बेचने पर पता है कितना खतरा है? पर हम सब मिल मिला जनता के कल्याण के लिए हर खतरा सिर पर बाँधे सरेआम ठेले पर बेचते फिर रहे हैं।'

'तो कितनी की दोगे? सात समंदर पार की वैक्सीन हाथ में लेते ही लगा, ज्यों मेरी निगेटिविटी का ग्राफ तेजी से आसमान की ऊँचाइयाँ छूने लगा हो।

'देखो बाबूजी! सुबह-सुबह बोहनी का टाइम है। सबसे पहले आपके मकान के बाहर ही आवाज दी है। आप जिंदा तो पूरा मुहल्ला जिंदा। आपसे झूठ क्यों बोलना, लिखे रेट से तीस प्रतिशत कम दे दो।'

'बस, तीस? फिफ्टी-फिफ्टी नहीं चलेंगे?'

'इतने की तो बाबूजी अपने को ही पड़ी है। पूरे-पूरे में बेचूँगा तो अपने बच्चों को लगवाऊँगा क्या? महामारी का डर तो मुझे भी है।' उसने हाथ जोड़ते कहा।

'पर···'

'तो यह चीन वाली ले लो। इसे आधे में दे दूँगा। वह भी आपके लिए।'

'पर यार! चीन के माल पर तो बैन है। फिर ये ठेला बाजार में कैसे?'

'बाबूजी! बैन तो छोटे लोगों के लिए होता है। बड़े लोगों के लिए नहीं। वे बैन में ही हाथ की सफाई करते हैं। बड़े लोग ही इसे चोरी-छिपे अपने देश में लेकर आए हैं।'

'पर इसमें दवा ही है न!'

'अरे बाबूजी! दवा में भी दवा ढूँढ़ क्यों मेरा सुबह-सुबह टाइम वेस्ट करते हो। जब शीशी पर वैक्सीन लिखा है तो···कहे पर यकीन नहीं रहा तो कम-से-कम लिखे पर तो विश्वास कर ही लो, बाबूजी! तो कौन सी दूँ?' पूछते-पूछते वह अपना वैक्सीन का ठेला आगे सरकाने लगा, सार्वजनिक रूप से वैधानिक हाँक देता हुआ, 'वैक्सीन ले लो! विदेशी वैक्सीन ले लो! ताजी सस्ती वैक्सीन ले लो!'

साअ

गौतम निवास, अप्पर सेरी रोड
नजदीक मेन वाटर टैंक,
सोलन-१७३२१२ (हि.प्र.)
दूरभाष : ९४१८०७००८९

महादेवी का मन

● राजशेखर व्यास

श्रीमती महादेवी वर्मा का यह जन्म-शताब्दी वर्ष है। 'हिंदी की मीरा' महादेवी के जीवन और साहित्य पर बहुत कुछ लिखा गया है। उनके संस्मरण और रेखाचित्र साहित्य पर भी बहुत कार्य हुआ है, होना भी चाहिए। उन्हें 'भारतीय ज्ञानपीठ' से ज्ञानपीठ पुरस्कार भी मिला, हालाँकि बहुत विलंब से। जब मिला था, तब भी एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा था, "अब इस उम्र में इस पुरस्कार को लेकर मैं क्या करूँ? पहले मिलता तो इस रकम से सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का इलाज ही करवा देती। अब इस उम्र में गहने, श्रृंगार-पटार, कपड़े-लत्ते खरीदने से तो रही।'' पुरस्कार भी उनकी बहुत युवावस्था में लिखी कृति 'यामा' के लिए मिला था, उस पर भी मजाक यह कि उनकी रचना से तो दूर का वास्ता, हिंदी भी न जानने वाली ब्रिटेन की प्रधानमंत्री 'मार्गरिट थ्रेचर' के हाथों दिलवाया गया, इस देश में जो भी हो जाए, वह कम ही है! महादेवी वर्मा मेरे पिता द्वारा संपादित पत्र 'विक्रम' (सं.- पं. सूर्यनारायण व्यास) की नियमित लेखिका थीं। उनकी आरंभिक अनेक रचनाएँ 'विक्रम' (मासिक) में प्रकाशित हुई हैं। उनके लिखे असंख्य पत्र मेरे पास सुरक्षित हैं। यहाँ मैं उसमें से सिर्फ चार पत्र दे रहा हूँ। प्रसंग क्योंकि बेहद महत्त्वपूर्ण है ।

प्राय: हम हिंदी वाले हिंदी के साहित्यकारों के देहावसान हो जाने पर, दिवंगत हो जाने पर गाल पीट-पीटकर, रो-गाकर फिर शांत हो जाते हैं। पर कोई साहित्यकार अगर अर्थाभाव में चला जाए, तो उसके परिवारजनों की सुध भी नहीं लेते। जबकि इसके ठीक विपरीत खेल-जगत् में भी किसी खिलाड़ी के रिटायर्ड होने पर प्राय: उसके लिए अनेक किस्म के अनेक तरह के 'चैरिटी मैच' और धन इकट्ठा करने के तरीके खोज लिये जाते हैं। राजनेताओं के परिवार की मदद के लिए भी असंख्य लोग खड़े हो जाते हैं। संगीतकार भी प्राय: अपने गुरुजन या निर्माताजन के लिए किसी-न-किसी प्रकार का धन इकट्ठा करने का प्रयोजन खोज ही निकालते हैं। पर हिंदी साहित्य के साहित्यकार अपने किसी 'कॉमरेड' के जाने पर ज्यादा-से-ज्यादा शासन की ओर मुँह ताकने लगते हैं। मानो सिर्फ शासन का ही ठेका हो कि उस दिवंगत साहित्यकार के

सुपरिचित लेखक, संपादक एवं निर्माता-निदेशक। केवल १२ वर्ष की वय में पितृविहीन हो चले 'यायावर'। ५९ से अधिक क्रांतिकारी ग्रंथ, ४००० से ज्यादा लेख देश-विदेश के सभी अखबारों में प्रकाशित; २०० से ज्यादा वृत्तचित्र, कार्यक्रम, रूपक, फीचर, रिपोर्ताज टी.वी. पर प्रसारित। भारतीय दूरदर्शन में सबसे अल्पायु के आई.बी.एस. अधिकारी 'अतिरिक्त महानिदेशक'। फ्रांस, यूरोप, मलेशिया, सिंगापुर, अमेरिका की यात्रा।

परिवार की देख-रेख करने का। क्या यह दायित्व साहित्य-बंधुजनों का नहीं है, खासतौर पर संपन्न साहित्यकारों का? वर्षों पूर्व यह विचार पं. सूर्यनारायण व्यास ने अपने द्वारा संपादित 'विक्रम' (मासिक) में रखा था। प्रसंग दु:खद था। हिंदी के एक महान् कवि, आत्म प्रचार-प्रसार से सर्वथा दूर प्रो. रमाशंकर शुक्ल (जो श्री नरेश मेहता मुक्तिबोध के भी गुरु थे) का असमय देहावसान हो गया था। उनकी दो छोटी-छोटी बेटियाँ, एक बेटा और एक मुसीबत की मारी पत्नी को अपने पीछे छोड़ गए थे। व्यासजी ने एक विचार हिंदी के असंख्य साहित्यकारों को उस समय लिख भेजा था, जिनमें निराला, उग्र, महादेवी, पंत, रामकुमार वर्मा, प्रभाकर माचवे प्रमुख थे। विचार यह था कि ये सब रचनाकार अपनी एक-एक कृति प्रकाशन हेतु बगैर रॉयल्टी लिये, नि:शुल्क प्रदान करें। उसके प्रकाशन, कागज, स्याही और वितरण का सारा खर्च 'विक्रम' प्रेस और स्वयं व्यासजी वहन करेंगे और उससे होने वाली आय 'हृदयजी' के परिवार को भेंट कर दी जाएगी। इसमें किसी के मुँह ताकने की जरूरत भी नहीं थी, न ही शासन के आगे हाथ पसारना था। व्यासजी इससे पूर्व असंख्य साहित्यकारों की आर्थिक मदद कर चुके थे और करते रहते थे, जिनमें 'उग्रजी महाराज', बनारसी दास चतुर्वेदी, महेश शरण जौहरी 'ललित', प्रो. भगवत शरण उपाध्याय, रतनलाल जोशी जैसे असंख्य नाम थे। उनकी इस योजना का हिंदी जगत् ने सम्यक् स्वागत किया। इसमें पहली रचना की 'समिधा' महादेवी को ही देनी थी और वे चूक गईं।

पहले दोनों पत्र उसी संदर्भ में हैं। हालाँकि वे चूक गईं, उस पर 'उग्र' की दिलचस्प टिप्पणी भी दृष्टव्य है—(आवारा नाटक से)

"एक सुंदर और स्वर्गीय सहकर्मी या हमपेशा के स्वजनों के सहायतार्थ अपने इस नाटक 'आवारा' का सर्वाधिकार 'सत्याहित्यिक-सेवक समाज' को सौंप देने में मुझे हर्ष-विमर्ष या आत्मोत्कर्ष का अनुभव हो, इतना भावुक मस्त मैं नहीं।''

हिंदी में क्या, सारे भारतीय साहित्य में अपने 'कामरेडों' की गौरव रक्षा के लिए (स्वयं साहित्यिकी द्वारा) यह अभिनव आयोजन है। और इस स्निग्ध मौलिकता की माला में पहला मनका मेरे ही मन के रूखे-सूखे फूल का है, मेरे हृदय के ठहरने की भूमिका यही है मात्र··· और भपकी।

मैं कहता हूँ कि चूक गईं सुश्री महादेवी वर्मा। इस मौलिकता की माला में पहला मणि उनका होना चाहिए था, साथ ही अच्छे चूके श्री 'निरालाजी' श्री रामकुमार वर्मा, श्री हरिभाऊ उपाध्याय मेरे मित्र और परिचित। उक्त सभी सहृदयों ने 'हृदय' श्रद्धांजलि में अपने-अपने रचना कुसुम सजाने का वादा किया था। वे शौक से पंडित सूर्यनारायण व्यास के पास प्रयास-प्रसून प्रथम पूजार्थ प्रेषित कर सकते थे, मगर कहा जाता है—कोई अस्वस्थ रहा, कोई बहुव्यस्त तथा ढीगर महामस्त। सो मैं अपने सारे मित्रों की असुविधाओं से प्रतिष्ठित और मौलिक हूँ।

इस पुस्तक के प्रकाशन में जो भी व्यय लगा है उसे पंडित सूर्यनारायण व्यास ने 'पर्सनल पर्स' से प्रस्तुत किया है और ऊपरी टीमटाम रखते हुए भी मैं जानता हूँ, स्वाभिमानी व्यासजी पैसे से केवल गरीब हैं, सो केवल गरीबी की कठोर कमाई और लौह लिखाई से—प्रभु के प्रसाद से यह स्वस्थ-सुरभित-सुमन-माला सजाई जाएगी।

पंडित हरिभाऊ उपाध्याय से अनायास ही प्राप्त सुंदर सहयोग द्वारा 'हृदय श्रद्धांजली' की तथा 'सत्साहित्यिक सेवक समाज' की अन्य सभी पुस्तकें 'सस्ता साहित्य मंडल' अपनी देखरेख में छपाकर निजी निरीक्षण में उनकी बिक्री या विस्तार की व्यवस्था भी करेगा। पुस्तकों की बिक्री से जो आमदनी होगी, उसमें से अगली पुस्तक के प्रकाशन का खर्चा निकाल, बेचकों को जो कमीशनादि मुनासिब दे देने के बाद जो धन शेष रहेगा, हर संस्मरण का, हाँ—वह लेखक विशेष के स्वजनों को, विनय से समर्पित कर दिया जाएगा। इसी तरह 'आवारा' की सारी बचत दिव्यात्मा 'हृदयजी' के स्वजनों को सदैव सौंप दी जाया करेगी, 'हृदय-श्रद्धांजली' में १२ पुस्तकें उनके परिवारियों को भेंट की जाएँगी। ('उग्र' आवारा नाटक 'भूमिका और भपकी' से)

महादेवीजी के भी इसी विषय पर लिखे वे तीनों पत्र क्रम से यहाँ दिए जा रहे हैं—

(१)

तारीख : ५/१२/४१

मान्य भाई, (पंडित सूर्य नारायण व्यास को संबोधन)

कृपापत्र के लिए धन्यवाद, इससे पहले तो मुझे आपका कोई पत्र नहीं मिला, केवल भाषण की प्रति प्राप्त हुई थी।

मई में मैंने आपको संग्रह के संबंध में लिखा था, पर उत्तर की प्रतीक्षा न कर सकी। फिर ग्रीष्मावकाश पर पहाड़ी गाँवों में घूमती रही, जहाँ पर पहुँचने की सुविधा ही नहीं थी। जुलाई में जबसे लौटी हूँ, तब से अब तक मलेरिया से पीड़ित हूँ, इसी से आपको न लिख सकी, कुछ स्वस्थ होते ही मैं संग्रह ठीक करके भेज दूँगी, परंतु उसकी प्रतीक्षा करने पर संभवत: आप 'हृदयजी' के श्राद्ध दिवस तक कुछ न छपा सकें, क्या यह उचित न होगा कि आप किसी और पुस्तक पर कार्य प्रारंभ कर दें?

मेरे लिए तो यह गौरव की बात होती कि मेरी ही भेंट पहली हो, पर यदि यह न हो सके तो किसी की भेंट तो रहे।

यदि जनवरी तक भेज सकी तो यही संग्रह छप जाएगा। आशा है, आप प्रसन्न होंगे।

'यामा' कुछ दिन बाद भेज सकूँगी। पिछली प्रतियाँ समाप्त हो चुकने के कारण नई जिल्द बँध रही है।

शुभेच्छुका
महादेवी

(२)

मान्य भाई,

पत्र मिला, उत्तर में विलंब होने में मेरी अस्वस्थता थी। आशा है आप क्षमा करेंगे। आपकी योजना मुझे पसंद आई, क्योंकि निरे विचारों में मेरी भी आपकी तरह अरुचि है, हमारे विचार जब तक क्रिया की कसौटी पर नहीं कसे जाते, तब तक उनके खरेपन की स्थापना उचित नहीं।

संग्रह मैं शीघ्र भेजने का प्रयत्न करूँगी, कुछ कविताएँ पहले ही मैं दे चुकी हूँ, अन्यथा उन्हीं में से देने का प्रयास करती। उत्कृष्ट में से चुनाव करना ही होगा। इस संबंध में भी आप मत देंगे।

आशा है, आप प्रसन्न होंगे।

१, एल्गिन रोड
प्रयाग

शुभेच्छुका
महादेवी

(३)

तारीख : ९/३/४२

मान्य भाई,

स्थानीय हिंदी मंदिर में एक सज्जन आपका संदेश लाए थे। उनके द्वारा उत्तर भिजवा चुकी हूँ। पिछले सप्ताह पत्र भी लिख चुकी हूँ, परंतु अब तक आपका निश्चय न जान सकी।

कोई ग्रंथ रचना मिल गई हो तो अच्छा ही है, क्योंकि उस दशा में मैं यहाँ के कार्य से अवकाश पाकर अपको संग्रह भेज सकूँगी।

आशा है, आप प्रसन्न होंगे।

शुभेच्छुका
महादेवी

चौथा पत्र उनकी अन्य रचनाओं के संदर्भ में है, जो उन्होने 'विक्रम'

में प्रकाशनार्थ भेजी थी, उसमें तात्कालीन राजनैतिक परिस्थिति पर (वर्ष ४३) उनकी टिप्पणी और 'बापू' के प्रति उनकी श्रद्धा-भावना देखते ही बनती है।

(४)

इंदौर,
२६/०३/४३

मान्य भाई,

आपके पत्रों का उत्तर न देने के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। किसी अवज्ञा के कारण नहीं, किंतु मेरे पत्र कहीं पहुँच ही नहीं पाते। आज के राजनीतिक वातावरण में मेरे जैसे व्यक्ति का संदेह की परिधि से बाहर रहना सभंव नहीं। उस पर देहात में मेरा रिलीफ काम चल रहा है। इन्हीं सब कारणों से मुझे बहुत सी असुविधाएँ सहनी पड़ती हैं। पत्र न लिखने पर दूसरे इन असुविधाओं से बच जाते हैं। आशा है, आप मेरी स्थिति को समझकर क्षमा करेंगे।

(वर्ष १९४२ में अगस्त क्रांति के बाद)

मैने प्रयाग से आपके पास कविता भेज दी थी, परंतु मुझे संदेह है कि वह आप तक पहुँचने में बहुत समय लेगी। यहाँ मैं विशेष कार्यवश केवल एक दिन के लिए आई हूँ। सभंव है, यहाँ से भेजने पर शीघ्र मिल जाए, यही सोचकर उसकी एक प्रतिलिपि और भेज रही हूँ।

बापू के व्रत के दिनों में मैं इक्कीस कविताएँ लिखी थीं, क्योंकि मेरी प्रार्थना का रूप कुछ और हो ही नहीं सकता था—यह उनमें एक है।

आपको अच्छी लगे तो 'विक्रम' के लिए छापिएगा, अन्यथा सूचना-पत्र मिलने पर मैं और कुछ भेज दूँगी।

आशा है, आप प्रसन्न होंगे।

मैं कल ही प्रयाग लौट जाऊँगी। अत: उत्तर वहीं दीजिएगा।

शुभेच्छुका
महादेवी

यों महादेवीजी अनेक बार हमारे घर 'भारती भवन' भी पधारी हैं। मुझे तो मेरे बचपन की एक छोटी सी स्मृति है, जो आज तक मुझे मन-मस्तिष्क में ताजा है। जब वे वर्ष १९६८ में उज्जैन 'विक्रम विश्वविद्यालय' (इसके संस्थापक भी व्यासजी ही थे) के 'दीक्षांत समारोह' में आई थीं और घर भोजन के लिए पधारी थीं। शुभ्र-वसना महादेवी की वह सरस्वती सी छवि मेरे बाल-मन पर बरसों अंकित रही। लेकिन महादेवीजी के इन चार पत्रों के साथ पिता के पत्र-संग्रह में एक पत्र और इन्हीं पत्रों के साथ 'नत्थी' मिला है। इसे यहाँ देना समीचीन तो नहीं होता, लेकिन इस पत्र का रहस्य चूँकि मैं खोजी स्वयं भी नहीं खोज पा रहा हूँ, सोचता हूँ शायद कोई पाठक, पुराना विद्वान् खोज सके या प्रकाश डाले, इसलिए दे रहा हूँ। विवाद खड़ा करना मेरा लक्ष्य नहीं है। हाँ, सत्य का शोधक हूँ और सत्य खोजना मेरा लक्ष्य अवश्य है। इस पत्र का रहस्य अबूझ न रह जाए एतदर्थ दिया जा रहा है।

(५)

दिल्ली
८:३० बजे प्रात:
१०/०१/५१

परम प्रिय मित्र,

जय भारत! जय राम राज्य!

१. आपकी भेजी पुस्तक मिली—धन्यवाद। उसके बारे में नोट लिखा जाएगा और आपकी मार्मिक भूमिका भी आपके नाम से उर्दू तर्जुमा (तरजमा) छपेगी। हम लोग ज्योतिष विद्या की उन्नति चाहते हैं और ज्योति के उपासक हैं।

२. दिसंबर शाम (शनिवार) को श्री महादेवी वर्मा एम.ए. प्रयाग से यहाँ के लिए चलने के को तैयार हुई थीं। सारा सामान ले लिया। आठ बक्से दो पुलंदे। घरवालों ने समझा कि वह तो सर्वथा कहीं जा रही हैं। रोक दी गईं। क्या वे कभी और कब तक यहाँ आ सकेंगी? इसका उत्तर विचारपूर्वक दीजिएगा। उनके बिना भविष्य का काम हो ही नहीं सकता। वे विधवा हैं। मेरे साथ गंधर्व विवाह करने का पत्र भेज चुकी हैं। यह भेद अभी प्रकट न होने पावे। उत्तर की प्रतीक्षा है।

भवदीय
स्वामी पारसनाथ

'रियासत' प्रेस
दिल्ली

पुनश्च, नए विधान में एक यह कानून बन गया है कि गैर शादीशुदा आदमी—नायब सदर, सदर और वायसराय नहीं बन सकता। इसलिए शादी करनी ही होगी। फिर वे तो मेरी 'अर्धक अर्धांग' हैं।

—पारसनाथ

यह पत्र भी महादेवीजी के पत्रों के साथ संलग्न था। यह स्वामी पारसनाथ कौन है? और यह पत्र स्व. पं. व्यासजी ने महादेवी वर्मा के पत्रों के साथ ही क्यों संलग्न रखा? क्या महादेवीजी ने कभी अपने वैधव्य के बाद पुनर्विवाह का सोचा था? या यह पत्र इस अजाने आदमी का अनर्गल प्रलाप है, अपने मन से गढ़ी 'राजकमल चौधरी सी कहानी' है, पर यह रियासत प्रेस (जिसे उसने 'रियास्त प्रेस' लिखा है) कहाँ था? पता तो दिल्ली का दिया है। और ये सज्जन कौन थे? क्या हिंदी-उर्दू के कोई बड़े लेखक थे? जो नाम बदल-बदलकर पत्र लिख रहे हैं? ये सब बातें सोचने को विवश करती हैं। वाचस्पति पाठक, गंगा भाई, रामजी भाई, रतनलालजी जोशी होते तो पूछता भी?—वे महादेवी के निकट थे! क्या है 'हिंदी की मीरा' का यह अबूझ रहस्य? और कौन थे ये पारसनाथ?

साअ
अपर महानिदेशक
दूरदर्शन एवं आकाशवाणी, आकाशवाणी महानिदेशालय
संसद मार्ग, नई दिल्ली-११०००१
rajshekhar.vyas@yahoo.co.in

गिटजे

मूल : **कोनार्ड बसकेन ह्यूट**

अनुवाद : **भद्रसैन पुरी**

उस समय यदि कोई हमारे बचपन और लड़कपन के वर्षों की बाबत—ब्रगीटा वान डर प्लास के नाम और रूप की बाबत पूछता तो हम उत्तर देते—'तुम्हारा किससे मतलब है? हमें किसी ऐसी महिला को जानने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ।' यदि इसका प्रत्युत्तर होता—'क्या, तुम ब्रगीटा वान डर प्लास को नहीं जानते? वह सिलाई करनेवाली दर्जिन जो वर्षों तुम्हारे माता-पिता की सेवा में रही?' तो हम पुन: चिल्लाहट से उत्तर देते—'आह, तुम्हारा मतलब गिटजे, हमारी दर्जिन से है! हाँ, हम वास्तव में उसे अच्छी तरह जानते हैं। हमें कैंची और कागज का टुकड़ा दो तो हम तत्काल उससे मिलती-जुलती तसवीर बना देते हैं, परंतु हमें किस तरह मालूम हो कि ब्रगीटा वान हर प्लास हमारी गिटजे ही थी।'

तुम्हें विश्वास होना चाहिए कि हमने गिटजे के अतिरिक्त उसे किसी दूसरे नाम से नहीं पुकारा। भविष्य में मालिक और मालकिन बननेवाले बचपन से ही नौकरों को दुर्भाग्य और हालात के प्रति रईसी तथा अच्छी शिक्षित उदासीनता दिखाने लग जाते हैं, परंतु कामगारों के बच्चों की भी रईसी भावनाएँ होती हैं। हम, जो धनी लोगों के बच्चे थे, ने कभी नहीं सोचा था कि गिटजे ब्रगीटा का ही संक्षिप्त नमूना हो सकती थी या हमारी दर्जिन अपने को परिवार के नाम की विशिष्टता दे सकती थी। फिर भी तुम कह सकते हो कि वान डर प्लास काफी विनीत और सादा प्रतीत होता है।

सप्ताह में तीन-चार बार अपने व्यापार का अभ्यास करने हमारे माता-पिता के घर वह आती थी। नीली और सफेद धारीदार जनाना कुरतियों की मरम्मत करना उसके नियमित व्यापारों में से एक था; कुरतियों की बाँहों में अद्‌भुत ढंग से बड़े छिद्र करने में हम सक्षम थे। दूसरे अवसरों पर वह ऊपर नर्सरी में कपड़ों पर लोहा करती थी। नर्सरी की खिड़कियाँ बाग की ओर खुलती थीं और उसमें खंड-खंड करनेवाला और वस्त्र-प्रेस भी लगा था। वह सुंदर ढंग से लोहा करती थी। जब वह इस्तिरी आग पर रख देती और सबकुछ ठीक-ठाक होता तो इस्तिरी करने का तख्ता उठाती जो दीवार के साथ झुका हुआ होता था, और उसको सामान्य तरीके से रखती अर्थात् पुल की भाँति, एक सिरा मेज के ढाँचे पर और दूसरा कुरसी की पीठ पर। इस प्रकार गिटजे मध्य में खड़ी होती तो हाथ चलाने और कपड़े नीचे रखने के लिए काफी जगह मिल जाती थी। तख्ते को आधे गीले ऊनी कंबल से ढक देती तो हमें फलालीन की वास्कट में ढकी हुई पतली औरत की याद दिलाती। गिटजे को हमारी बहनों की नाचने की पोशाक को लोहा करते देखने से और अधिक मनोरंजक कुछ नहीं था। उनको गीला और काफी लंबा करने के बाद वह पोशाक को लेती और इस्तिरी करनेवाले तख्ते को एक सिरे से उठाकर उसपर फ्रॉक को सरका देती थी। फिर लोहे के लाल गरम बरतन से इस्तिरी को बाँईं तरफ से उठाती, थोड़ी देर अपने गाल के पास यह देखने के लिए कि वह उतनी गरम हो गई है जितना वह चाहती है, ले जाती थी और दाईं ओर रखे कपड़े पर हलके से फेरती और फिर अपना वास्तविक कार्य आरंभ कर देती थी। नाचने की पोशाक जो पहले मुलायम, गंदी, निराकार ढेर थी, इस्तिरी के छूने से कुरकुरी होकर आकारवाली बन जाती थी। गिटजे के अतिरिक्त यदि कोई दूसरा बहनों की पोशाक इस्तिरी करता तो नाचघर जाते समय वह आधी संतुष्ट होती थी।

महीने में एक बार गिटजे नीचे नाश्तेवाले कमरे में अपने परिश्रम की प्रदर्शनी करती थी। यह तब होता था जब कपड़े घर आते थे। जिस परिवार से हम संबद्ध थे, वह बहुत बड़ा था और परिणामस्वरूप हमारी धुलाई भी बड़ी थी। तब हम एक बड़ा धुलाई वर्णन व्युत्पत्ति रूप में नहीं बल्कि तकनीकी रूप से करने का इरादा करते थे। गिटजे की सहायता परित्याग करने योग्य नहीं थी। वह बच्चों के कमरे की कम पवित्र स्थिति से नीचे आई और पूरी तरह साफ नाश्ते के कमरे में हमारी माँ के पास बैठ गई। माँ और गिटजे को मेजपोश और चादरें बिछाते देखने से और मनोहारी कुछ नहीं था। वे इनको अत्यंत सफाई से करती थीं, सफाई ही नहीं, बल्कि शक्ति और शौक से! वह आयताकार मेज के किनारों पर खड़ी होती थी। बिना बिछाई चादरें धीरे-धीरे कम होते ढेरों में बाईं ओर पड़ी थीं और फैलाई हुई बढ़ते ढेरों में दाईं ओर। मध्य में उसकी वर्तमान बलि पड़ी थी—कई गज लंबी, मृत्यु की तरह पीली, जबकि वे अपनी अंगुलियों के बीच चिकटी भरती थीं। उनकी कोहनियाँ उनकी बगलों में ध्यानपूर्वक दबी हुई थीं; दाएँ पैरों को आगे और शरीर के ऊपरी भाग को पीछे किए हुए दो औरतें—मालकिन एवं नौकरानी खड़ी थीं और जितनी जल्दी फैला सकती थीं, फैला रही थीं, फैलाती ही जाती थीं—सादगी और कर्तव्य-संतुष्टि की मूर्ति और हॉलैंड के घरेलू जीवन की तसवीर बनी खड़ी थीं। हमारे लिए जो निराशाजनक, परंतु जिसे हम अत्यंत रुचि से देखते थे, प्रश्नों-का-प्रश्न था—क्या गिटजे हमारी माँ को अब मेज

पर खींचेगी या हमारी माँ उससे जल्दी करेगी और उसको खींचेगी? और हमारी माँ चादर गिरा देगी या गिटजे अपनी अंगुलियाँ खोलेगी और आत्मरक्षा के लिए केवल प्रवृत्त प्रतिबंधक उपाय के तौर पर हमारी माँ से कोई खेल खेलेगी? या चादर बीच में से फट जाएगी? क्या गिटजे एक किनारा अपने हाथ में रखेगी और माँ दूसरा? और क्या इस दु:खद मामले का अंत होगा—गिटजे का सिर अँगीठी से टकराकर या माँ का लकड़ी की पट्टियों से टकराकर और इस प्रकार दोनों को चोट लगेगी!

इस बीच निपुण औरतें निश्चल और संतुष्ट एक-दूसरे के सामने होने का प्रयत्न करती खड़ी रहीं। दाएँ हाथ का ढेर बड़ा, और बड़ा होता गया और दोपहर के भोजन से पहले बाएँ हाथ का लुप्त हो गया।

शरद् ऋतु शुरू होते ही सब्जियों और फलों को रक्षित करने का समय आ गया। उसकी कृपा और गिटजे की सहायता से बहुत चीजें हमारे घर में लाई गईं, विशेषकर फलियाँ। फ्रेंच फलियों को काटकर परोने में, जो हम गिटजे के मार्गदर्शन में बचपन में करते थे, थोड़ी सहायता करना, यदि जरूरत पड़े, हमने कभी भी अधिक श्रेष्ठ नहीं समझा था। बाद में, जब चाकू के खतरे से हमपर विश्वास हो गया तो हमने भी बड़ी फलियों में, जिनको संभालना अति कठिन होता है, जैसा तुम जानते हो, सहायता की। इसके अतिरिक्त, हमने गिटजे को अनगिनत सफेद बंद गोभी के फूलों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर पीपे में डालते देखा। फिर लकड़ी के डंडे से उनको नीचे दबाया और अंत में उनको तख्ते, जो लगभग पीपे जितना चौड़ा था, के ऊपर भारी पत्थर रखकर ढक दिया। यह सब पीपे में पड़े माल में कहावत के विरुद्ध खमीर पैदा करने के लिए किया गया—'जो पीपे में पड़ा है, उसमें खमीर नहीं उठेगा।'

जो पीपे में पड़ा है वह खट्टा नहीं होता, ऐसा लोग कहते हैं, और इस कहावत में कही गई बात में आशायुक्त विश्वास को भविष्य में नष्ट करना नीचता होगी। गिटजे भी इसी अंदाज में बोली जब भी उसने लीनडर्ट वान कुइक के बारे में सोचा था और ऐसा कभी-कभी होता था। तुम पूछते हो—क्यों? ठीक है, यहाँ हमारा वृत्तांत एक नया मोड़ लेता है। वह कई वर्षों और दिनों तक इसका प्रेमी रहा था। इस समय जब हम बात करते हैं, उनकी सगाई का रजत विवाह उनके बहुत पीछे रह गया। 'अविश्वासनीय'! तुम पुकारोगे। ठीक है, मैं तुम्हें श्रद्धा नहीं दिला सकता। हम तुम्हें विश्वास दिलाते हैं कि यह सूक्ष्म तौर पर परीक्षित और अच्छी तरह से प्रमाणित तथ्य है कि ब्रगीटा वान डर प्लास सत्ताईस वर्षों तक लीनडर्ट वान कुइक की प्रेमिका रही थी और फिर? लीनडर्ट वान कुइक की हैजे से पचपन वर्ष की आयु में मृत्यु हो गई थी।

मछली उठाने का सामान बनाना उसका व्यवसाय था। हम उसकी छोटी सी दुकान से मछली पकड़ने की छड़ी, धागा, काँटे काफी मात्रा में खरीदा करते थे और निर्धन होते हुए भी वह कभी-कभी गिटजे के नाते हमें उपहार दिया करता था। उस समय हमें वास्तव में मालूम नहीं था कि वह निर्धन का जीवन व्यतीत कर रहा था। इसके विपरीत हमारा विचार था कि वह वाकई धनी आदमी था। उसकी छोटी सी दुकान में बड़ा भंडार था—मछली पकड़ने के यंत्रों का ईर्ष्या की हद तक प्रचुर भंडार। उसकी मछली पकड़ने की छड़ियाँ, नकली समीर मक्खियाँ, फेरीदार मक्खियाँ, घूमनेवाली मक्खियाँ, गोबरैले तथा अन्य प्रकार की ललचानेवाली वस्तुएँ देखकर क्या मुँह में पानी नहीं आता था? रखने के लिए बनाए गए छपे टिन के डिब्बों के अतिरिक्त हमें कोई वस्तु इतनी कीमती और वांछित नहीं लगती थी। ये डिब्बे घुड़सवार सेना के अधिकारी की तरह, जैसे वह गोलियों का बक्स ले जाता है, पट्टी के साथ कंधों पर लटकाए जाते थे, परंतु यदि हमें लीनडर्ट के दयनीय हालात का ज्ञान होता तो हम उसके उपहारों को स्वीकार नहीं करते। बच्चे केवल अभिमानी ही नहीं होते, वे लालची भी होते हैं। देखो, छोटे भाई या बहन की मृत्यु के बाद, बच्चे किस प्रकार उसके खिलौने हड़प कर लेते हैं—असली बालों एवं आँखोंवाली गुड़ियाएँ, जादू की लालटेनें, गुनगुनाते लट्टू—और मिलकीयत के लिए झगड़ा करके बाँट लेते हैं। पता चल जाता है कि बचपन में ही प्रौढ़ लोग हैं। उनमें सदा भेड़िये का स्वभाव होता है। जब वे पहले-पहल पैतृक संपत्ति का बँटवारा करते हैं तो तुम देखते हो कि किस तरह लालच से आक्रमण करते हैं जब तक वे इस दौरान समाज की जरूरतों के अनुसार अपने व्यवहार को ठीक नहीं करते।

लीनडर्ट और गिटजे का जोड़ा देखने में अच्छा नहीं था, मगर अप्रिय भी नहीं था। वे उन प्रेम करने योग्य लोगों में से थे जिनके साथ दो दिन रहने के बाद भी उनके रूप पर कोई ध्यान नहीं देता। उन दोनों के चेहरों से उनके चरित्र और ईमानदारी की झलक टपकती थी। गरमियों की छुट्टियों में, दिन चढ़ने से पूर्व, लीनडर्ट हमें मछली पकड़ने के लिए ले जाता था; फिर उसकी दया का पारावार नहीं रहता था। वह हमें घंटी बजाकर जगाता और जब तक हम तैयार न हो जाते, वह शांतिपूर्वक गली के द्वार पर हमारी प्रतीक्षा करता; हमारे लिए पीपों को ले जाता, वह स्थान बताता जहाँ ढेर सी मछलियों पकड़ी जा सकती थीं; हमें अपनी लई और कीड़े देता और मछलियों का बड़ा भाग भी। वह शानदार ढंग से मछली पकड़ता था। यह कल्पना मत करो कि हर कोई जैसे चाहे मछली पकड़ सकता है। मछली पकड़ने में विशेषकर स्वाभाविक प्रवृत्ति और लंबे अनुभव की जरूरत होती है। लीनडर्ट ने अपने सौभाग्य और कारनामों की कहानियाँ सुनाईं कि किस तरह उसने मीठे पानी के छोटे से गड्ढे से तीन-तीन पाउंड की मछलियाँ एक-एक करके पकड़ी थीं; ईल मछली की कहानी सुनाई कि किस प्रकार उसकी दुम काटकर उसे काँटा निकालना पड़ा था; पाईक मछली की कहानी जो उसकी छड़ी लेकर तैर गई थी; रुधिर स्रावित टेंच मछली की कहानी जो नवजात शिशु की तरह होती है; बड़ी ईल मछली

की कहानी जिसकी खाल उसने प्रात:काल छीली थी और सायंकाल उसने इसकी अंगुली को काट लिया था! अलिफ लैला की कहानियों की तरह हमने सब कहानियों पर विश्वास किया। दो बातें विशेषकर उससे हमने सीखीं। पहली यह कि धागे में नया काँटा कैसे लगाते हैं और उसको राँगे की महीन पत्तर से कैसे ढकते हैं ताकि तैरनेवाली लकड़ी से सीधा लटका रहे जोकि मछली पकड़नेवाले के लिए अनिवार्य स्थिति है ताकि वह जान सके कि कितना मुँह मारा गया है। दूसरा पाठ जो गिटजे के आज्ञाकारी प्रेमी के स्कूल में सीखा, यह था कि जब मछली वाकई काट चुके और मछली पकड़नेवाला पकड़ने के लिए तैयार हो, उसे धक्का देकर पटके, न कि खींचकर। दूसरी स्थिति में जब छोटी मछली अच्छी तरह नहीं काटती तो वह पीछे की ओर मुँह में काँटा लिये तैरती है और तुम्हें केवल रुधिर स्रावित गलफड़ा की प्राप्ति होती है। पहली स्थिति में तुम जंतु को पलटने का अवसर देते हो और इस प्रकार भयानक शक्ति से सींगनुमा वस्तु उसके खुले मुँह में काँटे को बैठा देती है।

गिटजे का रूप वसंत ऋतु की तरह था जब वह तेईस वर्ष की थी और अपने प्रेमी लीनडर्ट के साथ रह रही थी। हमारी अपेक्षा वह स्वयं इसे अधिक बता सकता था, यदि मृत्यु उसे छीनकर न ले जाती। इस समय जब हम बात कर रहे हैं, उसकी स्त्रियोचित सुंदरता मिट चुकी है। तब वह पचास वर्ष की थी—लंबी, कोमल और दुर्बल सी, सरदी, जुकाम और जोड़ों के दर्द से ग्रसित, हमेशा अपने साथ घटिया नसवार और टोंका फली से भरी चाँदी की डिबिया रखती थी। अब जबकि हम बड़े और बुद्धिमान् हो गए हैं, हम इन विलक्षण चीजों को हास्यकर नहीं समझते। इसके विपरीत, लीनडर्ट की विवाहिता जो पचास वर्ष की थी और जो टोंका फली को अपनी जेब में रखती थी, उसे इस छोटी कहानी की नायिका बनाने का हमें अधिकार है। जबकि बच्चा होते हुए और अपनी कला के मूल तत्त्व को मन में न तोलते हुए, हम गिटजे के कठिन लंबे विवाह और उसकी पुरानी सेविका संबंधी शिकायतों पर हँसते थे; क्योंकि बच्चे केवल अभिमानी नहीं होते, वे लालची भी होते हैं—वे भी निष्ठुर होते हैं। वे दुर्भाग्य पर हँसते हैं जिसको वे समझते नहीं। हमने ऐसी निष्ठुरता नहीं की। यह किसी प्रकार के स्वभाव के सौजन्य से नहीं था परंतु चूँकि लीनडर्ट की अंत्येष्टि तक हमें उसके और हमारी दर्जिन के असली संबंधों का पता नहीं चला था। इसलिए हमें हैरानी ही नहीं हुई थी कि वह हमारे साथ इतनी दयालुता से पेश क्यों आता था!

तुम विश्वास करो कि लीनडर्ट की मृत्यु और गिटजे से लंबी मुलाकात पर हमें हँसी नहीं आई थी। इससे साबित होता है कि यदि हमें पहले पता चल जाता तो हम गिटजे और उसके प्रेमी का निस्संदेह बड़ा मजाक उड़ाते। हमारे पूछने पर माँ ने बताया था, "क्या कारण है कि आज गिटजे नहीं आई?"

"लीनडर्ट की मृत्यु हो गई है, वह इस समय दफनाया जा रहा है।"

साअ

प्रेम के रंग

कविता

• ममता चंद्रशेखर

प्राध्यापिका व लेखिका। अब तक १६ पुस्तकें व २०० से ज्यादा शोधपत्र व आलेख प्रकाशित, जिनमें से तीन कविता-संग्रह हैं। ५ पुस्तकें महाविद्यालयों में पढ़ाई जा रही हैं। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग लेखन पुरस्कार, रानी दुर्गावती अवार्ड व श्रेष्ठ वक्ता अवार्ड से पुरस्कृत।

रेत की चादर

सागर के किनारे
दूर-दूर तक
बिछी रेत की
खूबसूरत चादर पर
पड़ते पाँव के चिह्न।

मानो वक्त की
कोख पर
टपकते हुए नन्हे लम्हे
अपने वजूद को
तलाशते हुए चिह्न।

कैफियत तो
लिख दी है जीवन रूपी
डगर में मगर
वक्त रूपी लहरें फिर से
मिटा देगीं ये चिह्न।

अंतत: चलता रहेगा
ये अनवरत सिलसिला
हैसियत का
कोरी रेत पर
बनते बिगड़ते रहेगें चिह्न।

सुकून का शृंगार

प्रेम के सीप में
मुसकराते भाँति-भाँति
के मानवीय रिश्ते
आत्मा की चिर प्यास को
तृप्त कर
करते हैं सुकून का शृंगार।
प्राणी मात्र
जीवन के विविध रंगों
आकृतियों व रिवाजों से परे
प्रेम का दामन
थाम कर
करते हैं सुकून का शृंगार।

आत्मीय प्रेम के
आगोश में
स्वप्न सुनहरे बुनते
इबादत की
चुनरी ओढ़कर
करते हैं सुकून का शृंगार।

परमात्मा रचित
इहलोक के
समूचे संसारी रिश्तों
में लिपटे विविध चेहरे
प्रेम के रंग में
करते हैं सुकून का शृंगार।

साअ

रेडियो कॉलोनी
इंदौर-४५२००१
दूरभाष : ०९९७७९९३३१०

नए आक्रांता

• सुरेश ऋतुपर्ण

जाने-माने रचनाकर। 'अकेली गौरैया देख' (कविता-संग्रह), 'मुक्तिबोध की काव्य-सृष्टि' (आलोचना), 'हिंदी की विश्व यात्रा', 'हिंदी सब संसार', 'पं. कमला प्रसाद मिश्र की काव्य-साधना' सहित कई पुस्तकें प्रकाशित। 'ट्रिनिडाड हिंदी भूषण, आदि अनेक सम्मानों से सम्मानित।

वे बार-बार आते हैं
करते हुए सरहदों को पार
आते हैं वे बार-बार
कपड़े बदलकर
लेकर नए-नए हथियार

उनके मुखौटे के पीछे छिपे चेहरे
पहचान नहीं पाते हैं हम
या फिर पहचान कर भी
जताना नहीं चाहते
क्योंकि मुखौटों के पीछे
वे जो हैं
मुखौटों के बिना
हम भी वही हैं

वे जो करना चाहते हैं
हम भी वही चाहते हैं करना
हमें उनके कंधों की तलाश है
ताकि हमारे अपने लोग
पहचान न सकें हमारी नीयत
और उनकी बर्बरता के पीछे
आसानी से छुप जाते हैं
हमारे लालच भरे अत्याचार

वे जब भी आए
हमें लूटने आए थे
मुट्ठी भर लोग
और हमारे बीच छिपे
लुटेरों के साथ
बना लेते थे एक बड़ी सेना

जान लेते थे घर के सभी राज
खुल जाती थी रात के अँधेरे में
नगर-द्वार की बड़ी भारी सी साँकल
और वे धड़धड़ाते घुस आते थे
बेगुनाह, निरीह, अशक्त लोग
समझ नहीं पाते थे
कौन हैं वे?
कैसे आए हैं?
बाहर वालों के बहाने
अपनों से लुटे हैं हम हर बार!

एक बार फिर
लौट आए हैं वे
नए नाम, नए काम
नई सज-धज के साथ
पहले से ज्यादा
महीन हथियारों के साथ
खिलौनों की तरह
थमा दिए हैं जो हमारे हाथों में

अब तो सरहदों को भी
पार करना जरूरी नहीं रहा
वे कभी भी और
कहीं भी बैठे-बैठे
कर लेते हैं
हमारे भविष्य का सौदा

उन्होंने चुरा ली है
हमारे आमों की मिठास
सेवों की लाली
रोटी बदल गई है पिज्जा में
और सेवइयों को दे दिया है
एक नया नाम—नूडल्स

धरती हमारी है
बीज उनके हैं
पसीना हमारा है
फसल उनकी है
लागत हमारी है
मुनाफा उनका है
नदियाँ हमारी हैं
मिनरल वाटर उनका है

किसान के भाग्य में है
सूखा और अकाल
नियति है कर्ज की मार झेलना
और फिर जहर खा मरना
उनकी तिजोरी में यूरो और डालर

इनके लॉकर में बेनामी संपत्ति के कागज

भूमंडलीकरण के महामंडलेश्वर
देते हैं प्रवचन
समझाते हैं—
पूरी दुनिया के बाजार
तुम्हारे लिए खुले हैं
लूट सको तो लूटो और
हमारी उदारता के गुन गाओ

सदियों पहले
इन्हीं उपनिवेशवादियों ने
बनाया था हमारे
किसानों को गिरमिटिया मजदूर
सात समंदर पार ले जा
किए अमानुषिक अत्याचार

राम-नाम ले काटा उन्होंने
अपना शोषण भरा वनवास
पर अब तो घर बैठे-बैठे
हम हो गए उनके गुलाम

हमारा टमाटर
सड़क पर सड़ता है
कि बोतलबंद सॉस की कीमत
ऊँची बनी रहे
गोदामों में पड़े-पड़े
सड़ जाता है अनाज
कि बीयर में उठ सके
ज्यादा गहरा झाग

जो उगाता है मिठास सबके लिए
उसके लिए नमक के भी लाले पड़े हैं
प्याज कम हो या ज्यादा
हर बार रुलाता है उसे

दुनिया के बाजार
हो रहे हैं गुलजार
इधर खुलते जा रहे हैं
नेताओं के बड़े-बड़े मॉल
पड़ोस की छोटी दुकान वाला
बिसाती
लुटा-पिटा बैठा है परेशान

झूठ को सच बनाते
विज्ञापनों की ठगिनी माया ने
मोहावृत कर दिया है जीवन
लोग अपने में सिमटकर
घोंघे हो गए हैं

उन्हें अब किसी की भी जरूरत नहीं रही
पहले बतियाते-बतियाते
कट जाता था लंबा सफर
और बन जाते थे
मित्रता के अटूट रिश्ते
अब तो जी.पी.एस. के
द्वारा खोज लिया जाता है रास्ता
फेस-बुक पर
अलाप लिया है अपना-अपना राग
आते-जाते रहते हैं
आत्म-प्रचार के संदेश

किसी से प्रार्थना करने की
नहीं रही जरूरत
फोटो उतरवाने के लिए
सेल्फी ने बना दिया है आत्मनिर्भर
आत्मनिष्ठ व्यक्तियों की भीड़ में
कोई किसी को नहीं पहचानता

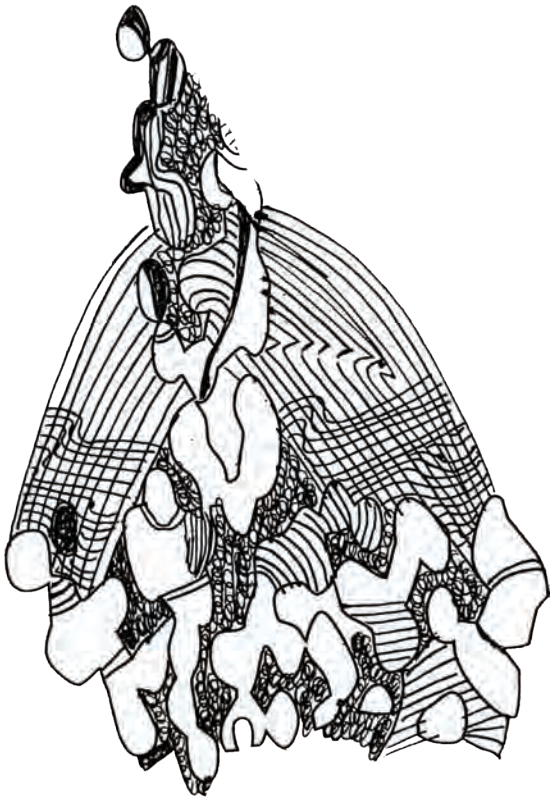

पहचान के लिए अब चाहिए
आधार कार्ड

क्या अजब वक्त आया है
जो जितना ज्यादा बिकाऊ
उतना ही श्रेष्ठ है
साहित्य के मेलों में
खो गया है प्रेमचंद का हामिद
उसे एक अदद चीमटे की
तलाश है
जो कहीं नहीं मिलता
उसकी दादी की उँगलियाँ
अब भी जल रही हैं

वैसे ही मर रही है सुखिया
और घीसू-माधव
कफन की तलाश में
भटक रहे हैं।
सूखी रोटी पर
हरी मिर्च और प्याज
गरीब के लिए
विलासिता बन गई है

दुखिया दास कबीर
आज भी जाग रहा है
जागना उसकी मजबूरी है
जो सोचेगा वह सोएगा कैसे?
रोना कबीर की नियति है
क्योंकि उसकी आँख का पानी
नहीं मरा है।

और जिसकी आँख का पानी
मर गया हो
वह कैसे रोएगा?
कुछ दिनों की बात और है
रोने का सुख भी
हमसे छीन लिया जाएगा
लोग रोबोट बनते जा रहे हैं
और रोबोट रोना नहीं जानता!

साअ
२२१, प्रभावी अपार्टमेंट्स,
सेक्टर १०, प्लॉट नं. १०
द्वारका, नई दिल्ली-११००७५
दूरभाष : ९८१०४५३२४५
rituparna.suresh@gmail.com

जाकी रही भावना जैसी

● संध्या मेनन

मंदिर में जब भी एक हफ्ते की भागवत होती है तो आसपास की महिलाओं को बड़ी ही खुशी होती है—सत्संग तो मिलेगा ही, एक हफ्ते तक खाना बनाने से छुट्टी, क्योंकि मंदिर में एक हफ्ते तक अन्नदान, वह भी तीनों टाइम। मकसद तो होता है कि भक्तजन बिना किसी सांसारिक चिंता के भगवत लीला गान सुनें, भगवान् के सान्निध्य में रहें। लेकिन देखने में तो यही आता है कि भागवत कथा के समय भीड़ हो न हो, अन्नदान का समय होते ही न जाने कहाँ से लोग आ जाते हैं और आएँ भी क्यों न, भगवान् का प्रसाद है, बड़े भाग्य वालों को मिलता है। हाँ, कुछ बड़ी-बूढ़ी महिलाएँ जरूर होती हैं, जो मन लगाकर सातों दिन कथा सुनती हैं, भजन भी गाती हैं और तृप्ति कथा सुनती हैं, भगवत प्रसाद भी ग्रहण करती हैं।

लेकिन एक है हमारी पड़ोसन भानुमती अम्मा, जिन्हें सब भानु अम्मा कहते हैं। सुबह-ही-सुबह नहा-धोकर डोलची हाथ में लिये पहुँच जाती हैं मंदिर भागवत सुनने। थोड़ा सुनती हैं, थोड़ा सो लेती हैं और अगर मिल जाए अपने जैसा कोई तो लग जाती हैं बहू की बुराई करने कि 'मैं जब घर से निकली तो मुझसे चाय हो भी नहीं पूछा।'

बहू रचना काफी समझदार है। पिछली बार पंचायत चुनाव में खड़ी भी हुई, लेकिन बस थोड़े से ही वोटों से हार गई। तो चुनाव प्रचार के समय जब लोगों का उनके घर आना-जाना हुआ तो भानुमती अम्मा को रास नहीं आया और सभी के सामने रजनी को भला बुरा कह देती, लेकिन रजनी इतनी समझदारी से बात सँभाल लेती कि वे खुद ही चुप हो जातीं। खाने में जरा से देर हो जाए तो हल्ला मचा देती थी।

'अरे इलेक्शन से फुरसत मिले तब तो खाना मिले।'

रजनी काजू फैक्टरी में क्लर्क थी घर का सारा काम कर, खाना-पीना बनाकर जाती थी। पिता की परचूनी की दुकान थी। वे और बच्चे अपनी माँ से काफी खुश थे। बस दिक्कत थी तो भानुमित अम्मा को। छुट्टी बाले दिन रजनी घर पर रहती तो पूरे दिन कमियाँ छाँटती रहतीं।

जमाने का ये न जाने कैसा दस्तूर है कि जो माँ ममता की मूरत होती है, जिसे अपने बेटे की लाख कमियाँ भी नजर नहीं आती, जो उसकी आँख का तारा होता है, लेकिन सास की पदवी पाने ही वो धैर्य, वो सहन शीलता, वो ममता, हर छोटी बड़ी गलितयाँ को माफ कर देने का बढ़प्पन सब कुछ न जाने कहाँ खो जाता है। बेटा अगर अपनी पत्नी को प्यार करे तो उनसे सहा नहीं जाता जो कि जब वे स्वयं बहू थी तो उन्होंने अपने पिता से चाहा भी होगा।

कुछ लेख पत्रिकाओं और किताबों में प्रकाशित। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से बी.ए. ऑनर्स और दर्शनशास्त्र से स्नातकोत्तर। केरल विश्वविद्यालय से हिंदी में पी-एच.डी.। संप्रति अतिथि व्याख्याता, के.एस.एम देवस्वम बोर्ड कॉलेज।

सास बनी माँ की छवि भी बड़ी निराली होती है जो बेटी को प्यार करते दमाद को देखकर फूली नहीं समाती और कहती है कि ये तो उनके पिछले जन्म के कर्मों का फल है जो उन्होंने ऐसा दमाद मिला है। वहीं बहू को प्यार करते अपने बेटे को देख असहनीय पीड़ा का अनुभव करती हैं।

जो भी हो रजनी बहुत ज्यादा पढ़ी लिखी तो नहीं थी, लेकिन समझदारी की बात वो ऐसी करती थी कि जिसका कोई सानी नहीं। कभी-कभी तो सूक्तियों में बात करती थी जीवन के अनुभवों से पगी हुई। कहती कि सभी लोग इस दुनिया में अपना-अपना कर्म काटेंगे। जो जैसा बोएगा वो वैसा ही फल काटेगा। घर का कोई भी फैसला हो तो उसका कहना होता कि 'जब भी मिट्टी पर पैर रखो तो जमा कर रखो। इधर-उधर मत भटको-लोगों की बातों पर ध्यान दिए बिना अपनी मंजिल पर नजर रखो तभी तुम मुकाम हासिल करोगे।'

एक अच्छी माँ के ही विचारों का फल था कि उसके बेटे को विदेश में एक अच्छी नौकरी मिल गई और बिटिया को बहुत अच्छा घर और दमाद और उसकी पढ़ाई भी जारी थी। भानुमती अम्मा काफी दिनों तक बीमार रहे। चलने-फिरने से लाचार बिस्तर पकड़ लिया जिस बहू को वो दिन-रात कोसा करती थीं आज बिस्तर पर पड़े-पड़े उसकी को पुकारती रहती थीं, "मेरी रजनी··· थोड़ी चाय पिला दे, रजनी बेटा खाना खिला दे।"

रजनी ने भी किसी चीज की कमी नहीं होने दी। भानुमती अम्मा खाट पर पड़े-पड़े मल-मूत्र विसर्जन करती। उनके रूम में प्रवेश करके लगता ही नहीं था कि किसी रोगी का कमरा है। रजनी कमरे को साफ-सुथरा और सुगंधित रखती थी जीवन के अंतिम छड़ों में काफी कुछ भुगतकर भानुमती इस दुनिया से विदा हुई।

रजनी का सुमनस उसकी आस्था, विश्वास, परिवार के प्रति उत्तरदायित्व और स्त्री सशक्तीकरण के सही अर्थ को समझता है। उसका

व्यक्तित्व आज के समय में हर स्त्री के लिए अनुकरणीय है। अपने पैरों पर खड़े होने और करियार के प्रति समर्पित होने का ये अर्थ बिल्कुल भी नहीं है कि आप अपने परिवारिक उत्तरदायित्व से विमुख हो जाएँ। हमारी आने वाली पीढ़ी चाहे बेटा हो या बेटी उसे संस्कार और मूल्य परिवार से ही मिलते हैं और इन सब में माँ एक महती भूमिका निभाती है। सास बनकर जो उम्मीदों वो अपनी बहू से लगाती है वही सबकुछ पहले उसे अपनी बेटी को भी सिखाए तो आज कुकुरमुत्तों की तरह उग रहे वृद्धाश्रमों की जरूरत ही न पड़े। रजनी आज भी यही कहती है कि भगवान ने उनका भी देखा और मेरा भी देखा। इसीलिए ऊपर वाले ने मेरे दोनों बच्चों की जिंदगी बना दी सब कुछ मंगलमय हो गया। भरो सारखो उस अंतर्यामी पर। वो सबकी भावना को समझते हैं, तदनुसार फल देते हैं। जाकी रही भावना जैसी···

साअ

वृंदावनम्, मुतुपिलाकाड ईस्ट
पोरूवजी पी.ओ.,
कोल्लम-६९०५२० (केरल)
दूरभाष : ९७४४ ५२४२१७

लग रहा है ज्यों···

गजल

● तेजेंद्र शर्मा

सुपरिचित लेखक। मृत्यु के इंद्रधनुष, स्मृतियों के घेरे, नई जमीन नया आकाश, मौत··· एक मध्यांतर सहित अनेक कृतियों के साथ वक्त के आईने में, हिंदी की वैश्विक कहानियाँ, कभी अपने कभी पराई आदि अनेक आलोचना ग्रंथ भी प्रकाशित। ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेथ द्वितीय द्वारा एम.बी.ई. उपाधि सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

जरा रफ्तार अपनी कम करो तो

तुम्हारे साथ चलकर थक गया हूँ
जरा रफ्तार अपनी कम करो तो

न नित अखबार में आया करो तुम
बनाना दुश्मनों को कम करो तो

तुम्हारे नाम से जलते हैं सब ही
दिखाना चेहरा अपना कम करो तो

सभी इनसान इक जैसे नहीं हैं
कभी आलोचना कुछ कम करो तो

बदल न पाओगे फितरत किसी की
ये अपनी कोशिशें तुम कम करो तो

हम ऐसे क्यों हो जाते हैं?

हम ऐसे क्यों हो जाते हैं?
है दिल में बसाया जिसका दिल
दिल क्यों उसका तड़पाते हैं?
हम ऐसे क्यों हो जाते हैं?

चाहें जिनको तन से मन से
बस अहं से दु:ख दे जाते हैं
हम ऐसे क्यों हो जाते हैं?

जिसकी खातिर सबको छोड़ें
उसके भी नहीं बन पाते हैं
हम ऐसे क्यों हो जाते हैं?

जिससे चाहें मिलना हर पल
तकलीफ उसे पहुँचाते हैं
हम ऐसे क्यों हो जाते हैं?

जिन आँखों में पाते जन्नत
उनमें ही आँसू लाते हैं
हम ऐसे क्यों हो जाते हैं?

जब जानते हैं, वो ही सच है
फिर उसको क्यों झुठलाते हैं
हम ऐसे क्यों हो जाते हैं?

चुपचाप हैं

रास्तों को क्या हुआ, चुपचाप हैं सुनसान हैं
लग रहा है ज्यों सड़क पर खुल गए श्मशान हैं!

दूरियाँ दो गज की कैसे प्यार में संभव भला
घर में बैठे हैं मगर सब लग रहे अनजान हैं।

एड़ियाँ फटने लगीं हैं, खून भी रिसने लगा
गाँव तो जाना ही है, खतरे में चाहे प्राण हैं।

शहर हो चाहे कोई भी, इक सा खतरा हर जगह
लोग कितने चल बसे, बस इस खबर पर कान हैं।

कब्र ने भी इस तरह अपना बढ़ाया दायरा
एक ही में जाने कितने रह रहे मेहमान हैं।

साअ

३३-ए, स्पेंसर रोड, हैरो और व्हील स्टोन,
मिडिलसेक्स, एच.ए.३ ७ ए.एन. (यू.के.)
दूरभाष : ००-४४-७४००३१३४३३
tejinders@live.com

हिंदी ललित निबंध के समर्थ हस्ताक्षर पं. विद्यानिवास मिश्र

• पूजा शर्मा

हिंदी निबंध साहित्य के विकास-क्रम में ललित-निबंधों का प्रणयन अन्यतम उल्लेखनीय घटना है। वैयक्तिकता, आत्माभिव्यंजना, गहन अनुभूत्यात्मक सत्यता, संवेदनात्मकता एवं शैलीगत लालित्य से संपृक्त ललित निबंधों की रचना का श्रीगणेश आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के कर-कमलों से हुआ। कालांतर में अनेकानेक प्रतिभावान निबंधकारों ने उनकी इस परंपरा को प्रसिद्धि के शिखर तक पहुँचाया। इस दिशा में शुक्लोत्तर हिंदी निबंध परंपरा के समर्थ हस्ताक्षर पं. विद्यानिवास मिश्र (१९२६-२००५ ई.) का नाम बड़े ही आदर एवं सम्मान के साथ लिया जाता है। आचार्य द्विवेदी की ललित-निबंध परंपरा को आगे बढ़ाने वाले कुबेरनाथ राय, विवेकी राय, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' जैसे अन्य निबंधकारों में पं. विद्यानिवास मिश्र अपने भावात्मक, व्यक्तिव्यंजक एवं सुललित निबंधों के कारण सर्वथा विशिष्ट पहचान रखते हैं।

हिंदू धर्म और भारतीय संस्कृति के मर्मज्ञ व्याख्याता पं. मिश्र ने आचार्य द्विवेदी की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए भी अपनी विलक्षणता द्वारा समूचे हिंदी ललित निबंध साहित्य को एक नवीन भावभूमि पर लाकर खड़ा किया। 'छितवन की छाँह', 'कदम की फूली डाल', 'तुम चंदन हम पानी', 'आँगन का पंछी और बनजारा मन', 'मैंने सील पहुँचाई', 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है', 'बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं', 'तमाल के झरोखे से', 'परंपरा बंधन नहीं', 'संचारिणी', 'अस्मिता के लिए', 'लागौ रंग हरी', 'गाँव का मन', 'भोर आवाहन', 'शेफाली झर रही है', 'अंगद की नियति', 'अग्निरथ', 'भ्रमरानंद के पत्र' आदि उनके निबंध-संकलन सर्जनात्मक गद्य से अभिमंडित हैं। पं. विद्यानिवास मिश्र का निबंधकार रूप एक ओर जहाँ शास्त्रीय ज्ञान से आपूरित है, वहीं दूसरी ओर उसमें लोक-जीवन का भी सहज-स्वाभाविक प्रस्फुटन हुआ है, जिसकी स्पष्ट छवि उनके निबंधों में दृष्टिगोचर होती है। वस्तुत: मिश्रजी के निबंध ललित निबंधों की लगभग सभी विशेषताओं से संपुष्ट हैं।

ललित निबंधों की पहचान के रूप में प्रसिद्ध विश्व के प्रथम निबंधकार फ्रांसीसी-लेखक मोंतेइन की यह उक्ति—'*It is myself I portray*' ('मैं अपने को ही चित्रित करता हूँ') विद्यानिवास मिश्र के ललित-निबंधों के संदर्भ में भी सटीक बैठती है। पं. मिश्र के निबंधों में उनके व्यक्तित्व की छाप स्पष्टत: विद्यमान है, जिसके फलस्वरूप विविध विषय-वस्तुओं को लेकर लिखे गए उनके निबंधों का केंद्रगत विषय एक ही प्रतीत होता है और वह है—'मैं'—निबंधकार का 'मैं'। अपने निबंधों के माध्यम से उन्होंने अपने हृदयगत भाव-विचार, राग-द्वेष, हास्य-विनोद, व्यंग्य-कटाक्ष आदि की अभिव्यक्ति की है और वह भी इस प्रकार से कि ये भाव-विचार-संवेदनाएँ उनकी न रहकर स्वानुभूति की विवृत्ति की प्रक्रिया द्वारा सामान्य जन की बन गई हैं। उनके निबंधों में दृश्यमान इसी वैयक्तिकता एवं आत्मीयता के कारण उनकी निबंध-शैली में अंतरंगता (बतकही शैली) परिलक्षित होती है। 'मेरा गाँव-घर' शीर्षक निबंध में मिश्रजी की यह आत्माभिव्यक्ति 'नॉस्टेल्जिक' विन्यास के साथ प्रस्तुत हुई है—

मैं अगर अजनबी शहरों और परिवेशों में आत्मीयता की पुकार लगा पाता हूँ, तो इसलिए कि मेरा एक गाँव-घर ऐसा है, जो बराबर मेरे साथ है। और मैं हताश होना चाहूँगा, तो भी होने नहीं दिया जाऊँगा। उस गाँव-घर के कारण ही कहीं भी रहूँ, बेघर नहीं होने पाऊँगा, सभी प्रकार के वनवास आवास बनते रहेंगे।

यहाँ यह अवश्य उल्लेखनीय है कि अपने निबंधों में लगातार अपने भावों एवं विचारों को प्रस्तुत करते हुए भी अहं-भाव का निषेध करके अपने प्रभाव को बनाए रखने में पं. मिश्र सफल रहे हैं। ललित निबंधकार के लिए यह एक दुष्कर कर्म है, क्योंकि इस बात की पूरी संभावना रहती है कि निबंधकार का अहं पाठक को क्षुब्ध कर दे या किसी भी क्षण ऊबा दे। अपने अहं को आगे किए बिना आत्मकथानात्मकता बनाए रखना

केवल एक सभर व्यक्तित्वधारी ललित निबंधकार के लिए ही संभव है। विद्यानिवास मिश्र का यही सभर व्यक्तित्व उनके निबंधों में दृष्टिगत होता है, जिसके कारण वे पाठकों के समवयसी सहचर बनकर अपनी अंतरंगता का परिचय देते हैं।

पं. मिश्र ने अपने निबंधों में विषयगत वैविध्य के समायोजन द्वारा इतिहास, पुराण, आख्यान, वेदादि से होते हुए समसामयिक विषयों को भी अंतर्भूत करने का प्रयास किया है। संस्कृत वाङ्मय के प्रकांड महाकवियों द्वारा उल्लिखित अनगिनत प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से उन्होंने अनुभूतिजन्य सत्यता एवं विराट् मानवीय भावावेगों का प्रतिपादन किया है। 'हरसिंगार', 'छितवन की छाँह', 'अस्ति की पुकार हिमालय', 'शिरीष का आग्रह', 'अग्निरथ' ऐसे ही कुछेक निबंध हैं। विराट् भारतीय संस्कृति-साधना के अभिन्न अंग माने जाने वाले इन सामान्य पर महत्त्वपूर्ण प्रतीकों के जरिए पं. मिश्र ने आधुनिक मानव-जीवन के लिए अत्यावश्यक शाश्वत मूल्यों—सात्त्विक एवं दैवत कोटि के प्रेम, त्याग व कर्ममय जीवन आदि को रेखांकित किया है। 'शिवजी की बारात', 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' आदि निबंधों में पुराण-आख्यान के कथा-प्रसंगों को आधार बनाया गया है। युगीन संदर्भ में राजनीति तथा समाज-तंत्र पर कुठाराघात करने हेतु निबंधकार ने 'अभी-अभी हूँ, अभी नहीं', 'अपनी प्रासंगिकता', 'शिवजी की बारात', 'पत्र इंटेलेक्चुअल भैया के नाम परंपरा जीजी का', 'हिप्पी पंथ' जैसे निबंधों की रचना की है। इस प्रकार पं. मिश्र ने अपने निबंधों में नितांत साधारण संदर्भ-युक्त विषयों को साधन-रूप में प्रस्तुत करते हुए महान् उद्देश्यों की सिद्धि की है।

भारतीय संस्कृति के प्रति पं. मिश्र की अविचल आस्थावादिता उनके ललित निबंधों में प्राणवंत हो उठी है। 'अस्ति की पुकार हिमालय', 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है', 'हरसिंगार' जैसे निबंधों में उन्होंने भारतवर्ष के अतीत गौरव का स्मरण करते हुए देश की भव्य संस्कृति व विरासत का पुनरावलोकन किया है तथा जनमानस में सांस्कृतिक सौहार्द की भावना जाग्रत् करने की कोशिश की है। 'अस्ति की पुकार हिमालय' में 'हिमालय' को हमारी अस्मिता का प्रतीक मानते हुए उन्होंने उसे हमारी सिसृक्षा (सृजनशीलता) के मूर्त-रूप की आख्या से विभूषित किया है।

यह न भूगोल है, न इतिहास है, न भूगोल या इतिहास का प्रहरी, यह तो बस है, मात्र अस्ति है, न भूत, न भविष्यत्। हिमालय का यह अस्ति रूप हमारी सिसृक्षा का ही मूर्तिकरण है।

मिश्रजी के ललित निबंधों में उनकी रागात्मक एवं सौंदर्यमयी दृष्टि स्पष्टत: लक्षित होती है। ललित निबंधों की प्रकृति के अनुकूल लयात्मकता, अनुरागमय कल्पना तथा भाव-विह्वल संवेगों की उपस्थिति उनके निबंधों की पहचान है। 'हरसिंगार', 'छितवन की छाँह', 'अग्निरथ', 'कहो कैसा रंग है', 'शिरीष का आग्रह' आदि निबंध इसी कोटि के हैं। इनमें आचार्य द्विवेदी की एतद् विषयक निबंध-परंपरा का नवीन रूप उभरकर आया है। द्विवेदीजी के निबंध जहाँ इतिहास या नृवंशशास्त्र का रुख करते हैं, वहीं मिश्रजी के निबंध साहित्यिक कल्पना एवं निजी राग-विराग में विहार

बी.ए. ऑनर्स (हिंदी), एम.ए. (हिंदी), स्लेट उत्तीर्ण (हिंदी), यू.जी.सी नेट-जे.आर.एफ. उत्तीर्ण (हिंदी), एम.फिल.। संप्रति गुवाहाटी विश्वविद्यालय, असम के हिंदी विभाग में पीएच.डी. शोध-प्रज्ञा के रूप में अध्ययनरत।

करते रहते हैं। अत: पं. मिश्र अधिक संवेदनात्मक, अधिक 'पर्सनल' एवं 'पोयटिक' प्रतीत होते हैं। लेखक के मन के भाव जब शब्द बनकर फूट पड़ते हैं, तब उनमें निहित अनुभूति में तीव्रता और अधिक बढ़ जाती है। 'छितवन की छाँह' निबंध-संकलन में संकलित 'हरसिंगार' निबंध की निम्नांकित पंक्तियाँ इसी बात की प्रत्यक्ष प्रमाण हैं—

सात्त्विक प्रेम की असली पहचान है हरसिंगार, ऊपर से बहुत ही सामान्य और मटमैला, पर भीतर गहरा मजीठी, जहाँ छू जाय वहाँ ही अपना रंग चढ़ा दे, इतना भीतर-भीतर चटकीला। इसीलिए हरसिंगार की ढुरन पाकर उत्कंठा और तीव्र हो जाती है, मान और बलवान् हो जाता है और दर्द और नशीला।

संस्कृत-साहित्य के प्रकांड पंडित एवं भागवत-महाभारत-गीतगोविंद के रसान्वेषी समीक्षक विद्यानिवास मिश्र ने अपने निबंधों में संस्कृत की अभिजात चेतना एवं लोक-तत्त्व की प्रांजलता का विराट् समन्वय साधित किया है। उनके ललित-निबंधों का प्रधान उत्स ग्राम-चेतना से लबालब उनके जीवन की गहरी जड़ों में है, पर साथ ही उनकी संस्कारनिष्ठ संस्कृत-विद्वता भी लोक-जीवन की सरसता एवं सहजबोधगम्यता के साथ यथास्थान विराजमान है। उनके निबंधों में एक तरफ जहाँ संस्कृत-भाषा के स्तोत्र एवं प्राकृत के चुनिंदा पदों की विद्यमानता है, तो वहीं दूसरी तरफ ग्रामीण लोक गीतों की एक अंतर्निहित धारा सदा प्रवहमान रही है। यही विलक्षण विशेषता उन्हें आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी से पृथक् करती है। आचार्य द्विवेदीजी के निबंधों में संस्कृत की भव्य परंपरा युगीन भाव-बोध के साथ संपृक्त होकर अभिव्यंजित हुई है, जबकि मिश्रजी ने संस्कृत-साहित्य की परंपरा को आंशिक आधार-रूप में ग्रहण किया है और उसके साथ लोक-तत्व का समायोजन करते हुए उसे एक समन्वयात्मक स्वरूप प्रदान किया है। उनके 'हरसिंगार' शीर्षक निबंध का आरंभ हरिणी छंद के एक श्लोक से होता है, यथा—

सखि स विजितो वीणावाद्यै कयाप्यपरस्त्रिया
पणितमभवत्ताभ्यां तत्र क्षपाललितं ध्रुवम्।
कथमितरथा शेफालीषु स्खलत्कुसुमास्वपि
प्रसरति नभोमध्येऽपीन्दौ प्रियेण विलम्ब्यते॥

वहीं दूसरी ओर 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' में लोक-गंधी शैली से संपृक्त लोक-प्रचलित गीत की कुछ पंक्तियाँ रह-रहकर निबंधकार के मानस-पट पर गूँज उठती हैं—

मोरे राम के भीजै मुकुटवा;

लछिमन के पटुकवा
मोरी सीता के भीजै सेनुरवा
त राम घर लौटहिं।

मिश्रजी वैदिक सूक्तों से लेकर लोक-गीतों तक प्रवहमान भारतीय भावधारा के प्रबुद्ध संवेदनशील अध्येता हैं। इसीलिए भारतीयता को विकृत करनेवाली चिंतन-पद्धतियों से भी उनको बार-बार टकराना पड़ा है। उनके ये निबंध मूलत: इसी टकराहट की ही उपज हैं। उनके निबंधों में लक्षित इसी विराट् समन्वय के संदर्भ में प्रख्यात विद्वान् डॉ. रामचंद्र तिवारी का कथन अवलोकनीय है—

विद्यानिवास मिश्र के व्यक्तित्व में संस्कृत साहित्य की अभिजात रस-चेतना एवं लोक-जीवन की स्वच्छंद प्राणमयी रसधारा का अद्‌भुत सामंजस्य है। आप आधुनिक जीवन-बोध को आत्मसात् करने के लिए निरंतर सजग रहे हैं। आपके आत्मव्यंजक निबंधों में लोक-जीवन के सहज उच्छ्वास एवं भारतीय संस्कृति की कालजयी मांगलिक दृष्टि के साथ ही बदलते जीवन-मूल्यों के औचित्य के प्रति एक सतर्क प्रश्नचिह्न की मुद्रा भी लक्षित होती है।

पं. मिश्र के ललित निबंधों में निहित हास्य-व्यंग्य उनके सार्वकालिक युगबोध का परिचायक है। उनके निबंधों में हास्य-व्यंग्य का स्पर्श अभिव्यक्ति के लालित्य और अंतरंगता का परिणाम अवश्य है, पर गद्यात्मक अभिव्यक्ति के बीच से चुभता व्यंग्य अपनी तल्खी के साथ पाठक को सोचने पर मजबूर कर देता है। निबंधकार मिश्रजी का एक रूप 'भ्रमरानंद' का है, जिस नाम से उन्होंने व्यंग्य-विनोद किया है। उनकी इसी विनोदप्रवणता के कारण वे भारतेंदु-युग के प्रतापनारायण मिश्र जैसे निबंधकारों की परंपरा से जुड़ जाते हैं। पं. मिश्र के व्यंग्य-लेखन पर टिप्पणी करते हुए प्रसिद्ध कृति-समीक्षक इंद्रनाथ मदान ने लिखा है—

विद्यानिवास मिश्र का व्यंग्य-लेखन भारतीय संस्कृति या आंचलिक संस्कृति का निरूपण करने के बाद सामाजिक असंगतियों को आधार बनाता है और व्यंग्य (Irony) के माध्यम से इनकार करता है।

उनके हास्य-व्यंग्य-प्रधान निबंधों में 'शिवजी की बारात', 'अभी-अभी हूँ, अभी नहीं', 'अपनी प्रासंगिकता', 'गुजर जाती है धार मुझ पर भी', 'अस्ति की पुकार हिमालय', 'हिप्पी पंथ', 'पत्र इंटेलेक्चुअल भैया के नाम परंपरा जीजी का' आदि उल्लेखनीय हैं। ऐसे निबंधों में मिश्रजी ने न केवल बुद्धिजीवियों, सफेदपोश नेताओं, परोपदेश देने वालों, राजभाषा आयोग जैसे संस्थानों में भ्रष्टाचार फैलाने वालों को व्यंग्य के कठघरे में खड़ा किया है, बल्कि राष्ट्र के मोहांधकार को विच्छिन्न कर जन-जागृति विस्तारित करने का भी प्रयास किया है। 'तुम चंदन हम पानी' निबंध-संकलन में संकलित व्यंग्य-विनोदप्रधान निबंध 'शिवजी की बारात' में राजनीतिक-सामाजिक शासन-तंत्र में परिव्याप्त अराजकता पर प्रकाश डाला गया है। पं. मिश्र ने इसमें पॉलिटिकल शब्दावली द्वारा पौराणिक आख्यान को युगीन संदर्भ में प्रस्तुत करते हुए एक सफल 'पेरोडी' की रचना की है । दूसरी ओर 'बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं' निबंध-संकलन में संकलित 'अभी-अभी हूँ, अभी नहीं' निबंध में निबंधकार चतुर्दिक् मूल्यहीनता, धार्मिक भ्रष्टाचार एवं आधारभूत आदर्शों की उपेक्षा पर फबते-कसते दिखाई पड़ते हैं—

आदर्शों के गुफामंदिर में पैठता हूँ तो हर मूर्ति, हर शिल्पपट्टिका, हर चँदोवा, हर खंभ, हर वार्जा, हर मेहराब पर एक तख्ती लगी पाता हूँ 'बिकाऊ है'। देश की संस्कृति का प्रत्येक उपदान नियति की रेशम डोरियों में बंध रहा है।··कुछ चीजें देसी खपत के लिए हैं, उनमें मंदी आ गई है, गांधीवाद, अहिंसा, पंचशील, मातृभूमि, हिमालय, भागीरथी, बलिदान, आहुति, मानवतावाद, इनका स्टाक बहुत पड़ा हुआ है, इसलिए इनकी कीमत औनी-पौनी करके 'बिक्री पर छूट' की मुनादी कर दी गई है··

वस्तुत: विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में उभरी हास्य-व्यंग्य की यह शैली भारतेंदुयुगीन परंपरा का ही प्रवाह है; भेद सिर्फ इतना है कि तब कटाक्ष भी मीठी छुरी की महीन मार की तरह किया जाता था। पर मिश्रजी के समय तक आते-आते परिस्थितियाँ बदलीं, स्वातंत्र्योत्तर मोहभंग का विस्तार हुआ और उसी के साथ व्यंग्य की तल्खी भी उभरकर सामने आई।

पं. मिश्र के ललित निबंधों में उनकी बोलती हुई पीड़ा का साक्षात्कार होता है। जीवन के अनुभव, आशा-आकांक्षा के विलय हो जाने पर निबंधकार के मन पर पड़ी व्यथा की अमित छाप उनके निबंधों में सजीव हो उठी है। 'मेरा गाँव-घर', 'अपनी प्रासंगिकता' जैसे निबंध इसी चेतना के परिणाम हैं। उनके निबंध तत्कालीन शासन-तंत्र, सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था एवं अधोगामी जीवन-मूल्यों से उत्पन्न पीड़ा एवं क्षोभ के मूर्तित रूप हैं। 'अभी अभी हूँ, अभी नहीं' में मिश्रजी का यही क्षोभ प्रतिफलित हुआ है, जहाँ उन्होंने टीस भरे शब्दों में अपनी सृजनशीलता की व्यर्थता को उजागर किया है—

किसके लिए लिखा जाए, किससे कुछ कहा जाए, कौन पढ़ता है, कौन सुनता है और पढ़े भी, सुने भी तो फर्क क्या पड़ता है? जड़चिंतन को नकारनेवाला चिंतन भी तो कोई बाती उकसा नहीं पाता।

हृदय की व्यथा का यह मर्मोद्‌घाटन उनकी वैयक्तिक अनुभूति के धरातल से ऊपर उठकर सर्वजन की व्यथा व क्षोभ के रूप में परिणत हो गया है।

पं. मिश्र ने अपने निबंधों में ग्रामीण सौंदर्य-बोध एवं शहरी बौद्धिक चिंतन का समंजित स्वरूप प्रस्तुत किया है। यद्यपि उनके निबंधों में उनका ठेठ गाँव का मन रह-रहकर प्राण भरता रहता है, तब भी शहरी शिक्षा-व्यवस्था से प्राप्त ज्ञान-संपदा उनके जन्मजात संस्कारों से एकमेव होकर तद्रूप हो गई है। 'अपनी प्रासंगिकता', 'मेरा गाँव-घर' जैसे निबंध लेखक की इसी भावना के शब्दांकित रूप हैं, जहाँ ग्राम-चेतना से सिक्त अतीत की मजबूत पकड़ उन्हें वर्तमान के बेघरपन का उत्तर देने की प्रेरणा देती है। शहरी जीवन का बौद्धिक चिंतन उन्हें अपनी ग्रामीण संस्कृति को भूलने नहीं देता, वरन् वे उससे और अधिक जुड़ जाते हैं। पं. मिश्र ने अपने

निबंधों में उस विलीयमान ग्रामीण संस्कृति को अभिव्यक्ति दी है जो हमारी नस-नस में सुंदरता, स्निग्धता, विश्वास व अपनत्व का संचार करती है। अपने निबंधों में विघटित जीवनादर्शों का वर्णन कर उनके माध्यम से मिश्रजी ग्रामीण रस-चेतना एवं शहरी बौद्धिक-चेतना के इसी विराट् समन्वय के प्रति प्रयत्नशील रहे हैं।

भाषा-शैलीगत दृष्टि से मिश्रजी आचार्य द्विवेदी की संस्कृतनिष्ठ परंपरा में आते अवश्य हैं, पर उनमें एक विशेषता बढ़कर है और वह है उनकी लोक-शैली से संपृक्त काव्यगंधी गद्यात्मकता। वस्तुत: मिश्रजी की गद्य-शैली के मुख्यत: तीन रूप लक्षित होते हैं-विचारप्रधान परिष्कृत गद्य-शैली, वर्ण्य-वस्तु के प्रत्येक घटक को विस्तार से प्रस्तुत कर देनेवाली वर्णनात्मक शैली और वैदिक सूक्तों को लोकगीतों के रस से सिक्त करती हुई प्रवहमान लोक-गंधी गद्य-शैली। उनके द्वारा प्रयुक्त प्रांजल खड़ीबोली में तत्सम, तद्भव एवं देशज शब्दों की चामत्कारिक उपस्थिति, अलंकार-वैभव एवं प्रसंगानुकूल लय-भंगिमा परिलक्षित होती है। कहीं भावानुकूल प्रसंगों के लिए मसृण व काव्यात्मक शैली का प्रयोग मिलता है, जैसे *'जब तक रात उतरने को नहीं होती, जब तक चाँद उतरने को नहीं होता, जब तक झिल्ली की झंकार की गूँज धीरे-धीरे दूर होने को नहीं होती और जब तक पपीहा सोने को नहीं होता''* (हरसिंगार), तो कहीं उपहास-कटाक्ष के लिए सपाट एवं व्यंग्यवेष्टित शैली का प्रयोग देखा जाता है—*'सरकार की तो बस सरकार है, सरकार यानी कुरसी की दौड़, जहाँ जीत लपककर बैठनेवाले की है, दौड़नेवाले की नहीं।'* (अभी अभी हूँ, अभी नहीं)

भारतवर्ष की महिमामय सांस्कृतिक चेतना एवं व्यापक विश्व-दृष्टि के आलोक में आधुनिक वस्तुवादी जीवन-दर्शनों को परखने के कारण पं. मिश्र एक नूतन मानवीय भावबोध का विकास करने में सफल सिद्ध हुए हैं। वैयक्तिक भावानुभूति की प्रभविष्णु अभिव्यंजना, सार्वकालिक सांस्कृतिक मूल्यबोध, अधोपतनोन्मुख जीवन-दर्शन पर तीखा व्यंग्य तथा शैलीगत लालित्य और सुकुमारता मिश्रजी के निबंधों के प्राणतत्त्व हैं। इन्हीं विशेषताओं ने पं. मिश्र के ललित निबंधों को अधिकाधिक प्रासंगिक बना दिया है। समूचे हिंदी साहित्य के साथ ही विश्व साहित्य के मंच पर भी मिश्रजी एक सफल एवं सशक्त ललित निबंधकार के रूप में सदा-सर्वदा स्मरण किए जाते रहेंगे।

बसेरा रेसिडेंसी
मदर टेरेसा रोड, लंकेश्वर
गुवाहाटी, कामरूप (मेट्रो)
गुवाहाटी यूनिवर्सिटी, गुवाहाटी-७८१०१४
दूरभाष : ८६३८९६४५१०
poojasarma2015@gmail.com

साहित्य अमृत (मासिक)

(फॉर्म नं. ४, नियम ८ के अनुसार स्वामित्व संबंधी विवरण)

समाचार-पत्र का नाम	:	साहित्य अमृत
प्रकाशन अवधि	:	मासिक
भाषा जिसमें प्रकाशित होनी है	:	हिंदी
प्रकाशन स्थान	:	४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-११०००२
संपादक का नाम	:	लक्ष्मी शंकर वाजपेयी
नागरिकता व पता	:	भारतीय, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-११०००२
प्रकाशक का नाम	:	पीयूष कुमार
नागरिकता व पता	:	भारतीय, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-११०००२
मुद्रक का नाम व पता	:	न्यू प्रिंट इंडिया प्रा.लि., ८/४-बी, साहिबाबाद इंडस्ट्रियल एरिया, साइट-IV, गाजियाबाद-२०१०१०
उन व्यक्तियों के नाम व पता, जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझीदार या हिस्सेदार हों	:	पीयूष कुमार, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-११०००२

मैं, पीयूष कुमार, एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी के अनुसार दिए गए विवरण सत्य हैं।

नई दिल्ली, २० फरवरी, २०२१ — पीयूष कुमार

जनश्रुतियों का नगर चंबा

• देवी प्रसाद तिवारी

चंबा यात्रा का पहला पड़ाव था पठानकोट, स्टेशन के बाहर निकलते ही यह एहसास हो जाना स्वाभाविक ही है कि आप अंतरराष्ट्रीय सीमाओं से अधिक दूर नहीं हैं। खैर, मुझे तो चंबा जाना था पहाड़ों में, पहाड़ों के बीच बलखाती रावी को देखने, देवदार की छाव में कुछ पल गुजारने, लेकिन विश्राम गृह पहुँचने पर पता चला कि पठानकोट के किसी गाँव में जाना है, जहाँ से भारत-पाकिस्तान की सीमा नजदीक ही है। मैं भी बहुत उत्साहित हुआ, जल्दी-जल्दी तैयार हुआ, फिर जलपान करके सीधे गाड़ी में जा बैठा, कुछ देर चलने पर लीचियों का सुंदर बाग दिखाई दिया, मेरे मन की स्थापित अवधारणा में हलचल हुई कि लीचियाँ तो मुजफ्फरपुर में ही होती हैं, दरअसल इस अवधारणा की निर्मिति में नागार्जुन की काव्य पंक्तियों का विशेष योगदान है, उन्होंने अपनी पुण्यभूमि की स्मृति में क्या खूब लिखा था, "याद आता मुझे अपना वह 'तरउनी' ग्राम, याद आती लीचियाँ, वे आम।" खैर, चेकपोस्ट पर चौकन्ने सरदार जवानों को देखकर बिना किसी इंडीकेटर के यह तय किया जा सकता है कि यह रास्ता अवश्य ही सीमा तक जाता होगा।

रावी के पुल पर पहुँचने के साथ ही गाड़ी की गति में कुछ परिवर्तन हुआ, मेरे लिए रावी नई-नई थी, अपलक निहारता रहा, तभी किसी सहयात्री ने बताया कि रावी यहाँ से कुछ और दूर भारतीय सीमा में बहने के बाद पाकिस्तान को चली जाती है। हाँ, रावी बिल्कुल ठहरी हुई थी, बिल्कुल शांत, बेहद क्लांत जैसे किसी वेदना के भार से दबी जा रही हो। दरअसल यह वही रावी है, जिसे हमारी ऐतिहासिक स्मृतियाँ 'परुष्णी' नाम से जानती हैं। स्थानीय सहयात्री से मिली जानकारी के अनुसार रावी पर यह पुल कुछ वर्षों पूर्व ही प्रसिद्ध फिल्म अभिनेता विनोद खन्नाजी के व्यक्तिगत प्रयासों से ही संभव हो सका था, इससे पहले बरसात के दिनों में रावी के उस पार के लोगों का संपर्क पठानकोट से लगभग टूट जाता था। गाड़ी अब पक्की सड़क छोड़कर पगडंडियों पर हिचकोले खा रही थी, आखिर कई मोड़ मुड़ने के बाद सीमा के आखिरी गाँव में पहुँचे, नाम था 'ढिंढ़ा', जी हाँ 'ढिंढ़ा बॉर्डर'।

बॉर्डर से पाकिस्तानी चौकियाँ साफ देखी जा सकती हैं, बीच में

सुपरिचित लेखक। पीएच.डी. (हिंदी साहित्य) काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी। शोध विषय : आधुनिक हिंदी कवियों का लोक भाषा साहित्य।

कँटीले तारों की बाड़ बनी हुई है, जिसके उस पार भी ढिंढ़ा गाँव के दिलेर किसान खेती के लिए जाते हैं। गाँव के एक किसान मित्र ने हम सबका जिस गर्मजोशी से स्वागत किया, उसे भूल पाना संभव नहीं। जिज्ञासावश मैंने उनसे पूछ लिया कि बाड़ के उस पार जाकर खेती करने में आपको डर नहीं लगता? उनका जवाब एक सच्चे किसान का जवाब है, 'डर क्यों लगेगा साहब, जमीन भले ही बाड़ के उस पार हो, है तो हमारी और अपनी जमीन में खेती करने में क्या डर। हाँ, जाँच-पड़ताल के बाद जाते हैं और काम खत्म करके वापस आ जाते हैं।'

ढिंढ़ा सीमा पर तैनात एक जवान की बात आज तक ताजा है। 'पर मालूम होती हैं', मैंने यों ही पूछ लिया कि 'उधर की चौकियाँ हाइट पर हैं क्या?' 'नहीं साबजी, उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, मिनट भर में दाब दिया जाता है।' ये भारत के जवान का जज्बा है, जो प्रत्येक भारतीय को गौरवान्वित करता है। वास्तव में ढिंढ़ा की यह यात्रा अचानक जरूर थी, पर अनायास नहीं। लौटते हुए ऐसा लगा, जैसे कुछ छोड़कर आ रहे हैं। गाड़ी जल्द ही पगड़ियों को छोड़कर पक्की सड़क पर आ गई, अगला पड़ाव था पंजाब और जम्मू-कश्मीर की सीमा पड़नेवाला एक गाँव कठियालपुर, पोस्ट नरोट जैमल सिंह।

गाँव कमोवेश वैसा ही था, जैसा की एक गाँव को होना चाहिए। गाँव से बस दो-चार कदम चलने पर ही एक-एक छोटी सी नहर है, जिसके इस पार पंजाब का यह गाँव और उस पार जम्मू-कश्मीर। नहर के नजदीक पहुँचते ही सामान्य मोबाइल नेटवर्क का गयाब हो जाना आम बात है, जिसे स्थानीय नागरिक रुचि लेकर बताते हैं। खैर, ढेर सारी छोटी-बड़ी, लिखित-अलिखित जानकारियों के साथ पुनः रावी को पार करते

हुए पठानकोट पहुँचे, जहाँ से तय यात्रा की शुरुआत हो गई अर्थात् चंबा के लिए निकल पड़े। थोड़ी ही देर में पहाड़ी सिहरन महसूस होने लगी, अब हम ऊँचाई की ओर जा रहे थे, पहला पड़ाव था बनीखेत। बनीखेत पहुँचते अँधेरा हो गया लेकिन गजब की रौनक थी यहाँ। आषाढ़ मेले का आयोजन अपने चरम पर था, नाग मंदिर को भी सुंदर सजाया गया था। दरअसल मेला तो परंपरा का निर्वहन था आधुनिक चकाचौंध के साथ, मेले में ज्यादातर दुकानें बिहारियों की थीं, अर्थात् मेला इतना ग्लोबल था कि क्या कहूँ? मंदिर में किसी बाल भक्त ने प्लास्टिक के खिलौने अपने भगवान् को पूरी श्रद्धा के साथ अर्पित किए थे, वास्तव में ऐसे दृश्य मुदित कर देते हैं, अपना बचपन याद आ जाता है। हम तो यात्रा पर थे साहब, कोई अतिथि थोड़े ही थे, जो ठहर जाते, पल-दो पल में ही आगे बढ़ने की घोषणा हो गई।

रात डलहौजी में बीती। यात्रा की थकान का चौकस पहरा, मानो अलसाई आँखों को अब और नहीं का निवेदन कर रहा हो। अगले दिन डलहौजी से कालाटोप की यात्रा आरंभ हुई। डलहौजी में इसी नाम से अनेक शिक्षण संस्थान भी हैं। दरअसल जब तक आप डलहौजी को पार नहीं कर जाते तब तक 'डलहौजी ये, डलहौजी वो' के बोर्ड दिखते ही रहेंगे। रास्ते में लक्कड़ मंडी से कुछ पहले ही 'हरी बिछली घास पर' स्थानीय नागरिकों से संवाद करते हुए, एक बात तो तय हो ही जाती है कि पर्यटकों की निर्भरता इन पर है ये पर्यटकों पर निर्भर नहीं हैं। नब्बे साल के पिता और साठ साल के पुत्र साथ बैठे थे देखकर फर्क करना मुश्किल हो रहा था, बीड़ी की कस पर कस लगाए जा रहे थे। पूछने पर बताते हैं कि 'साहब हम तो कहीं जाते नहीं, हाँ एक बार लुधियाना जाना हुआ था, फिर नहीं गए कहीं दूर।'

हमारा अगला पड़ाव था कालाटोप वाया लक्कड़ मंडी। लक्कड़ मंडी अर्थात् पहाड़ी लकड़ियों का हब कहते हैं। पहले यहीं से लकड़ियों का व्यापार होता था। नदी के रास्ते लकड़ियाँ नीचे तक पहुँचा दी जाती थीं। कालाटोप देवदार का इतना घना जंगल की पूछिए मत, रोशनी ठीक से नीचे तक नहीं पहुँच पातीं। थोड़ी सी समतल जमीन पर वन विभाग की अतिथि शाला है, कहते ही कि रात के सन्नाटे में भालुओं की आमद यहाँ तक हो जाती है। अतिथिशाला के प्रांगण से थोड़ा नीचे उतरकर देवदार की छाँव में बैठना अच्छा लगा, दो-चार तसवीरें भी हुईं, श्रीधरजी के मार्गदर्शन में सार्थक संवाद भी हुए। सच तो यह है कि जंगल में पसरा सन्नाटा और रह-रहकर उस सन्नाटे को चीरते हुए कहीं दूर से आती पंछियों की सुमधुर ध्वनि जीवन में नया राग उत्पन्न करती है। कलाटोप से चंबा की ओर लौटते हुए रावी मानो साथ-साथ चलती हैं। ऊँचाई से देखने पर सर्पाकार रावी में तैरती नौका बमुश्किल दिखाई पड़ती है। ज्यों-ज्यों हम चंबा की ओर उतरते हैं, रावी बेहद करीब आती जाती हैं, इतना करीब की स्वर लहरियाँ साफ सुनाई देती हैं। हरीतिमा से अच्छादित रावी को यों ही 'इरा' (सुंदर पेय) नहीं कहा गया होगा। अब हम चंबा में थे, संयोग से बारिश भी खूब हुई, फिशरीज की अतिथिशाला के बाहर भयंकर उमस थी। रात यहीं गुजरी।

अगले दिन चंबा में ही रहे जनश्रुतियों और लोकाख्यानों के बीच। इन्हीं जनश्रुतियों की पड़ताल करते हुए, सँकरी गलियों को पार कर हम सभी मिर्जा साहब के घर पहुँचे। जी हाँ, मिर्जा साहब का पूरा नाम है मिर्जा ऐजाज बेग। मिर्जा साहब के पूर्वज सत्रहवीं शताब्दी में रघुवीरजी की डोली के साथ मुगल दरबार से चंबा आए थे और यहीं के होकर रह गए। कहते हैं कि चंबा रियासत के तत्कालीन राजा पृथ्वी सिंह के शौर्य की प्रतिष्ठा मुगल दरबार तक थी अर्थात् तत्कालीन मुगल शहनशाह राजा के पराक्रम से वाकिफ था। मुगल दरबार में घुड़सवारी, तलवारबाजी इत्यादि अनेक प्रकार की प्रतियोगिताओं का आयोजन होता रहता था। ऐसे ही किसी प्रतियोगिता में राजा ने भी भाग लिया और विजयी हुए। शहंशाह बेहद प्रसन्न हुए और उन्होंने राजा से इच्छा अनुसार पुरस्कार माँग लेने को कहा। राजा ने बिना देर किए मुगल दरबार में रखी शालिग्राम की प्रतिमा को ही माँग लिया। शहंशाह ने प्रतिमा दे तो दी, लेकिन प्रतिमा से भावनात्मक लगाव के कारण उन्होंने अपने एक सैनिक अधिकारी को राजा के साथ चंबा जाने का हुक्म जारी किया, जिनका नाम था सफी बेग मिर्जा। मिर्जा एजाज बेग अपना संबंध इन्हीं मिर्जा सफी बेग से जोड़ते हैं, अर्थात् सफी बेग ही उनके पूर्वज हैं।

चंबा में मिंजर मेले का खासा महत्त्व है। चंबा के चौगान में लगनेवाला यह मेला सावन के दूसरे रविवार से लेकर तीसरे रविवार तक चलता है। मेले में शाही परिवार से लेकर आमजन तक के शरीक होने की परंपरा रही है, जिसका यथावत् निर्वहन जारी है। राजपरिवार और मिर्जा परिवार के बीच संबंधों की एक कड़ी मिंजर भी है। मिर्जा परिवार द्वारा शाही परिवार को मिंजर भेंट करने की परंपरा रही है। यों तो मिंजर धान और ज्वार की बालियों का नाम है, जिसे बहनें अपने-अपने ससुराल से लाकर भाइयों को सौंप देती हैं, शायद उनकी समृद्धि के लिए। समय के साथ मिंजर का स्वरूप भी बदला गया, धान और ज्वार की बालियों के अलावा सोने-चाँदी एवं रेशम के मिंजर भी बनाए जाने लगे। खैर, पहली बार मिंजर देखा, मिंजर को बनते देखा, मिंजर के महत्त्व को समझा यह मेरे लिए नई चीज थी।

चंबा शहर में रावी नदी के प्रवेश की भी एक रोचक कथा लोक में प्रचलित है। चंबावासी जिस विश्वास के साथ उस कथा का वाचन करते हैं अद्‌भुत है। कथा कुछ यों है कि रावी नदी का पानी चंबा तक नहीं पहुँच रहा था अर्थात् चंबावासी पानी के लिए बहुत परेशान थे। चंबा का राजा अपने नागरिकों की इस समस्या को लेकर चिंतित था। रावी के जल को चंबा तक लाने के अनेक उपक्रमों की विफलता ने राजा को और अधिक चिंतित कर दिया। चिंता और विकल्पहीनता के इसी दौर में राजा एक स्वप्न देखता है, जिसमें रावी के जल को चंबा में प्रवेश दिलाने की शर्त होती है, राजपरिवार के किसी एक सदस्य की बलि। सपने की चर्चा राजा ने अपने नजदीकियों तथा राजपरिवार में आस्था रखनेवालों जनों से की। कहते हैं कि राजा स्वयं की बलि हेतु तैयार हो गए, लेकिन रानी ने उन्हें रोका कि आप तो राजकुल के गौरव हैं, जनता की आपसे अनेक अपेक्षाएँ हैं, इसलिए आपका वर्तमान रहना आवश्यक है, किंतु मैं चंबा के

निवासियों के हित में स्वयं को अर्पित करना चाहूँगी और रानी ने ऐसा ही किया। तदोपरांत रावी ने चंबा में प्रवेश किया।

वर्तमान चंबा में रावी की धार के साथ-साथ रानी का बलिदान भी जन-जन की स्मृतियों में विद्यमान है। उनकी स्मृति में स्थापित मंदिर का चंबावासियों में विशेष महत्त्व है। 'सुई माता' के नाम से विख्यात इस मंदिर में न सिर्फ चंबावासी आते हैं बल्कि बाहर से आने वालों सैलानियों एवं श्रद्धालुओं के लिए भी यह मंदिर आकर्षण का केंद्र रहता है। इस मंदिर में वर्ष में एक बार मेले का आयोजन किया जाता है, जिसमें सिर्फ और सिर्फ महिलाओं का ही प्रतिभाग अपेक्षित है। कहते हैं कि रानी की इच्छा के अनुरूप ही ऐसा किया जाता है। स्नेहीजनों की कृपा से मुझे भी मंदिर तक पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहाँ कुछ स्थानीय नागरिक पहले से ही उपस्थित थे। जिज्ञासु मन सहज भाव से पूछ बैठा कि इस मंदिर का नाम सूईमाता क्यों है ? क्या उसका संबंध रानी के नाम से है या फिर उसके पीछे भी किंवदंतियाँ हैं ? उनमें से एक नागरिक ने हमें बताया कि सुई का अर्थ लाल होता है और जनश्रुति है कि रानी जब स्वयं को बलिदान हेतु प्रस्तुत करती हैं तो वे लाल रंग का वस्त्र धारण किए हुए थीं, जिसके कारण इस मंदिर का नाम 'सूई माता' मंदिर पड़ गया। त्याग की प्रतिमूर्ति रानी की यह गाथा चंबा में समय के साथ आगे बढ़ रही है। चंबा नगर की स्थापना और नामकरण को लेकर भी अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। कहते हैं कि राजा ने अपनी पुत्री चंपावती के कहने पर अपनी राजधानी भरमौर से चंबा में स्थापित की और राजपुत्री के नाम पर ही इस नगर का नाम 'चंबा' पड़ गया। चंपावती का संतमत के प्रति अनुराग था और ज्ञानकांड की इस परंपरा में उन्होंने स्वयं को अर्पित कर दिया। उनकी स्मृति में भी एक मंदिर की स्थापना की गई, जिसका नाम पड़ा 'चंपेश्वरी देवी' मंदिर।

चंबा नगर के एक छोर पर 'देवी चामुंडा' का मंदिर स्थापित है। मंदिर का गर्भगृह और उसके प्राचीर की बनावट आकर्षित करती है। चामुंडा देवी मंदिर के प्रांगण से चंबा नगर का सुंदर दृश्य और रावी की इठलाती धारा जीवन में नया आकर्षण पैदा करती है। चंबा नगर में लक्ष्मी नारायणजी का भी मंदिर स्थापित है। पहाड़ में स्थापित इन मंदिरों में काष्ठ का खूब प्रयोग हुआ है और उस पर हिंदू देवी देवताओं के चित्र उकेरे गए हैं। लक्ष्मी नारायण मंदिर की परिक्रमा करते हुए आदरणीय श्रीधर पड़ारकरजी ने एक चित्र की ओर संकेत करते हुए पूछा कि यह किसका चित्र है ? शायद वरुण भगवान् का था, ऐसा उन्होंने ही बताया। इस प्रकार अनेक ऐसे चित्र मंदिर की दीवारों पर सहज ही उकेरे गए हैं, जिनका अपना विशेष महत्त्व है। प्राय: लोग गर्भगृह के दर्शन से ही विदा लेते हैं, लेकिन मंदिरों के स्थापत्य का सूक्ष्म विवेचन ही मनुष्य की ज्ञानात्मक संवेदना का विकास करता है।

लक्ष्मी नारायण मंदिर से उतरते हुए चौगान की ओर बढ़े ही थे कि तेज बारिश होने लगी। मुझे और कवि मित्र देवेंद्रजी को एक सँकरी सी दुकान में शरण लेना पड़ा। बारिश थोड़ी थमी कि बचते-बचाते डी.एस.ओ. ऑफिस के सभागार में पहुँचे, जहाँ स्थानीय साहित्य अनुरागियों के द्वारा एक कवि गोष्ठी का आयोजन सुनिश्चित था। सुबह से चलते-चलते थकान इतना हावी थी कि पूछिए मत, कविता कुछ भी पल्ले न पड़ी। गेस्ट हाउस पहुँचते-पहुँचते अँधेरा हो गया। सहयात्रियों के साथ गपशप करते कब नींद आ गई, पता भी न चला।

यों तो चंबा शहर के बसने-उजड़ने की भी अनेक दास्तानें लोक में प्रचलित हैं, लेकिन इस शहर का स्थापत्य पहाड़ी जीवन की गौरव-गाथा है। दुर्गम पहाड़ी रास्तों से चढ़ते-उतरते मन अतीत के उन लमहों की पड़ताल करने को विवश हो उठता कि कैसे आकर बसे होंगे लोग यहाँ। सहज ही नागार्जुन की कविता 'बादल को घिरते देखा है' की पंक्तियाँ स्मरण हो उठती हैं, 'समतल देशों से आ-आकर, पावस की उमस से आकुल, तिक्त-मधुर बिसतंतु खोजते, हंसों को तिरते देखा है'। खैर, भावुक मन न जाने कहाँ-कहाँ की दौड़ लगा लेता है। पहले कविता कहानियों में, स्मृतियों में, अभिलेखों में पर्वतीय नगरों के लिए जो कुछ कहा गया लिखा गया, वही सच जान पड़ता था, लेकिन प्रत्यक्ष का अनुभव ही कुछ और होता है। सच कहूँ तो आजकल जितने भी नगरों की यात्रा कर सका, उनमें चंबा सबसे खूबसूरत है। पर्वतों को लेकर मेरे मन में सदैव से एक आकर्षण रहा है, लेकिन पर्वतों से प्रत्यक्ष होने का पहला अनुभव जम्मू की यात्रा के दौरान हुआ और मन कहीं पर्वतों में ही रम गया। कभी-कभी तो मन खुद से पूछता है कि कहीं पूर्वजन्म में मैं पर्वतवासी ही तो नहीं था और यही कारण है कि पर्वतीय यात्रा का प्रस्ताव मुझे सुखद अनुभूति प्रदान करता है। पर्वतीय सौंदर्य निहारने की मुदित भावना के साथ प्रारंभ की गई यात्रा प्रत्येक मनोहारी दृश्यों में कुछ-न-कुछ नवीन ढूँढ़ने का प्रयास करती है। पानी के प्रवाह में तराशी गई शिलाएँ प्राकृतिक स्थापत्य का इतिहास समेटे हुए हैं। आखिर वह कौन सी शिला थी, जिसने रावी को चंबा में चढ़ने न दिया। शायद राजप्रसाद से उसे ईर्ष्या हो गई होगी। धवलधारा से मनुहार करती शिलाओं का अद्‌भुत बिंब आकर्षित करता है। खंड-खंड हो लुढ़कती शिलाएँ और शिलाओं से टकराकर सतह से उठता जल, जल से उठती स्वर लहरियाँ नित्य नए गान का सृजन करती हैं। गगनभेदी वृक्ष कतारबद्ध खड़े हैं। यह प्राकृतिक अनुशासन की मिसाल है। हरीतिमा से आच्छादित वनों में पंछियों का मधुर संवाद, वृक्षों को झकझोरती कभी मंद कभी जोर की बयार से वर्षा की सी ध्वनि निकल पड़ती है। ऊँचे पहाड़ों की सिहरन ललचाती है। कहीं-कहीं गहरे सन्नाटे में भय का आभास भी होता।

चंबा से पठानकोट लौटते समय रास्ते में चमेरा डैम पड़ता है। पहाड़ों के बीच में लगभग ठहरी सी रावी, ओह अद्‌भुत! नौका-विहार के लिए सैलानियों की भीड़ जमा थी, सभी अपनी बारी का इंतजार कर रहे थे। गजब की रौनक थी यहाँ। खैर, मैंने भी रावी को जी भर निहारा, फिर स्पर्श कर प्रणाम किया, मानो कहते हुए कि फिर जाने कब मुलाकात हो।

साअ

ग्राम-अकबालपुर, पो. इटौरी
जिला-अंबेडकर नगर-२२४१५९ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९४५२५६२८४७
deviprasadald@gmail.com

हिरनी-बिरनी लोकनाट्य

● शंभू शरण सत्यार्थी

लोकनाट्य का लोकजीवन से घनिष्ट संबंध रहा है। यही कारण है कि लोक से संबंधित पर्व-त्योहारों, मांगलिक कार्यों के समय इनका अभिनय किया जाता है। अति प्राचीन काल से लोकनाट्य लोकजीवन में मनोरंजन का साधन रहा है। हिरनी बिरनी नाम का लोकनाट्य गाँवों में आदि काल से प्रचलित रहा है। आज भी जब दो बहनों को काफी तेज-तर्रार देखा जाता है तो उदहारणस्वरूप लोग बोलते हैं कि ये तो हिरनी-बिरनी हैं।

कार्तिक पूर्णिमा के दिन गंगास्नान करने का प्रचलन आदि काल से है। गाँव के मर्द-औरतें सुहागिन सोलहों श्रृंगार करके गंगा स्नान करने रास्ते से जा रहे हैं—यह देखने के बाद हिरनी-बिरनी दोनों बहनें आपस में बातें कर रही हैं। ये गीत की शैली में काफी मनोरंजक है—

धन्य भाग हई सब तिरियवा रे दइया,
स्वामी के सुहागिन सब ये राम।
लाली पीली कुसुमी के साड़ी रे दइया
चोली मखमलिया पेन्हे ये राम।
मोतियन भरल लीलरवा रे दइया
सोरहो सिंगरवा करि ये राम।
हिलमिली गावत झुमरिया रे दइया
गंगा असननीया जात ये राम।
सबही के मिले जोग बलमुआ रे दइया
स्वामी संग बिहार करे ये राम।
हमनी के जोग मिले न पुरुखवा रे दइया
केकर संग बिअहवा करी ये राम।
जनमे जग अकारथ रे दइया
स्वामी के मरम न जानली ये राम।
चढली जवानी बीतल जात रे दइया
सोना,सुखवा माटी भइले ये राम।
तिरिया के स्वामी जेकर नाहीं रे दइया

शिक्षा : एम. ए. समाजशास्त्र।
प्रकाशन : पत्र पत्रिकाओं में नियमित रचनाएँ प्रकाशित। दिल्ली प्रेस का नियमित लेखक।
संप्रति शिक्षण संस्थानों का संचालन।

ओकर जियल अधमवा हई ये राम।
कउने अइसन कइली हम पपवा रे दइया,
ताही लागी ना बलमवा मिले ये राम,
तजबो परान यह अधमवा रे दइया!
जियलो मोर धिक्कार हई ये राम।

वे महिलाएँ धन्य हैं जो सुहागिन हैं। लाल-पीले कुंकुम रंग की साड़ी और मखमल की चोली, लिलार में मोती भरे हुए सोलहों श्रृंगार किए हुए मेलजोल के साथ झूमर गाते हुए गंगा स्नान करने के लिए जा रही हैं। सब लोगों को योग्य पति मिला है, जिसके साथ में घूमने के लिए लोग जा रहे हैं। अपने ऊपर अफसोस करते हुए कह रही हैं कि हम लोगों को योग्य पति नहीं मिल रहा है, जिसके संग हम लोग भी विवाह कर लेते। हम लोगों का यह जन्म ही बेकार चला गया। हम दोनों बहनें नहीं जान पाईं कि पति का सुख क्या होता है? जवानी भी समाप्त होती जा रही है। सोना जैसा सुख भी मिट्टी के समान हो जाता है, जिस औरत का पति नहीं है, उसे जिंदा रहना भी बेकार है। हम दोनों बहनों ने कौन सा ऐसा पाप किया है कि योग्य पति नहीं मिल पा रहा है। हम लोगों को जीना ही धिक्कार है। इससे अच्छा की हम लोग जान ही दे देती।

हिरनी के पछतावे पर उसकी छोटी बहन बिरनी संतोष दिला रही है और विवाह करने का उपाय भी गीत के माध्यम से बता रही है—

बिरनी
रामा सुनी लेहूँ बहिनी बचनियाँ रे ना।
रामा मनवाँ में धर हूँ धीरजवा रे ना।।

रामा अइसे नाहीं मिलिहें सजनवा रे ना।
रामा हमनी के जोग के पुरुखवा रे ना।।
रामा कहियो जे तोरा से बचनिया रे ना।
रामा सोई कर जल्दी उपइया रे ना।।
रामा बावन गढ़ बावनों अखड़वा रे ना।
रामा चली कर देहुँ यह डकरवा रे ना।
रामा नाथे जे मोर मोहन भैंसवा रे ना।
राम ताही संग करबो बिअहवा रे ना।।
रामा करि लेहु अब ई परनवा रे ना।
रामा तब योग मिलिहें पुरुखवा रे ना।
रामा जतिया में नाहीं योग पुरुखवा रे ना।
रामा जनम भरी रहबो कुँअरिया रे ना।

छोटी बहन बिरनी हिरनी को समझा रही है। मन में धीरज रखो, तभी अच्छा पति मिल पाएगा। हम लोग के योग्य कोई पुरुष नहीं है। इसके लिए एक उपाय यह है कि हमारे मोहन भैंसा को जो नाथ देगा, उसी के साथ हम दोनों विवाह करेंगी। हमारी जाति में हम लोगों के योग्य पुरुष नहीं हैं, इसका एकमात्र उपाय यही है।

इसके बाद बड़ी बहन बिरनी बोल रही है—

रामा सुनी लेहु बहिनी बचनिया रे ना।
रामा बड़ी निक तोहरो विचरवा रे ना।।
रामा जे नथीहें मोहन भैंसवा रे ना।
रामा ताही संग करबई बिअहवा रे ना।।
रामा चाहे कउनो जतिया रे ना।
एकर मत करहू विचरवा रे ना।।
रामा पहिले उनकर लेई कर जतिया रे ना।
रामा तब करबो उनकर संग सदिया रे ना।।
रामा हमरो हई एकबीर मुरगा रे ना।
राम नाही कभी हारत दँगलव रे ना।।
रामा जब जीते मुरगा दँगलवा रे ना।
रामा तब खाय सात मुरगा मसवा रे ना।।
रामा छाती छेदी निकली सुरूअवा रे ना।
राम पहिले खिआई मुरगा मनसवा रे ना।।
रामा जाति लेइ करबई बिअहवा रे ना।
रामा हम कईली आज यह परनवा रे ना।।

बड़ी बहन हिरनी छोटी बहन के विचार से सहमत हो जाती है और बोलती है कि तुम्हारा सुझाव अच्छा है। जो मोहन भैंसा को नाथेगा, उसी के साथ हम विवाह करेंगी, वह चाहे जिस भी जाति का हो। दंगल जीतने के बाद मुर्गा खिलाकर पहले अपने जाति में शामिल करेंगी, तब उसके साथ में शादी करेंगी।

इसके बाद हिरनी-बिरनी दोनों बावन गढ़ के अखाड़ा पर बड़ वृक्ष के नीचे मोहन भैंसा के साथ डेरा डाल देती हैं और ढोलक बजाकर पहलवान लोग को ललकारने लगती हैं—

रामा कोउ नाही जग में पुरुखवा रे ना।
रामा दुनिया नाही केहू बिरवा रे ना।।
रामा चलली गुजरात से हम नटिनिया रे ना।
रामा घूमी अइली देश बंगलवा रे ना।।
रामा कहूँ नहीं मिलले वीर पुरुखवा रे ना।
रामा नाथे जे मोहन भैंसवा रे ना।
रामा बिना वीर भइली धरतिया रे ना।।
रामा जे नाथीहें मोहन भैंसवा रे ना।
रामा उनके संग करबो बिअहवा रे ना।।
रामा न जो नाथीहें मोहन भैंसवा रे ना।
रामा धिक्क उनके हउवे जन्मवा रे ना।।

हिरनी बहन कह रही है कि दुनिया में कोई वीर नहीं है। हम नटिन गुजरात से बंगाल तक घूम आईं, लेकिन कहीं वीर पुरुष नहीं मिला। जो वीर मोहन भैंसा को नहीं नाथेगा, उसका जन्म बेकार है और माँ का दूध भी। उनके जन्म को धिक्कार है।

गुरु मोती लाल
रामा सुनी लेहुँ तीन सौ साठी चेलवा रे ना।
रामा बोले का नटिन बचनवा रे ना।।
रामा देई कर कठिन कसमवा रे ना।
रामा धर के पछारहूँ भैंसवा रे ना।।
रामा कर लेहुँ बंजारन से बिअहवा रे न।
रामा अइसन सुंदरी नाहीं कउनो तिरिअवा रे ना

गुरु मोतीलाल अपने तीन सौ साठ चेला को ललकारते हैं कि भैंसा के पछाड़कर बंजारन से विवाह कर लो। इतनी सुंदर औरत नहीं मिलेगी।

इतने पर एक पहलवान तैयार हो जाता है और बोलता है—

रामा खोली देहुँ मोहन भैंसवा रे ना।
रामा हम नाथब तोहरो भैंसवा रे ना।।

भैंसा खोल दिया गया। हिरनी बिरनी भैंसा के पीठ ठोक के मैदान में छोड़ देती है। भैंसा शेर के जैसा पहलवान पर टूट पड़ता है। एक-एक कर सभी पहलवान हार जाते हैं।

बिरनी आगे बोलती है—

रामा ना ही केहू वीर पुरुखवा रे ना।
रामा इहाँ हवे सब ही हिजड़वा रे ना।।
रामा सबही के देखली हिम्मतवा रे ना।
रामा तीन सौ साठी पहलवनवा रे ना।।
रामा धरती पर छरके भैंसवा रे ना।
रामा जइसे छरके हाथी पर शेरवा रे ना।।
रामा तइसे छरके मोहन भैंसवा रे ना।

रामा तीन सौ साठी चेलवा रे ना।।
रामा मिलिके धइले भैंसवा रे ना।
रामा नाथे ला तो बड़ी रहे दूरवा रे ना।
रामा नाहीं करी सकले बालबकवा रे ना॥

बिरनी कहती है कि कोई वीर पुरुष नहीं है। यहाँ सभी हिजड़े हैं। तीन सौ साठ पहलवान मिलकर भी मोहन भैंसा का बाल बाँका नहीं कर सके। आगे गुरु मोतीलाल कहते हैं—

रामा किया बंजारिन बोले कुबचनिया रे ना।
रामा सबके बनावेलु हिजड़वा रे ना।।
रामा अइसन जे बोललू बचनियाँ रे ना।
रामा तोहरा उखाड़बउ जिभवा रे ना।।
रामा हम नाथब तोहरो भैंसवा रे ना।
रामा हम करबो तोहरो से विअहवा रे ना।।

जब सभी लोग को हिजड़ा बना देती है तो गुरु मोतीलाल मोहन भैंसा को नाथ कर खुद विवाह करने का फैसला लेते हैं। लेकिन वे भी हार मान लेते हैं। हिरनी-बिरनी दोनों बहिनें मिर्जापुर के अखाड़ा जाकर ढोलक बजाकर पहलवान को ललकारने लगती हैं।

हिरनी कहती है—

रामा घूम अइली सगरे मुलुकवा रे ना।
रामा नाहीं कोई जग में मरदवा रे ना।।
रामा सबे हव मरद हिजड़वा रे ना।।
रामा नहीं कोई नाथे मोर भैंसवा रे ना।
रामा नाथी जो दीहें मोर भैंसवा रे ना।
रामा करी लीहें हमसे विअहवा रे ना।।

पूरा देश घूम लिया, लेकिन एक भी मरद नहीं मिला, जो हमारे भैंसा को नाथ सके। जो हमारे भैंसा को नाथेगा, उसी के साथ हम विवाह करेंगे। एक पहलवान कहता है—

रामा सुन बंजारन हमरी बचनियाँ रे ना।
रामा सबके बनावेलु हिजड़वा रे ना।।
रामा जानत सब संसरवा रे ना।
रामा मिर्जापुर के नामी हे मरदवा रे ना।।
रामा तहाँ आई कहेलू हिजड़वा रे ना।
रामा खोली देहुँ अपन भैंसवा रे ना।।
रामा हम नाथब तोहर भैंसवा रे ना।
रामा हम करब तोहसे बिअहवा रे ना।।

मिर्जापुर के नामी पहलवान चैलेंज करता है कि हम मोहन भैंसा को नाथकर तुमसे विवाह करेंगे, लेकिन वह भी हार जाता है। आगे पोसन सिंह कहते हैं—

रामा हमरो ही रहत जिंदगिया रे ना।
रामा गुरु मरले बिना मउतिया रे ना।।
रामा मारी दिहलस गुरु के भैंसवा रे ना।
रामा दरे पर भइले खतमवा रे ना।।
रामा मरद के होयब पयदवा रे ना।
रामा तब लेबई गुरु के बदलवा रे ना।
रामा माता के सात सोत के दुधवा रे ना।
रामा आज होइ तेकर परीक्षवा रे ना।।
रामा सात सोत के पिअले होअब दुधवा रे ना।
रामा तब आज नाथब भैंसवा रे ना।।

पोसन सिंह कहते हैं कि अपने गुरु का बदला हम लेंगे। अगर अपने माँ के सात सोत का दूध पिए हुए होंगे तो मोहन भैंसा को हम नाथेंगे। पोसन सिंह कहते हैं—

रामा नाथ दिहली तोहरो भैंसवा रे ना
रामा अब कर हमसे विअहवा रे ना।।

हमने तुम्हारे भैंसा को नाथ दिया, अब तुम हमसे विवाह कर लो।

हिरनी बोलती है—

रामा सुनऽ स्वामी हमरो बचनियाँ रे ना
रामा जब नाथल मोहन भैंसवा रे ना।
रामा तब होइ गइले विअहवा रे ना।।
रामा अब हम बनायब रसोइया रे ना।
रामा करि लेहुँ स्वामी तू भोजनवा रे ना।।

हिरनी कहती है कि जब आप ने भैंसे को नाथ दिया, उसी समय विवाह हो गया। अब हम खाना बनाएँगी। स्वामी, आप पहले भोजन कर लीजिए।

पोसन सिंह कहते हैं—

रामा तोहरो से करबो विअहवा रे ना।
रामा तब कउने खाये में उजुरवा रे ना।।
रामा करहूँ रसोई तइयरवा रे ना।
रामा खुशी से करबई भोजनवा रे ना।

पोसन सिंह कहते हैं कि जब तुमसे विवाह ही कर लेंगे तो खाने में क्या दिक्कत है। तुम भोजन तैयार करो, हम खुशी-खुशी खाएँगे।

साअ
आदर्शनगर, हसपुरा,
औरंगाबाद-८२४१२० (बिहार)
दूरभाष : ९९३४००३५००
shambhu.dord@gmail.com

बाल-कहानी

बिंदु का सवाल

● पवन चौहान

सुपरिचित बाल-साहित्यकार। पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित एवं शिमला दूरदर्शन और आकाशवाणी से रचना पाठ। हिम साहित्य परिषद् (मंडी) द्वारा आयोजित कहानी प्रतियोगिता में कहानी 'शारदा' को द्वितीय पुरस्कार। साहित्य मंडल (नाथद्वारा) का सम्मान। संप्रति स्कूल शिक्षक (टी.जी.टी., नॉन-मेडिकल)।

गणित अध्यापक प्यार से नियति को समझाते हुए कहते हैं, 'नियति बेटा, आपको पता है कि हम त्रिभुज को भुजा के आधार पर तीन भागों में बाँटते हैं—समबाहु, समद्विबाहु और विषमबाहु। समबाहु त्रिभुज की सारी भुजाएँ समान होने के कारण उसकी तीनों भुजाओं पर हम एक जैसे ही तीनों दोहरी, लेकिन बहुत छोटी रेखाएँ खींचते हैं। समद्विबाहु में दो समान भुजाएँ हैं तो हम वहाँ ऐसी दो भुजाओं पर रेखाएँ चिह्नित करते हैं। और रही विषमबाहु त्रिभुज की बात, तो इसमें तीनों भुजाओं की माप अलग-अलग है, इसलिए इसमें हम अलग-अलग भुजाओं पर एक, दो और तीन रेखाएँ लगाते हैं।'

सब बच्चे भी ध्यान से अध्यापक की बात को सुन रहे थे। परंतु नियति अभी भी एक उलझन में फँसी हुई थी। वह बोली, 'सर, जब हम पैमाने से मापकर इन त्रिभुजों को बनाते हैं तो फिर ये रेखाएँ खींचने की हमें क्या आवश्यकता है?'

अध्यापक अबकी बार हलके से मुसकराते हुए बोले, 'बेटा, जब आप भुजाओं के ऊपर माप लिखकर त्रिभुज बनाते हो, तब वे रेखाएँ खींचने की कोई जरूरत नहीं है। ये रेखाएँ तो तब लगाई जाती हैं, जब आप बिना माप लिये किसी त्रिभुज के प्रकार को दरशाते हो।'

'जी सर, अब सारी बात समझ आ गई है।'

गणित अध्यापक अब आगे बढ़ते हैं। सब बच्चे दी गई इन ज्यामितीय आकृतिय को बड़े ही चाव से अच्छे से अच्छा बनाने की कोशिश में लगे थे। लेकिन इस कक्षा में अंकित एक ऐसा लड़का था, जो किसी गहरी सोच में डूबा अपने कोरे कागज पर आकृतिओं को नहीं, बल्कि पेंसिल से खूब सारे मोटे, पतले, बारीक बिंदुओं का पूरे कागज पर ढेर लगा बैठा था। कोई उसमें गहरे काले, कोई हलके फीके और कोई इतने छोटे थे, जो ढंग से दिखाई भी नहीं दे रहे थे।

अध्यापक की नजर जब अंकित पर गई तो वे उसके पास पहुँच गए। उसके कोरे कागज पर बने इन बिंदुओं को देखकर वे गुस्से में बोले, 'अंकित, यह क्या हो रहा है?'

अपने ही खयालों में खोया अंकित अध्यापक की बात पर एकदम जागा और सकपकाते हुए बोला, 'सऽ सऽ··· सर, मैं बिंदु को समझने की कोशिश कर रहा था।'

'मतलब?' अध्यापक ने हैरानी से पूछा।

'सर, आपने परसों हमें बताया था कि बिंदु वह है, जिसकी न लंबाई न चौड़ाई और न ही ऊँचाई होती है। लेकिन सर, मैं जब भी बिंदु बना रहा हूँ तो मैं देख पा रहा हूँ कि इसकी लंबाई और चौड़ाई हम माप सकते हैं। चाहे मिलीमीटर या फिर उससे कम पैमाने द्वारा ही सही।'

'तुम बिल्कुल सही कह रहे हो, अंकित।'

'तो सर, क्या फिर बिंदु की परिभाषा यहाँ गलत हो जाती है?'

'नहीं अंकित! यह परिभाषा गलत नहीं है।'

'वह कैसे, सर?'

'देखो, इस बात को मैं तुम्हें एक बात के द्वारा समझाता हूँ।'

अध्यापक और अंकित की बात ने इस बार फिर से पूरी कक्षा का ध्यान खींच लिया था।

अध्यापक ने अपनी बात को जारी रखा।

'तुमने अभी पेंसिल से खूब सारे मोटे-पतले बिंदु अपने कागज पर बनाए हैं! बनाए हैं न?'

'जी सर, बनाए हैं।'

'ऐसा करो, अब पेंसिल की नोक को और बारीक करके एक और बिंदु लगाओ।'

अंकित ने वैसा ही किया।

'अब इसे और छीलो, ताकि इसकी नोक और बारीक हो जाए तथा फिर उस नोक के बराबर बिंदु लगाओ। फिर देखो, क्या इस बिंदु को भी मापा जा सकता है?'

अंकित ने वैसा ही किया।

'जी सर! अभी भी इसे मापा जा सकता है।'

अध्यापक ने फिर कहा, 'अब इसे और छीलकर पहले से बारीक बिंदु लगाओ और फिर उसे भी मापो।'

अध्यापक और अंकित के बीच चल रही इस रुचिकर बात को कक्षा के सभी बच्चे ध्यान से देख व समझ रहे थे।

'सर, इससे बारीक बिंदु अब नहीं लग सकता।'

'कोई बात नहीं, तुम मन में ही इससे पतले बिंदु को सोचो।'

'जी सर, सोच लिया।'

'क्या अब भी तुम उसको माप पा रहे हो?'

'सर, मेरे हिसाब से अब भी इसे किसी निकटतम पैमाने से मापा जा सकेगा।'

'ओके, अब इससे बारीक बिंदु का सोचो। मेरे कहने का मतलब है कि तब तक सोचो, जब तक तुम्हें यह न लगे कि इसे मापा नहीं जा सकता।'

हलकी सी चुप्पी के बाद, 'सर, बहुत बारीकी तक सोचते-सोचते अब मुझे यह बिंदु जैसे आँखों से ओझल सा होता दिख रहा है।'

'अब बताओ, क्या तुम अब इसको माप सकते हो?'

'नहीं सर, अब तो इसे मापना बहुत मुश्किल लग रहा है।'

'तो बस, यही बिंदु का स्थान है। इस स्थिति में हम बिंदु की बात करते हैं। हम जो अपनी कॉपी या फिर बोर्ड पर बिंदु को प्रदर्शित करते हैं, वह सिर्फ समझाने के लिए।'

पूरी कक्षा का ध्यान अध्यापक और अंकित की बातों में रमा हुआ था। वे भी इस बात को तसल्ली के साथ समझना चाहते थे।

परंतु अंकित अभी भी थोड़ी उलझन में था। अध्यापक ने अंकित के चेहरे को पढ़ लिया था। वे बोले, 'देखो अंकित, इतना तो तय है कि बिंदु की हम पैमाइश नहीं कर सकते, लेकिन यही पूरी ज्यामिति का आधार भी है। ऐसे ही असंख्य बिंदुओं से हम रेखा के साथ अन्य असंख्य आकृतियों को जन्म देते हैं। बिंदु है, लेकिन इसके साथ इस बात को जोड़कर हम देख सकते हैं कि जैसे हवा है, इसे हम देख नहीं पाते, लेकिन महसूस कर सकते हैं। जैसे गुरुत्वाकर्षण बल है, इसे हम देख नहीं सकते, लेकिन इसके प्रभाव को हम हर समय महसूस करते हैं।'

अंकित अब धीरे-धीरे सामान्य हो रहा था। उसकी समझ में सारी बात आ रही थी।

अध्यापक अंकित को समझाते हुए फिर बोले, 'इस बात को कुछ ऐसे भी समझा जा सकता है, जैसे मैं एक स्थान पर खड़ा हूँ। हम उस स्थान को शून्य मानकर चलते हैं। फिर जैसे ही मैं कुछ दूरी तय करता हूँ तो हम उस दूरी को किसी भी पैमाने को लेकर उस शून्य से ही मापते हैं। इसी तरह बिंदु भी एक शून्य के समान है, जो बार-बार, अनंत बार जुड़कर कोई रेखा या अन्य आकृति को जन्म देता है।'

'जी सर, अब सारी बात समझ में आ रही है।' अंकित अबकी बार संतुष्ट था। उसके चेहरे से अब सारा तनाव गायब हो चुका था। अंकित के साथ-साथ पूरी कक्षा ने भी बिंदु को गहराई से समझा था। वे सब अंकित का मन-ही-मन धन्यवाद कर रहे थे।

अंकित अब पूरी लगन के साथ दी गई आकृतियों को बनाने में जुट गया था।

साअ

गाँव व डाक-महादेव, तहसील-सुंदरनगर
जिला-मंडी-१७५०१८ (हि.प्र.)
दूरभाष : ०९८०५४०२२४२
chauhanpawan78@gmail.com

हैसियत का अहसास

लघुकथा

• रामगोपाल राही

बीस साल पहले घर में बोरिंग लगाकर मोटर लगाई थी ,ताकि पानी की दुविधा ना हो। आज मोटर जल गई, पानी का संकट खड़ा हो गया।

कल घर में मांगलिक कार्य है, मेहमान आएँगे, रसोई बनेगी, खाना होगा। चिंतित पिता ने साथ रह रहे शान शौकत से जीने वाले, लाखों रुपए कमाने वाले बेटे से "कहा, बेटे मोटर जल गई, पानी की दुविधा हो रही है, तुम जानते हो बेटे पानी के बिना काम चलेगा नहीं! फिर कहा बेटे आज ही नई मोटर लगवाओ!" पिता की बात सुन बेटा बोला, "बाबूजी मेरी हैसियत नहीं है मोटर लगाने की!"

बेटे के मुँह से हैसियत की बात सुनी तो पिता ने हैसियत का अहसास कराते हुए कहा, "क्या कमी है हैसियत में, बीस-बीस हजार के दो स्मार्टफोन तुम्हारे पास, बेटों के पास अलग, बहु के पास अलग, हमारी बहु हजारों रुपयों की साडियाँ पहनती है, फिर भी कहते हो, मेरी हैसियत नहीं! वाह, अरे मोटर तो बारह, तेरह हजार की ही आती है!

कुछ देर बाद पिता ने फिर भावुक हो "कहा, अपने लिए जी रहे हो बेटे, घर के लिए भी जीना सीखो!"

पिता की बात सुन बेटे को अपनी हैसियत का अहसास तो हो ही गया, साथ ही अपनी कही बात पर पश्चाताप भी हुआ।

पिता का दर्द समझ चुका बेटा सोचता रहा, माता-पिता आखिर कितने दिन रहेंगे सब कुछ अपना ही तो है। बेटे ने शाम को नई मोटर लगवादी, अब घर में पानी का कोई संकट नहीं रहा।

साअ

वार्ड-४, पो. लाखेरी,
बूँदी-३२३६१५ (राज.)
दूरभाष : ०९९८२४९१५१८

वर्ग पहेली (१८१)

अगस्त २००५ अंक से हमने '**वर्ग पहेली**' प्रारंभ की, जिसे सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं ज्ञान-विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ २८ फरवरी, २०२१ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें दो सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम-पते अप्रैल २०२१ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर '**वर्ग पहेली**', **साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (१७९) का शुद्ध हल

१ ब	२ द	मा	३ श	■	४ मो	टा	५ का	६ र
७ क	क्ष	■	८ री	९ स	ह	■	१० ला	वा
वा	■	११ सा	फ	क	र	१२ ना	■	न
१३ स	१४ द	मा	■	ल	■	१५ क	१६ ल	गी
■	१७ हा	जि	र	■	१८ अ	क	ड़	■
१९ स	ड़	क	■	२० आ	■	२१ ट	का	२२ र
मं	■	२३ ता	२४ ना	मा	२५ र	ना	■	त्ता
२६ ज	२७ ग	■	२८ खु	दा	ई	■	२९ चा	क
३० स	र्व	ना	श	■	३१ स	मा	चा	र

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **श्री सुशील कुमार सिंहल**
हिमालय खादी उद्योग
१९१ मठ मालियान
पिलखुआ (हापुड़), उ.प्र.
दूरभाष : ९४१०८५२५१६

२. **श्रीमती संध्या मेनन**
वृंदावन, मुतुपिलाकाड ईस्ट, पोरुवजी
पी.ओ. कोल्लम-६९०५२१ (केरल)
दूरभाष : ९७४४५२४२१७

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई।

वर्ग-पहेली १७९ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं— सर्वश्री सुभाष शर्मा (दिल्ली), खुशी चतुर्वेदी (लखनऊ), जगदीश राय गर्ग (मानसा), अंशुल वर्मा (रायपुर), शिवानंद सिंह 'सहयोगी' (मेरठ), माला श्रीवास्तव (नोएडा), ओमप्रकाश गुप्त (मुरादाबाद), अमरदेव आंगिरस (सोलन), सरला लोढ़ा (उदयपुर), मान्या श्रीवास्तव (भोपाल), ब्रह्मानंद खिच्ची, विजय पाल सेहलंगिया (महेंद्रगढ़), फकीरचंद ढुल (कैथल), रुक्मणी संगल (पटियाला), मोहन उपाध्याय (अजमेर), मोहन जगदाले (उज्जैन), जगदीश चंद (कैथल), हरदेव सिंह धीमान (शिमला), बी.डी. बजाज (दिल्ली)।

बाएँ से दाएँ—

१. मृत्यु के देवता (२)
३. भाग्यशाली (३,१,२)
७. धन, संपत्ति (२)
८. राजा दशरथ के सबसे बड़े पुत्र (२)
९. मास (२)
१०. घटित होना (३)
१२. नदी का किनारा (२)
१३. आयुर्विज्ञान की अल्प जानकारी रखनेवाला चिकित्सक (२,३)
१५. शोभा के लिए बनाया या लगाया हुआ लटकनेवाल लहरिएदार किनारा (३)
१६. सिर के बालों को लपेटकर उनकी बँधी हुई गाँठ (२)
१७. कीमत (२)
१८. कृत्रिम जलमार्ग (३)
२०. जिसका परिवर्तन न हुआ हो (५)
२३. एक प्रकार की शराब (२)
२४. प्रेमी, प्रणयी, स्वामी (३)
२५. सीमा (२)
२६. अपरिपक्व, सब्ज, नया, ताजा (२)
२७. वाक्य या शब्द, जिसका उच्चारण बारंबार किया जाए (२)
२८. रुक-रुक कर (२-२,२)
२९. कलाबाज (२)

ऊपर से नीचे—

१. यज्ञ करने वाले का काम (४)
२. घाव पर उसे भरने के लिए लगाया जानेवला लेप (४)
३. व्यक्ति जो हमेशा पुस्तक पढ़ने में लगा रहता है (३, २)
४. प्रभुत्व आदि से हट जाना (३)
५. सतह, तल (४)
६. अधकचरा, जिसे पूरी विद्या या जानकारी न हो (४)
११. अँधेरा (२)
१४. श्रीमान (३)
१५. जली हुई ईंट (३)
१७. किसी कार्य का किसी पर अवलंबित रहना (५)
१८. पैर की वह हड्डी, जो पिंडली के ऊपर होती है (४)
१९. सहयात्री, सहचर (४)
२०. शक्ति, ताकत (२)
२१. डाकू, लुटेरा (४)
२२. ओंठ, अधर (४)
२४. एक दर्जन (३)

वर्ग पहेली (१८०) का हल अगले अंक में।

वर्ग पहेली (१८१)

१	२	■	३		४		५	६
७		■		■		■	८	
९		■	१०	११		■	१२	
१३		१४			■	१५		
■	■	१६		■	१७		■	■
१८	१९		■	२०			२१	२२
२३		■	२४			■	२५	
२६		■		■		■	२७	
२८						■	२९	

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

दूरभाष : .....

'साहित्य अमृत' का दिसंबर अंक पत्रिका की प्रगति-पथ पर अग्रसर होने की कथा है। संपादकीय 'नए क्षितिज बुलाते हैं…' बहुत प्रेरक लगा। मृदुला सिन्हाजी के हृदयाघात से स्वर्गवास की दु:खद खबर भी झकझोर गई। प्रतिस्मृति में धर्मवीर भारती का आलेख 'स्वर्ग और पृथ्वी' बहुत ही अच्छा लगा। 'देश की प्रशासनिक व्यवस्था के भारतीयकरण के सूत्रधार सरदार पटेल' लेख बहुत ही प्रेरक लगा एवं पटेलजी की दृढ़ इच्छाशक्ति का परिचायक है। 'फणीश्वरनाथ रेणु का कथेतर साहित्य और उसकी व्यापकता' आलेख बहुत ही उत्कृष्ट, पठनीय लगा। जनवरी २०२१ अंक का आवरण पृष्ठ, संपादकीय बहुत ही मनमोहक लगे। प्रतिस्मृति में शरतचंद्रजी की रचना 'गुरुजी' बहुत अच्छी लगी। नरेंद्र कोहलीजी की कहानी 'बुड्ढा सोता बहुत है…' बहुत रोचक लगी। 'प्रेमचंद साहित्य में माँ का स्वरूप' आलेख बहुत बढ़िया लगा। 'कोविड-१९ : सभ्यता का संकट और समाधान' कैलाश सत्यार्थीजी पुस्तक-अंश भी अच्छे लगे। प्रकाश मनुजी की कहानी 'और लहरा उठा तिरंगा' बहुत ही प्रेरक लगी। 'पुस्तकों का गाँव भिलार' आलेख भी प्रेरक लगा। 'कोरोना! ऐसा मत करो ना' भी अच्छा लगा।

—विजयपाल सेहलंगिया, हरियाणा

'साहित्य अमृत' का जनवरी अंक प्राप्त हुआ। सभी रचनाएँ ऊँचे स्तर की हैं। श्री अजयेंद्रनाथ त्रिवेदी के आलेख 'परंपरा के पुरुषार्थ' ने अभिभूत कर दिया। पंडित विद्यनिवास मिश्र का कथन कि 'परंपरा का अर्थ रूढ़ि का अंगीकरण नहीं है, परंपरा का अर्थ है प्राप्त संपदा का निरीक्षण-परीक्षण, सार का ग्रहण तथा असार का त्याग।' यह सामान्य लगनेवाला कथन गहरी अर्थ-व्यंजना रखता है। कहानी 'बुड्ढा सोता बहुत है' में नरेंद्र कोहलीजी ने उम्रदराज व्यक्तियों की पीड़ा और उनके मानसिक द्वंद्व को बहुत सूक्ष्मता से उजागर किया है। आज के अधिकांश परिवारों में बूढ़े पति-पत्नी एकाकी और परित्यक्त जीवन जीने को अभिशप्त हैं। रचना में विचार संवेदनात्मक कलात्मकता से गुँथे हुए हैं।

—बी.डी. बजाज, दिल्ली

'साहित्य अमृत' का जनवरी अंक प्राप्त हुआ। सदैव की तरह सुंदर मुखपृष्ठ के साथ पत्रिका का आरंभ इतने आकर्षक नाम के साथ किया है कि पत्रिका को छोड़ नहीं पाया। शरतचंद्रजी की 'गुरुजी' तथा नरेंद्र कोहलीजी की कहानी 'बुड्ढा सोता बहुत है' अच्छी लगीं। कैलाश सत्यार्थीजी की पुस्तक का अंश 'सभ्यता का संकट और समाधान' बहुत अच्छा लगा। प्रकाश मनुजी की 'और लहरा उठा तिरंगा' अच्छी लगी। विज्ञानव्रतजी की गजल अच्छी लगी। पूज्य विद्यानिवास मिश्रजी से बहुत साल पहले खंडवा में ही मिलने का अवसर मिला था। उन पर लिखा त्रिवेदीजी का आलेख मन को छू गया। बालस्वरूप राहीजी की बाल कविताएँ हमेशा की तरह शानदार हैं। आदरणीय रामदरश मिश्रजी की कविता 'कोरोना' बहुत सामयिक है। डॉ. श्रीराम परिहार का ललित निबंध 'कोरोना ऐसा मत करो ना' अपनी विशिष्ट शैली के कारण पाठक को सहज ही आकर्षित करता है। शोभना श्यामजी की लघुकथा 'बिखरने के पहले' आज के मापदंडों पर खरी उतरती है। अंत में श्री रामगोपाल शर्मा दिनेश का नवगीत बेहद पसंद आया। सभी रचनाकारों को बधाई।

—श्यामसुंदर तिवारी, खंडवा (म.प्र.)

'साहित्य अमृत' के अक्तूबर एवं नवंबर अंक प्राप्त हुए। विलुप्त होती जा रही साहित्यिक विधाओं की ओर ध्यानाकर्षण के साथ वैश्विक संकटकाल को समेटे ये अंक महत्त्वपूर्ण हैं। नवंबर अंक का संपादकीय 'ज्योति संकल्प की' जीवन-मूल्य केंद्रित है। अँधेरे को आक्रांत कर देनेवाले जीवन-मूल्यों की वापसी का दायित्व लिये साहित्य सृजन का यह संकल्पित स्वर स्वत: ही आगे और आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा है। 'ग्यारह दिन में तीन मंगल मिशन लॉन्च', संपादकीय, 'आफत भरे दिन, 'कोरोना का द्वंद्व ईश्वर या विज्ञान' सभी रचनाएँ अच्छी लगीं।

दिसंबर अंक का संपादकीय 'नए क्षितिज बुलाते हैं', विजय कुमार मिश्र का आलेख 'फणीश्वरनाथ रेणु का कथेतर साहित्य और उसकी व्यापकता', साहित्य का विश्व परिपार्श्व 'निर्वाचन', नलिन चौहान का आलेख 'देश की प्रशासनिक व्यवस्था के भारतीयकरण के सूत्रधार सरदार पटेल' अच्छे लगे।

—प्रमिला मजेजी, कोरबा (छ.ग.)

'साहित्य अमृत' का रजत जयंती विशेषांक प्राप्त हुआ, मानो मरुस्थल में श्रावण की फुहार। उन मनीषियों को श्रद्धानमन, जिन्होंने इसका बीज रोपन किया एवं यथोचित पोषण देकर सशक्त कंधों पर सौंप आज हिंदी साहित्य को एक अनमोल धरोहर-स्वरूप निधि को निरंतरता प्रदान की। मैं कोई साहित्यकार नहीं किंतु पठन प्रेमी अवश्य हूँ। मेरी ईश्वर से हार्दिक प्रार्थना है कि वर्तमान एवं अग्रिम पीढ़ी के हाथों 'साहित्य अमृत' और भी विस्तार ले। इसी संदर्भ में मेरी प्रत्येक ग्राहकों, पाठकों से भी यह विनती है कि इसके लिए प्रबंधन, संपादक-वृंद एवं रचनाकार पर ही यह दायित्व न छोड़कर कम-से-कम एक नया ग्राहक बनाकर सहयोग करें। पाँच मास के इस कोरोना काल में 'साहित्य अमृत' से विलग रहना कोरोना से भी अधिक दु:खदाई रहा।

—ब्रजकिशोर, हजारीबाग (झारखंड)

'साहित्य अमृत' का जनवरी अंक प्राप्त हुआ। कैलाश सत्यार्थीजी की पुस्तक का अंश बहुत प्रेरणास्पद लगा। नरेंद्र कोहली की 'बुड्ढा सोता बहुत है', शरतचंद्र की कहानी 'गुरुजी', प्रकाश मनु की 'लहरा उठा तिरंगा', पंडित विद्यानिवास मिश्र पर आधारित लेख 'परंपरा के पुरुषार्थ', क्षमा शर्मा की कहानी 'पंद्रह साल की माँ', शोभा रस्तोगी की कहानी 'इमारत मेरी है' तथा बाल कहानी—सभी रचनाएँ अच्छी लगीं।

—माला श्रीवास्तव, ग्रेटर नोएडा (उ.प्र.)

'मन के मनके' कृति लोकार्पित

२४ दिसंबर को श्री ज्ञानेंद्र माहेश्वरी की नवीनतम काव्य-कृति 'मन के मनके' का लोकार्पण 'साईं निहारिका' में श्रीमती मनोरमा जौहरी द्वारा किया गया। स्वामी शुकदेवानंद ने बीज वक्तव्य दिया। श्रीमती मधु सिंह ने आभार व्यक्त किया। □

परिसंवाद कार्यक्रम संपन्न

२५ दिसंबर को प्रयागराज में पर्यावरण-विषयक एक बौद्धिक परिसंवाद का आयोजन हुआ, जिसमें श्री पृथ्वीनाथ पांडेय द्वारा श्री अनवर अब्बास तथा प्रो. सुरेशचंद्र द्विवेदी को 'साहित्यभारती सम्मान' के साथ प्रशस्ति-पत्र, शॉल, हिंदी भाषा साहित्य की पुस्तक, लेखनी तथा नववर्ष कैलेंडर भेंट कर सम्मानित किया गया। इस अवसर पर श्री पृथ्वीनाथ पांडेय की अध्यक्षता में अनवर अब्बास, सुरेशचंद्र द्विवेदी, रवि कुमार मिश्र, प्रदीप कुमार चित्रांशी, आलोक चतुर्वेदी ने अपने विचार व्यक्त किए। श्री शम्सुर्रहमान फारुकी के निधन पर उन्हें श्रद्धांजलि दी गई। □

द्वि दिवसीय संगोष्ठी संपन्न

२३-२४ दिसंबर को प्रयागराज के शंकराचार्य आश्रम में सिदो कान्हु मुर्मु विश्वविद्यालय, दुमका (झारखंड) की ओर से 'वातायन अंतरराष्ट्रीय शिखर सम्मान-२०२०' के संदर्भ में 'डॉ. निशंक का रचना-संसार' विषय पर द्वि-दिवसीय ऑनलाइन अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन हुआ। प्रथम दिन जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी वासुदेवानंद की अध्यक्षता में मुख्य अतिथि प्रो. जी.सी. त्रिपाठी ने केंद्रीय शिक्षा मंत्री श्री रमेश पोखरियाल 'निशंक' के साहित्य-लेखन पर अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर सर्वश्री अजय शुक्ल, सुधांशु शुक्ल, अरुण कुमार त्रिपाठी, सूर्यकांत त्रिपाठी, बेचैन कंडियाल, राजेश पांडेय, के.पी. यादव, प्रमोदिनी हांसदा, सत्यनारायण मुंडा, कुसुम सिंह, सुजीत सोरेन ने अपने विचार व्यक्त किए। संगोष्ठी के दूसरे दिन के कार्यक्रम में श्री सत्यनारायण मुंडा अध्यक्ष व मुख्य अतिथि श्री सुरेंद्र दुबे थे। सर्वश्री घनश्याम भारती, तुकडोजी महाराज, मनोज पांडेय, राजेंद्र कुमार, रामकिशोर शर्मा, रुद्रदेव तिवारी, देवेंद्र मिश्र 'नगरहा', नीलम जैन, प्रमोद कुमार मिश्र, राजेश कुमार गर्ग, महेंद्र प्रजापति, नीतू गुप्ता, जय वर्मा, मीना कौशिक, हन्ना लिस, इजाबेल्ला, लीना मैथ्यूज ने डॉ. निशंक की रचनायात्रा पर अपने विचार व्यक्त किए। श्री पृथ्वीनाथ पांडेय ने कृतज्ञता ज्ञापित किया। □

सम्मान समारोह संपन्न

१२ दिसंबर को प्रो. भागीरथ प्रसाद त्रिपाठी वागीश शास्त्री के सत्तासी वर्ष के जन्मोत्सव के संदर्भ में श्री पार्श्वनाथ विद्यापीठ करौंदी में वाग्योग राष्ट्रगौरव सम्मान समारोह आयोजित किया गया, जिसमें सर्वश्री इंद्रेश कुमार तथा राजाराम शुक्ल ने डॉ. सुशील कुमार पांडेय 'साहित्येंदु' को सम्मान-पत्र प्रदान किया। विशिष्ट अतिथि श्री प्रभुनाथ द्विवेदी थे। श्री आशापति शास्त्री ने अपने विचार व्यक्त किए। □

साहित्य सम्मान समारोह संपन्न

पूर्व प्रधानमंत्री 'भारत रत्न' श्री अटल बिहारी वाजपेयी की जयंती के अवसर पर बरेली के अखिल भारतीय साहित्य परिषद् बृज प्रांत, बरेली के तत्त्वावधान में गंगाशील आयुर्वेदिक महाविद्यालय, बरेली के सभागार में 'साहित्य सम्मान समारोह' का आयोजन श्री सुरेश की अध्यक्षता में किया गया, जिसमें मुख्य अतिथि सर्वश्री पवनपुत्र बादल, शिवमंगल सिंह तथा विशिष्ट अतिथि डॉ. एन.के. गुप्ता थे। डॉ. सदानंद प्रसाद गुप्त को अटल बिहारी वाजपेयी साहित्य सम्मान २०२० से सम्मानित किया गया, उनकी अनुपस्थिति में डॉ. शिवमंगल सिंह ने सम्मान ग्रहण किया। सर्वश्री एन.एल. शर्मा, सुरेश बाबू मिश्रा, शशि वाला राठी, रोहित रोकेश, दीपांकर गुप्ता तथा अतिथियों ने डॉ. शिवमंगल सिंह को उत्तरीय, धनराशि का चेक, सम्मान-पत्र एवं पट्टिका पहनाकर सम्मानित किया। श्री उमेश गुप्ता ने सरस्वती वंदना एवं स्वागत गान प्रस्तुत किया। अतिथियों का स्वागत मंत्री श्री इंद्रदेव त्रिवेदी ने किया। डॉ. एन.एल. शर्मा की पुस्तक 'सुंदरकांड में निहित जीवन प्रबंधन के सूत्र' का विमोचन मान्य अतिथियों द्वारा किया गया। सर्वश्री सुरेश बाबू, शिवमंगल सिंह, पवनपुत्र बादल ने अपने विचार व्यक्त किए। □

कार्यक्रम संपन्न

२७ दिसंबर को कानपुर में आचार्य गोरेलाल त्रिपाठी का ९६वाँ जन्म-दिवस देवनगर स्थित आवास पर श्री अखिलेश चंद्र शुक्ल की अध्यक्षता में ऑनलाइन मनाया गया, जिसमें मुख्य अतिथि श्री जीत कुमार द्विवेदी ने आचार्यजी के चित्र पर पूजन व पुष्पहार प्रस्तुत कर अपना उद्बोधन दिया। सर्वश्री संजीव अवस्थी, मोहन मिश्र, अखिलेश चंद्र शुक्ल, विजय प्रकाश त्रिपाठी ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री मनीष द्विवेदी ने किया। इस अवसर पर 'जयतु हिंदू विश्व' पत्रिका के नवीन अंक व 'पुष्पांजलि' स्मारिका का लोकार्पण किया गया। सर्वश्री प्रेम वाजपेयी, सुरेश गुप्त 'राजहंस', विनोद श्रीवास्तव, प्रदीप पांडेय, वीरेंद्र त्रिपाठी, संजर कानपुरी, जयराम सिंह 'जय', मोहन मिश्र, अनिल राज वाजपेयी, दयाशंकर पांडेय 'दयालु', सुनील वाजपेयी, उमेश शुक्ल सभी ने श्रद्धांजलि प्रस्तुत की। श्री वीरेंद्र कुमार त्रिपाठी ने आभार व्यक्त किया। □

कार्यक्रम आयोजित

२० दिसंबर को कोलकाता में श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय द्वारा आयोजित कार्यक्रम में 'भारतीय संविधान में अंकित चित्रों की पृष्ठभूमि एवं भावार्थ' विषय पर पश्चिम बंगाल के राज्यपाल श्री जगदीप धनखड़ ने अध्यक्षीय वक्तव्य दिया। प्रधान वक्ता श्री लक्ष्मीनारायण भाला ने अपने विचार व्यक्त किए। मुख्य अतिथि श्री सज्जन कुमार तुल्स्यान थे। अतिथियों का स्वागत श्री प्रेमशंकर त्रिपाठी ने किया। श्रीमती सुदेश धनखड़ की गरिमामयी उपस्थिति में श्री अरुण प्रकाश अवस्थी द्वारा रचित भारत वंदना 'प्यारा हिंदुस्तान हमारा' की संगीतमय प्रस्तुति हुई, जिसे श्री ओमप्रकाश मिश्र ने स्वर दिया। सर्वश्री तारा दूगड़, अरुण प्रकाश मल्लावत, पंकज साहा ने शॉल ओढ़ाकर अतिथियों का स्वागत किया। संचालन श्री महावीर बजाज ने तथा धन्यवाद ज्ञापन मंत्री श्री बंशीधर शर्मा ने किया। इस अवसर पर राज्यपाल श्री धनखड़ ने आई.आई.टी., खड़गपुर के वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी श्री राजीव रावत की नवीनतम पुस्तक 'हमारे दरमियाँ' का लोकार्पण किया। □

'यशस्वी भारत' पुस्तक लोकार्पित

१९ दिसंबर को नई दिल्ली के अंबेडकर इंटरनेशनल सेंटर में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री मोहनराव भागवत के प्रभात प्रकाशन से प्रकाशित भाषणों के संकलन 'यशस्वी भारत' का लोकार्पण जूनापीठाधीश्वर आचार्य महामंडलेश्वर अवधेशानंद गिरि के करकमलों से संघ के सह-सरकार्यवाह डॉ. कृष्ण गोपाल की गरिमामय उपस्थिति में, भारत के पूर्व नियंत्रक व महालेखापरीक्षक श्री राजीव महर्षि के विशिष्ट आतिथ्य में संपन्न हुआ। 'यशस्वी भारत' की प्रस्तावना संघ के पूर्व अखिल भारतीय प्रचार प्रमुख,

प्रखर चिंतक-विचारक, कई पुस्तकों के रचयिता श्री मा.गो. वैद्य ने लिखी है। इस अवसर पर संघ के सह-सरकार्यवाह डॉ. कृष्ण गोपाल ने इस बात को रेखांकित किया कि हमें संपन्न, सामर्थ्यवान, शक्तिशाली तो बनना है, लेकिन इससे आगे भारत को यशस्वी बनाना है। जूनापीठाधीश्वर महामंडलेश्वर स्वामी अवधेशानंद गिरि ने कहा कि स्थितियाँ बदल रही हैं। जाति की जकड़, स्त्रियों की स्थिति एवं समाज के चिंतन में बदलाव आया है। विशिष्ट अतिथि श्री राजीव महर्षि ने भी 'हिंदू कौन' विषय को लेकर अपनी बात रखी। उन्होंने कहा कि संघ और सरसंघचालक श्री मोहन भागवत के चिंतन में सदैव 'राष्ट्र' रहता है, इसीलिए इस वैश्विक संगठन की स्वीकार्यता समाज में निरंतर बढ़ रही है। □

सम्मान समारोह आयोजित

१४ से २० दिसंबर तक कोलकाता की साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्था 'नीलांबर' का वार्षिकोत्सव 'लिटरेरिया' आयोजित किया गया। कार्यक्रम का प्रारंभ श्री मृत्युंजय कुमार सिंह के लोकगीत और रेणुजी की कहानी पर आधारित फिल्म 'संवादिया' के टीजर से हुई। सत्र का संचालन श्री विमलेश त्रिपाठी ने किया। फणीश्वरनाथ रेणु के बेटों सर्वश्री पद्मपराग राय वेणु और दक्षिणेश्वर रेणु ने वक्तव्य दिया। सर्वश्री वीरेंद्र यादव, पद्मनाभ समरेंद्र, वेद रमण ने 'देश की बात वाया रेणु' विषय पर अपनी बात रखी। संचालन श्री विनय कुमार मिश्र ने तथा धन्यवाद ज्ञापन श्री शैलेश गुप्ता ने किया। दूसरे दिन के कार्यक्रम का प्रारंभ 'किसान यात्रा' की प्रस्तुति द्वारा हुआ। संचालन श्रीमती नीलू पांडेय ने किया। सर्वश्री अनामिका, संजीव कुमार, हरीश त्रिवेदी ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री योगेश तिवारी ने तथा धन्यवाद ज्ञापन श्रीमती पूजा पाठक ने किया। तीसरे दिन सर्वश्री प्रभात मिलिंद, वाजदा खान, व्योमेश शुक्ल, उपासना झा और गौरव भारती ने अपनी कविताएँ पढ़ीं। संचालन श्री आनंद गुप्ता ने किया। सर्वश्री सवाई सिंह शेखावत, संदीप तिवारी ने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री आशीष मिश्र ने तथा धन्यवाद ज्ञापन सुश्री पूनम सोनछात्रा ने किया। चौथे दिन सर्वश्री प्रयाग शुक्ल, नील कमल, रंजना मिश्र, मृत्युंजय और रूपम मिश्र ने इंद्रधनुषी छटा बिखेरी। श्री मनोज पांडेय ने विचार व्यक्त किए। संचालन सुश्री स्मिता गोयल और श्री जगन्नाथ दूबे ने तथा धन्यवाद ज्ञापन सुश्री सीमा शर्मा ने किया। छठे दिन के कार्यक्रम में लोक संस्कृति की झलक देखने को मिली। सर्वश्री स्मिता गोयल, चंदन तिवारी ने रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

बाद के दिनों आयोजित संवाद सत्र में सर्वश्री विद्याविंदु सिंह, मुकेश बिजौले, रणेंद्र, संगीता गुंदेचा, प्रकाश उदय ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री मृत्युंजय कुमार सिंह ने किया। समापन सत्र में सुप्रसिद्ध नृत्यांगना सुश्री रश्मि बंदोपाध्याय द्वारा विद्यापति और जयदेव के गीतों पर आधारित भरतनाट्यम की प्रस्तुति की गई। श्री प्रभाकर पांडेय ने लोकगीतों की प्रस्तुति दी। श्री प्रबुद्ध बनर्जी द्वारा सर्वश्री गौतम चटर्जी को 'रवि दवे सम्मान' तथा मधु मंसूर हंसमुख को 'निनाद सम्मान' दिया गया। संचालन श्रीमती ममता पांडेय ने तथा धन्यवाद ज्ञापन श्रीमती पूनम सिंह ने किया। □

कृति लोकार्पित

१० जनवरी को कांकरोली, जिला राजसमंद (राजस्थान) स्थित काठियावाड़ी होटल में श्री माधव नागदा की पुस्तक 'कथाकार रूपसिंह चंदेल : व्यक्तित्व, विचार और कृतित्व' के लोकार्पण समारोह में सर्वश्री कमर मेवाड़ी, नगेंद्र मेहता, मुरलीधर कनेरिया, अफजल खाँ अफजल, त्रिलोकीमोहन पुरोहित, राधेश्याम सरावगी, भँवर बोस ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री शेख अब्दुल हमीद ने किया। □

संगोष्ठी आयोजित

१० जनवरी को दिल्ली के श्रीराम कॉलेज ऑफ कॉमर्स एवं विश्व हिंदी साहित्य परिषद् द्वारा 'हिंदी का वैश्विक स्वरूप' विषय पर एक अंतरराष्ट्रीय हिंदी संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें देश-विदेश से लगभग ५०० हिंदी प्रेमी सम्मिलित हुए। श्री हरीश नवल की अध्यक्षता में मुख्य अतिथि श्री पूरनचंद टंडन, मुख्य वक्ता श्री लारी आजाद तथा विशिष्ट वक्ता सर्वश्री डॉ. मैक्सीम डेम्चेंको तथा गंगाधर गुलशन सुखलाल थे। संचालन श्री रवि शर्मा 'मधुप' ने किया तथा धन्यवाद ज्ञापन श्री आशीष कंधवे ने किया। श्रीमती सिमरित कौन ने स्वागत वक्तव्य दिया। □

हिंदी दिवस पर कार्यक्रम संपन्न

१० जनवरी को सी.एम.एस. इंदिरानगर में भारतीय भाषा प्रतिष्ठापन राष्ट्रीय परिषद द्वारा हिंदी दिवस मनाया गया। इस अवसर पर आयोजित एक गोष्ठी में शिक्षा, विज्ञान, साहित्य एवं समाज सेवा से जुड़े महानुभावों ने राजभाषा हिंदी के प्रांतीय भाषा से संबंध की स्थिति पर विचार व्यक्त किए। श्री मोहन लाल अग्रवाल ने अतिथियों का स्वागत किया कार्यक्रम में सर्वश्री अखिलेश निगम, देवकी नंदन शांत, रुचि भवन जोशी, अर्चना प्रकाश, अलका त्रिपाठी को सम्मानित किया गया। श्री साधु सरन वर्मा की पुस्तक 'संदर्भों के सुमन' एवं श्री दयानंद जड़िया अबोध की पुस्तक 'ऐसा वर दो' तथा 'हिंदी साहित्य के इतिहास की झलक' का भी लोकार्पण हुआ। सर्वश्री हरिश्चंद्र निशांत, महेश चंद्र द्विवेदी तथा मुख्य अतिथि डॉ. उदय प्रताप सिंह ने अपने विचार व्यक्त किए। धन्यवाद ज्ञापन श्री राजेश शर्मा ने किया। □

कार्यक्रम आयोजित

१७ जनवरी को कोलकाता में श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय द्वारा आयोजित कार्यक्रम में पश्चिम बंगाल के राज्यपाल श्री जगदीप धनखड़ ने कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए पुस्तकालय के प्रस्तावित नवीन भवन हेतु २१ लाख रुपए का चेक प्रदान किया। डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी एवं सज्जकुमार तुल्स्यान ने राज्यपाल श्री जगदीप धनखड़ का शॉल ओढ़ाकर सम्मान किया, श्रीमती सुदेश धनखड़ का मंत्री श्री महावीर बजाज तथा डॉ. तारा दूगड़ ने शॉल ओढ़ाकर अभिनंदन किया। धन्यवाद ज्ञापन श्री सज्जनकुमार तल्स्यान ने तथा संचानल डॉ. तारा दूगड़ ने किया। □

पं. विद्यानिवास मिश्र के जन्मदिवस पर कार्यक्रम संपन्न

१२ से १४ जनवरी को 'राष्ट्रीय/अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी और भारतीय लेखक शिविर' तथा महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के संयुक्त तत्त्वावधान में 'भारत में भाषा-चिंतन की परंपराएँ' विषय पर केंद्रित त्रि-दिवसीय राष्ट्रीय वेबिनार का आयोजन हुआ, जिसमें श्री रजनीश कुमार शुक्ल तथा दयानिधि मिश्र द्वारा माँ सरस्वती एवं स्व. पं. विद्यानिवास मिश्र के चित्र पर माल्यार्पण किया। डॉ. अरुणेश नीरन ने स्वागत भाषण दिया। सर्वश्री हनुमान प्रसाद शुक्ल, दिलीप सिंह तथा उदय प्रताप सिंह ने प्रो. रजनीश कुमार शुक्ल के मुख्य आतिथ्य में अपने विचार व्यक्त किए। अध्यक्षीय संबोधन डॉ. उदय प्रताप सिंह ने दिया। प्रथम सत्र में 'वेद-वेदांग में भाषा-चिंतन' विषय पर सर्वश्री विंध्येश्वरी प्रसाद मिश्र, मुरली मनोहर पाठक, मनोज कुमार मिश्र, राममूर्ति चतुर्वेदी ने अपने विचार व्यक्त किए। द्वितीय सत्र में 'भाषा चिंतन की दार्शनिक पृष्ठभूमि' विषय पर सर्वश्री के.ई. धरणीधरन, कमलाकांत त्रिपाठी, सुधाकर मिश्र, कृष्णकांत शर्मा, सच्चिदानंद मिश्र, शीतला प्रसाद उपाध्याय, देवेंद्र कुमार तिवारी, धर्मचंद्र जैन ने अपने विचार व्यक्त किए। अध्यक्षीय

वक्तव्य प्रो. धर्मचंद जैन ने दिया। दूसरे दिन तीसरे सत्र में 'व्याकरणिक भाषा-चिंतन' विषय पर सर्वश्री बलराम शुक्ल, जयप्रकाश त्रिपाठी, भगवान शरण शुक्ल, मिथिलेश चतुर्वेदी, गोपबंधु मिश्र, गायत्री प्रसाद पांडेय ने अपने विचार व्यक्त किए। अध्यक्षीय वक्तव्य श्री रमेशचंद्र पंडा ने दिया। चौथे अकादमिक सत्र में 'काव्यशास्त्र में भाषा-चिंतन' विषय पर सर्वश्री राधावल्लभ त्रिपाठी, श्याम सुंदर दुबे, सदाशिव द्विवेदी, रमेश कुमार पांडेय, अभिराज राजेंद्र मिश्र ने अपने विचार व्यक्त किए। अध्यक्षीय वक्तव्य श्री पांडेय शशिभूषण शीतांशु ने दिया। तीसरे दिन के पाँचवें अकादमिक सत्र में 'लोक का वैभव : अभिव्यक्ति और अनुभव' विषय पर श्री राजेंद्र रंजन चतुर्वेदी ने प्रो. अच्युतानंद मिश्र की अध्यक्षता में विचार व्यक्त किए। विशिष्ट अतिथि प्रो. नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने भी अपने विचार रखे। अध्यक्षीय वक्तव्य प्रो. अच्युतानंद मिश्र ने तथा धन्यवाद ज्ञापन श्री गिरीश्वर मिश्र ने किया।

'भारत में भाषा-चिंतन की परंपराएँ' विषय पर पाँच सत्रों में चले इस विमर्श के छठे और अंतिम सत्र में प्रो. रमेशचंद्र शाह की अध्यक्षता में मुख्य अतिथि श्री बुद्धिनाथ मिश्र थे। सर्वश्री हरिराम द्विवेदी, गिरिधर करुण, रवींद्र श्रीवास्तव 'जुगानी भाई', अशोक द्विवेदी, आनंद संधिदूत, अनिरुद्ध त्रिपाठी 'अशेष', वशिष्ठ अनूप, श्याम सुंदर दुबे, मंजुला चतुर्वेदी, सुरेंद्र वाजपेयी, शिव कुमार 'पराग', हिमांशु उपाध्याय, ओम धीरज, जितेंद्र नाथ मिश्र, जगदीश पंथी, आरती स्मित, अशोक सिंह, इंद्रकुमार दीक्षित, रामानुज अस्थाना, ब्रजेंद्र नारायण द्विवेदी, सरोज पांडेय, वासुदेव ओबेराय, रचना शर्मा, अशोक कुमार सिंह 'घायल', शिवशंकर सिंह ने हिंदी-भोजपुरी कविताओं का पाठ किया। धन्यवाद-ज्ञापन श्री दयानिधि मिश्र ने तथा संयोजन-संचालन सर्वश्री अवधेश कुमार शुक्ल, जगदीश नारायण तिवारी, जयंत उपाध्याय, अशोक नाथ त्रिपाठी, हरीश अरोड़ा, अवधेश कुमार और प्रकाश उदय ने किया। ☐

गोष्ठी आयोजित

विगत दिनों दिल्ली के हिंदू कॉलेज की हिंदी नाट्य संस्था 'अभिरंग' के सत्रारंभ समारोह में 'नाटक की सार्थकता उसके पढ़े जाने में नहीं, उसके देखे जाने में' विषय पर आयोजित हुए कार्यक्रम में श्री असगर वजाहत ने अपने विचार व्यक्त किए। सवाल-जवाब सत्र का संयोजन श्री नौशाद अली ने किया, जिसमें श्री असगर वजागत ने विद्यार्थियों को नाटक देखने के लिए प्रेरित किया। स्वागत उद्‌बोधन श्री पल्लव ने तथा धन्यवाद ज्ञापन श्री अमन पटेल ने किया। ☐

कवि-सम्मेलन आयोजित

१७ जनवरी को विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस में मॉरीशस न्यू मीडिया सृजन संसार ग्लोबल फाउंडेशन एवं सृजन ऑस्ट्रेलिया इ-पत्रिका के संयुक्त तत्त्वावधान में अंतरराष्ट्रीय कवि सम्मेलन श्री नीलू गुप्ताजी की अध्यक्षता तथा प्रो. विनोद कुमार मिश्र के सान्निध्य में आयोजित हुआ। संचालक एवं आयोजक श्री शैलेश शुक्ला एवं मुख्य अतिथि श्री हितेंद्र मिश्रा थे। विशिष्ट अतिथि सर्वश्री हरिहर झा, नूतन पांडेय रहे। दुनिया भर से हिंदी रचनाकार सम्मेलन में शामिल हुए। श्रीमती पूनम चतुर्वेदी ने अपने विचार व्यक्त किए तथा सर्वश्री शीतल जैन, कविराज बाबू, झमन वशिष्ट, अंजलि हजगैबि, राज हीरामन, कैलाश और शिक्षा गजाधार, पापुआ, संदीप सिंधवाल ने काव्य-पाठ किया। डॉ. कल्पना लाल तथा सुश्री सुनीता पाहूजा भी कार्यक्रम में उपस्थित रहीं। ☐

रेणु की जन्मशतवार्षिकी पर संगोष्ठी संपन्न

१८ जनवरी को साहित्य अकादेमी ने प्रख्यात लेखक फणीश्वरनाथ रेणु की जन्मशतवार्षिकी के अवसर पर एक संगोष्ठी का आयोजन आभासी मंच पर किया। संगोष्ठी का उद्‌घाटन वक्तव्य अकादेमी के महत्तर सदस्य श्री विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने दिया, बीज वक्तव्य प्रख्यात समालोचक श्री गोपेश्वर सिंह ने प्रस्तुत किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता हिंदी परामर्श मंडल के संयोजक श्री चित्तरंजन मिश्र ने की और स्वागत वक्तव्य साहित्य अकादमी के सचिव श्री के. श्रीनिवासराव द्वारा दिया गया। सभी मान्य अतिथियों ने रेणुजी पर केंद्रित अपने विचार रखे। संचालन अकादेमी के संपादक श्री अनुपम तिवारी ने किया। ☐

विश्व हिंदी दिवस २०२१ आयाजित

११ जनवरी को विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस ने शिक्षा, तृतीयक शिक्षा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय तथा भारतीय उच्चायोग, मॉरीशस के संयुक्त तत्त्वावधान में इंदिरा गांधी भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, फेनिक्स में विश्व हिंदी दिवस में मुख्य अतिथि मॉरीशस गणराज्य के राष्ट्रपति श्री पृथ्वीराजसिंह रूपन रहे। इस अवसर पर विदेश, क्षेत्रीय एकीकरण एवं अंतरराष्ट्रीय व्यापार मंत्री श्री नंदकुमार बोधा, भूमि परिवहन और लाइट रेल मंत्री श्री आलान गानू तथा भारतीय उच्चायुक्त श्रीमती नंदिनी के. सिंसला ने अपनी गरिमामयी उपस्थिति से कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई। डॉ. सफ़र्मो तोलीबी ने 'रूस में हिंदी-शिक्षण की स्थिति एवं संभावनाएँ' विषय पर वक्तव्य दिया। इस अवसर पर भारत के शिक्षा मंत्री डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के वक्तव्य की वीडियो रिकॉर्डिंग भी प्रस्तुत की गई। समारोह के आरंभ में सचिवालय के महासचिव प्रो. विनोद कुमार मिश्र ने उपस्थित महानुभावों व सभी अतिथियों का स्वागत किया तथा सचिवालय द्वारा आयोजित अंतरराष्ट्रीय व्यंग्य-लेखन प्रतियोगिता के परिणामों की घोषणा की। इस अवसर पर सचिवालय की 'विश्व हिंदी पत्रिका' के १२वें अंक का लोकार्पण किया गया। वाक्वा रंग भूमि कला मंदिर द्वारा 'शकुंतला' नाटक को विश्व हिंदी दिवस के मंच पर प्रस्तुत किया गया। ☐

श्री अश्विनी कुमार की आत्मकथा लोकार्पित

१८ जनवरी को नई दिल्ली के 'पंजाब केसरी' के कार्यालय परिसर में 'पंजाब केसरी' के निदेशक एवं संपादक श्री अश्विनी कुमार की पुण्यतिथि पर उनकी आत्मकथा 'इट्स माई लाइफ' का लोकार्पण रक्षा मंत्री श्री राजनाथ सिंह के करकमलों से उत्तर क्षेत्र संघचालक डॉ. बजरंग लाल गुप्ता, अखिल भारतीय सह-संपर्क प्रमुख श्री रामलाल एवं अश्विनी कुमारजी के परिवार के सान्निध्य में संपन्न हुआ। ☐

साहित्यिक क्षति

श्री गणेश खरे का निधन

वरिष्ठ साहित्यकार व हिंदी साहित्य के विद्वान् डॉ. गणेश खरे का रायपुर के एक निजी चिकित्सालय में निधन हो गया। ८५ वर्षीय डॉ. खरे कोरोना से पीड़ित थे। डॉ. खरे राजनांदगाँव के दिग्विजय कॉलेज में हिंदी के प्रोफेसर के रूप में लंबे समय तक सेवाएँ देने के बाद घुमका महाविद्यालय से प्राचार्य पद से सेवानिवृत्त हुए थे। उन्होंने १४ उपन्यास, ११ समीक्षात्मक साहित्य ग्रंथ, हिंदी भाषा और व्याकरण की ६ पुस्तकें, ३ नाटक, ४५ एकांकी, ६ काव्य संकलन और ५ लघु कहानी संग्रह लिखे। इनके अलावा नवसाक्षरों के लिए लगभग ५० पुस्तकों का लेखन किया। वे हिंदी के शोध निदेशक भी थे।

साहित्य अमृत परिवार की ओर से दिवंगत आत्मा को भावभीनी श्रद्धांजलि।